1998 से निरंतर प्रकाशित

RNL No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-7, अंक-1, अगस्त-सितम्बर 2023, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

‘कला समय’ पाठकों के विश्वास का 27 वाँ वर्ष...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

लोक संस्कृति में अद्वैत

विशेषांक

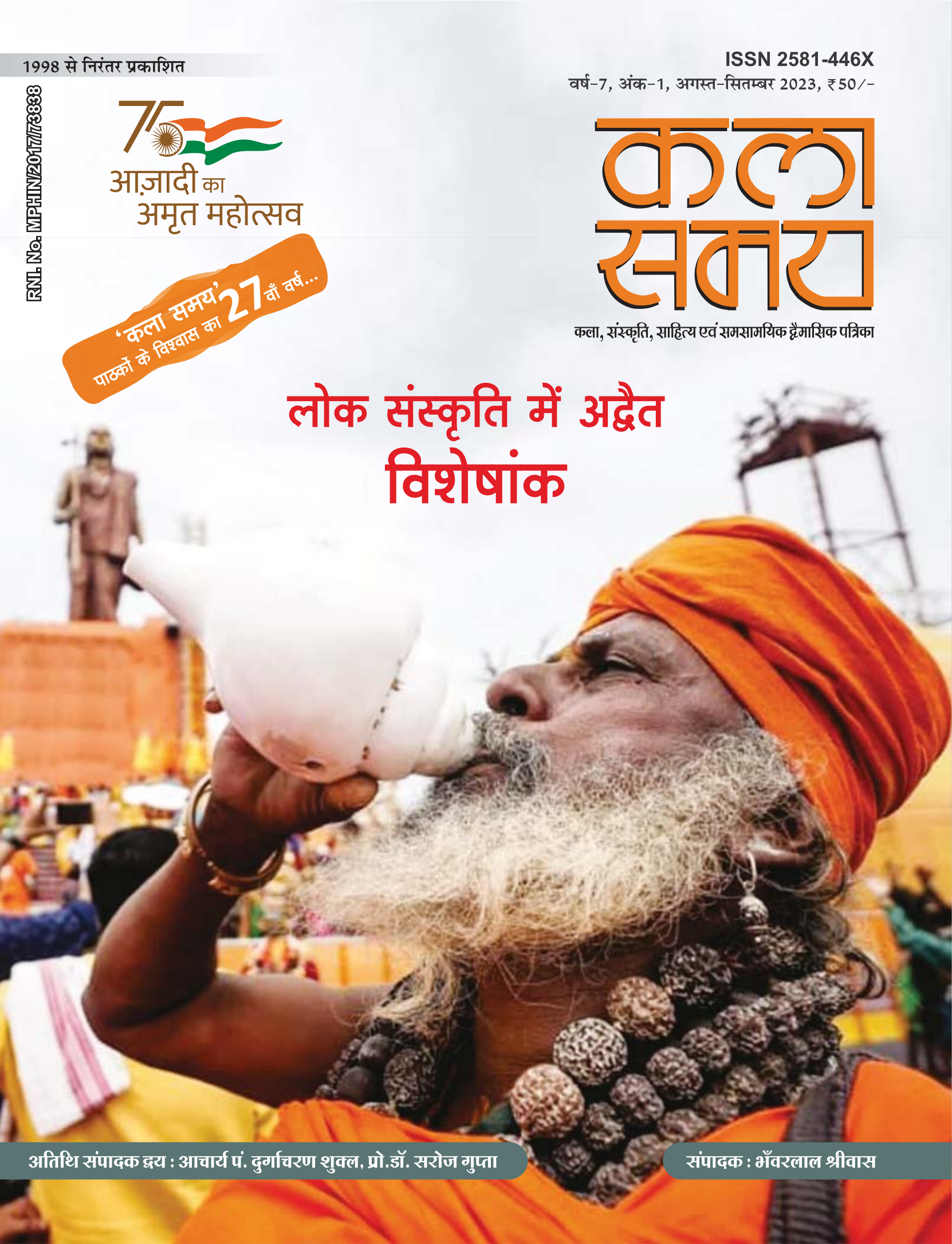

अतिथि संपादक द्वय : आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल, प्रो.डॉ. सरोज गुप्ता

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय प्रकाशन

कथेतर गद्य में नई विधा स्थापित करने वाली
पहली पुस्तक

छोटे मुँह छोटी सी बात

लेखक : संतोष तिवारी

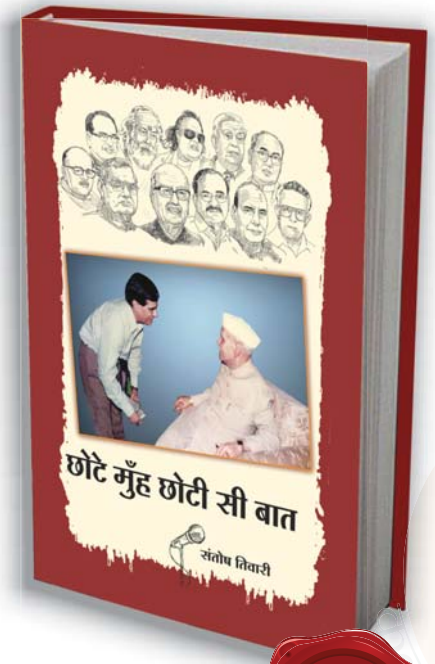

मूल्य: ₹450

लेखक ने छोटी-छोटी बातों से कितनी बड़ी-बड़ी बातें कह डाली है।
- मेहरुनिसा परवेज़ (देश की प्रख्यात साहित्यकार)

मंच संचालन में शब्द प्रवाह का इस कदर नियंत्रित संयोजन और सुव्यवस्थित लेखन कम देखने को मिलता है। जब हर हर्फ़ रुधा हुआ और हर शब्द अनुशासन से बंधा हुआ दिखता है तो अचंभा होता है।
- अमृता राय (राज्यसभा सहित अनेक राष्ट्रीय टी.व्ही. चैनल की ख्यात राजनीतिक-सामाजिक विश्लेषक)

यह किताब जीवन में शब्द की महत्ता रेखांकित करती है।
- पं. विजयशंकर मेहता (ख्यात जीवन प्रबन्धन गुरु)

इस पुस्तक को पत्रकारिता के पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए। लेखक निःसंदेह इस अभिनव संचालन विधा के पितामह हैं।
- महेश श्रीवास्तव (विचारक, कवि एवं लेखक)

लेखक मंच संचालन में जो मौलिकता लाये उससे उन्हें इस विधा को साहित्य की विधा बना देने का श्रेय रहेगा और वे इस विधा के पितृ-पुरुष की तरह पहचाने जायेंगे।
- मनोज श्रीवास्तव
(साहित्यकार, विचारक एवं पूर्व आई.ए.एस. अधिकारी)

इस कृति में इतने सूत्र वाक्य हैं कि उन्हें एक पृथक कृति का रूप दिया जा सकता है, गद्य काव्य की ऐसी सरस पंक्तियां हैं कि प्राचीन चम्पू काव्य से उनकी तुलना भी जा सकती है।
- नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
(अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध कला मर्मज्ञ एवं ललित निबंधकार)

शुभेच्छु

पवन अग्रवाल
रेडिएंट कोल बेनीफिकेशन प्रा. लि.
बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

0755-2562294, 9425678058 kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+07=27) पूर्णांक-124

वर्ष-7, अंक-1, अगस्त-सितंबर 2023, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. महेन्द्र भानावत

श्यामसुंदर दुबे

कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श

लक्ष्मीनारायण पयोधि

डॉ. नारायण व्यास

प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'

प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि

चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन

मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार

जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

रेखांकन : मनोहर काजल

संपादक

भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक

डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक

डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक

राहुल श्रीवास

सुन्दरलाल प्रजापति

संपादक मंडल

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

साहित्य

अरुण तिवारी

समसामयिक

हरीश श्रीवास

कला, संस्कृति

नरिन्दर कौर

प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।

सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

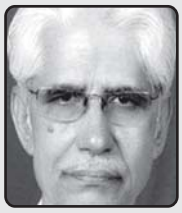
प्रभुदयाल मिश्र

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

डॉ. सुमन चौरे

अरुण कुमार शुक्ल

किरण आर्या

डॉ. कुंकुम गुप्ता

अनीता सक्सेना

इस विशेषांक के अतिथि संपादक द्वय

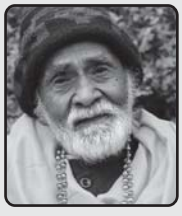
आ.पं.दुर्गाचरण शुक्ल
लोक और वेद के अभिनव हस्ताक्षर

प्रो. डॉ. सरोज गुप्ता
अनुभवशील साहित्यकार, विभागाध्यक्ष, पं. दीनदयाल उपाध्याय महाविद्यालय, सागर

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 |
आवरण एवं अंतिम आवरण चित्र - साभार | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** मनोहर काजल
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से**
  - लोके च वेदे च 05
  - लोक संस्कृति की कसौटी पर खरा उतरता अद्वैत 07
- **संपादकीय** 11
  - लोक संस्कृति की आत्मा ही अद्वैत है
- **आलेख**
  - अद्वैत दर्शन : लोक आचरण का पर्याय / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 13
- **अद्वैत-विमर्श**
  - शंकरो लोक शंकर / पं आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल 18
- **आलेख**
  - लोक में वेदांत / प्रभुदयाल मिश्र 21
  - लोकमानस का देवभाव और अद्वैत / डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी 24
  - लोक की अद्वैत-चेतना / डॉ. श्यामसुंदर दुबे 27
  - कश्मीर की लोक संस्कृति में शिवाद्वैत / डॉ. अद्वैतवादिनी कौल 30
  - निमाड़ के लोकगीतों और लोक... / डॉ. सुमन चौरे 37
  - लोक संस्कृति में बीजासेन देवी का अनुष्ठान / अरुण कुमार शुक्ल 41
  - लोक संस्कृति में अद्वैत के रेखा चित्र / अनीता सक्सेना 44
- **आयोजन**
  - ओंकारेश्वर मांधाता पर्वत पर ब्रह्मोत्सव 47
  - एकात्म धाम ओंकारेश्वर की छाया वीथिका 49
- **आलेख**
  - ब्रज लोक-संस्कृति में अद्वैत / डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 53
  - वेदान्त का अद्वैत और उसका व्यावहारिक स्वरूप / किरण आर्या 55
  - पर्वों -उत्सवों मे लोक आस्था और अद्वैत दर्शन / डॉ. कुंकुम गुप्ता 58
  - अद्वैत और लोक संस्कृति / डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव 60
  - अद्वैत सिद्धांत और लोक संस्कृति ... / डॉ. राजकुमार पांडेय 64
  - मीरा की भक्ति में दांपत्य का अलौकिक स्वरूप / डॉ. विदुषी शर्मा 67
  - लोक संगीत में अद्वैत / डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य 72
  - कहीं गोद और कंधे ... / डॉ. राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 74
- **कला-अक्ष**
  - कला में कुछ नया करते कलाकार / चेतन औदिच्य 76
- **जनजातीय संस्कृति**
  - जनजातीय संस्कृति में शिव-शंभू ... / लक्ष्मीनारायण पयोधि 80
- **भाषांतर**
  - अमेरिकन कवयित्री एन सेक्सटन की कविताएँ : मणि मोहन 83
  - दोहे: सोमदत्त शर्मा के दोहे 84
  - कविता : प्रदीप नवीन की कविताएँ 85
  - ग़ज़ल : सुन्दरलाल प्रजापति की ग़ज़लें 86
- **पुस्तक समीक्षा**
  - कला आलोचना के आयाम / डॉ. अंजलि पांडेय 87
  - राम अविराम: शब्दों की नर्मदात्मक यात्रा / डॉ. राजीव सक्सेना 91
  - रास्ता इधर से भी है :जीवन मूल्यों की कथा / अरविंद तिवारी 92
  - कलागुरु पद्मश्री डॉ. वि. श्री. वाकणकर और गुरुकुल / राजेन्द्र नागदेव 93
- **सांस्कृतिक समाचार समवेत :** 95
  - अकादमी पहुंची लेखक के द्वार, डॉ. भानावत को किया सम्मान समर्पण/ वरिष्ठ छायाकार जगदीश कौशल के शतायु कामना पर्व में 'समय की धरोहर' पुस्तक का लोकार्पण / वरिष्ठ उद्घोषक संतोष तिवारी की पुस्तक 'छोटे मुँह छोटी सी बात' का भोपाल और गुना शहर में लोकार्पण सम्पन्न / डॉ. मंजुलता आर्य की पुस्तक 'साहित्य के पुरोधा' का हुआ विमोचन / गायनाचार्य पं. गंगा प्रसाद पाठक की जयंती मनाई गई

अतिथि संपादक की कलम से....

लोके च वेदे च

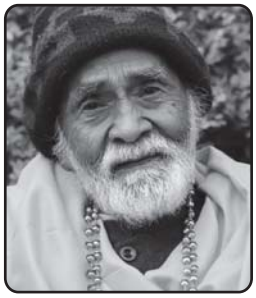

वेदान्त के अद्वैत दर्शन का सिद्धांत लोक संस्कृति में अति प्राचीनकाल से विद्यमान है। सहस्त्रों वर्षों पूर्व भारतीय ऋषियों ने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा से अनेकता में एकता के दर्शन कर लिए थे। उन्होंने यह जान लिया था कि सृष्टि की समस्त विविधता के पीछे एकता की शक्ति है – 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,यत् प्रयन्त्यभि संविशन्ति' यह परमार्थ तत्व एक ही है – ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति,अग्नि यमं मातरिश्वानमाहु'' यह विचार भारतीय संहिताओं से लोक संस्कृति में वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। इस विचार को पोषण देने का कार्य ऋग्वेद के पूर्ववर्ती ऋषि बादरायण, जैमिनी, काशकृत्सन, आदिगुरु शंकराचार्य से लेकर महामहोपाध्याय अभिनव गुप्त जी की परम्परा से प्रवाहित होता हुआ वर्तमान समय तक विद्यमान है।

लोक संस्कृति में अद्वैत,युग- युगादि से छिपी स्मृति का रुपायन है। लोक संस्कृति में अद्वैत वास्तव में जीवन का है। जीवन रुपी कमल अपने आनन्द केन्द्र आकाश स्थित सूर्य की प्रेरणा पाकर काल रुपी अश्व की सप्त रश्मियों द्वारा खिलकर समस्त लोक को आबद्ध किये है। ब्रह्माण्ड के अनन्त नक्षत्रों में ऐसा कोई लोक नहीं जो काल चक्र के साथ न घूमता हो। एक अदृश्य शक्ति है जिसने सबके लिए एक मार्ग सुनिश्चित किया है, अथर्ववेद के ऋषि का कथन है कि **''इमं च लोकं परमं च लोकं, पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्या। सर्वान्लोकान्अभिजित्य ब्रह्मणा,काल ईयते परमो न देवः।''** सभी लोकों (भूः भुवः स्वः) में एक ब्रह्मशक्ति है जिसने अपनी सर्वशक्तिमान काल सृष्टि से सबको वश में कर रखा है।

ऋषि परम्परा से हम श्रुति सरस्वती के तट पर योग क्षेम का सम्वर्द्धन करते रहे हैं। धर्म और सत्य रुपी महावृक्षों के अमर बीज जो वैदिक काल से बोये गये हैं उन्हें लोक संस्कृति में फलता फूलता देख रहे हैं। लोक जीवन में आदर्श स्थापित करने के लिए सोच समझकर चरित्र गढ़े गए। लोक संस्कृति को समृद्ध किया गया। लोक गीतों,लोक कथाओं, लोक गाथाओं,लोक नाट्यों द्वारा जीवन के अगम्य, अज्ञात पथ पर चारित्र्य की सुलभ पगडंडियों का निर्माण किया गया। लोक संस्कृति में सत्य से ही लोक प्रतिष्ठित है।चरित्र से युक्त मनुष्य के जीवन को श्रेयस्कर , मूल्यवान,धर्मयुक्त माना गया है। शताब्दियों से भारतीय लोक मस्तिष्क ने चैतन्य तत्व की खोज करके जनता जनार्दन के मानस को प्राणवन्त , उत्साहित और आनन्दित बनाया है और लोक जीवन ने उसका अनुभव किया है। यही लोक संस्कृति का अद्वैत है। लोक जीवन में कोई निर्धन नहीं, झोपड़ी में रहने वाले व्यक्ति के घर से लोकगीत की धुन – ''सोने की थाली में भोजन परोसे,---झन झन झाड़ी, गंगा जल पानी'' की स्वरलहरियां सुन सकते हैं।

''चन्दन है इस देश की माटी,तपोभूमि हर ग्राम है।
हर बाला देवी की प्रतिमा,बच्चा-बच्चा राम है॥''

बेतवा नदी में स्नान करते हुए गंगा को महसूस करना, आह्लादित होना। बेतवा और गंगा अलग नहीं है, अद्वैत का यह भाव लोक विश्वास के रुप में बड़ी गहराई से प्रवहमान है। इन संस्कारों की जड़ें सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप से इतनी गहरी हैं कि इनको हम लोक से अलग नहीं कर सकते। सम्पूर्ण भारत में ,देश के कोने-कोने में विविध विधाओं में चाहे गीत हों, कथायें, गाथाएं,लोक नाट्य,

लोकोत्तियां,पर्व, उत्सव, त्यौहारों, प्रकृति के विभिन्न रुपों में उस एक का ही अनुभव करते हैं। घूंघट का पट जब उठता है तभी भीतर छिपी हिरण्यमयी वधू का सौन्दर्य साकार हो जाता है । अद्वैत चिदावरण अंग है जो वाह्य रुप का अनावरण कर सबको एकरस में निमग्न किये है। ऋत और चित् – इच्छा शक्ति और ज्ञान शक्ति का समन्वय आनन्द प्रदान करता है। ऋत का विकास नैतिक व्यवस्था में होता है और चित् का विकास वृत्तियों में। महर्षि पतंजलि ने ''योग: चित्त वृत्ति निरोध:'' सूत्र दिया। महर्षि वेदव्यास ने पुराणों में जो कथायें व्यक्त की वह श्रुतियां कहलाईं। हमारी संस्कृति देख सुनकर सीखने की है। हमारे दैनिक जीवन के कार्य–व्यवहार इस प्रकार बताये गये कि जाने अनजाने में अद्वैत सधता रहता है। भारतीय त्यौहारों में वैदिक तत्व है। एक है वैष्णवी विद्या दूसरी तांत्रिक विद्या – लोक ने दोनों को साधा है। प्रतीकात्मकता लोक का विशेष गुण है। अद्वैत लोक संस्कृति में सर्वत्र व्याप्त है, बहुत सारी परम्परायें, मान्यताएं लोक जीवन में आत्मीयता व मेल–मिलाप का सृजन करती हैं। ब्रह्म के साथ एकाकार करने के लिए अन्यान्य कर्म जैसे पर्वों के मेलों, कुम्भ मेलों तथा गांवों में विभिन्न अवसरों पर लगने वाले मेलों में हम अद्वैत के दर्शन करते हैं। गांवों में लोग गंगा की सौगंध खाकर बड़ी बड़ी पंचायतें निपटाते हैं। ब्राह्मण के बेटे को उसी दृष्टि से सम्मान से देखना,पालागन करने पर उनकी धारणा कि ठाकुर जी की बटइया चाहे छोटी हो या बड़ी पूजनीय है। वेदों की बात को पुराणों ने कहानियों के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया है। हर नदी में गंगा सी पावनता,हर लड़की व बहू में लक्ष्मी का प्रतिरुप देखना यह अद्वैत है, हमारे लोक जीवन में सास बहू के पैर पूजती है। बच्चा बच्चा राम और कृष्ण की तरह,शादी व्याह में पैर पखारते समय वर वधू विष्णु और लक्ष्मी का प्रतीक माने जाते हैं। जाति धर्म की दीवार हटाकर सबके यहां जाने का रिवाज है। हरिजन से लेकर ब्राह्मण तक सबके घर सभी जाते हैं । धोबी से सुहाग लिया जाता है। मूसर बदलने की बात में अद्वैत, यहां जाति का कोई बन्धन नहीं। धोबी,नाई, बढ़ई सभी आत्मीयता का हिस्सा हैं।

इस प्रकार मेलों, तीज त्यौहारों, शादी व्याह, गोना, सोहर, झूमर आदि अवसरों पर घर बाहर चौराहों पर अलग रंग में मस्ती में झूमते लोग लोक संस्कृति और संस्कारों को जीते हुए,संजोते हुए ,अगली पीढ़ी को प्रेरित करते हुए, परम्परायें हस्तांतरित करते हुए लोग यत्र तत्र सर्वत्र दिख जायेंगे। चाहे उत्तर भारत हो, दक्षिण भारत हो,यही है हमारा असली ऋषिकल्प भारत, जहां बिना किसी भेदभाव के लोग आनन्द की उमंग में रहने के अभ्यस्त रहे हैं। वर्तमान समय में शताब्दियों की धूल लोक संस्कृति पर जमी हुई देख रहे हैं । वैदिक ज्ञान और शुद्ध तांत्रिक ज्ञान का अभाव हो गया है। लोकोक्ति है– ''हिली मिली दो बालें आईं, वेद कही सो लोक ने गायी।'' हमारी इसी लोक संस्कृति को देखकर अनेक विदेशी विद्वान आश्चर्य चकित हुए हैं, इसे मिटाने के लिए संकल्पबद्ध भी और कामयाब भी हुए,यह सब भारत के इतिहास के पन्नों में दर्ज है।

प्रिय भंवरलाल जी आपके द्वारा सम्पादित ''कला समय'' पत्रिका को मैं बड़े ध्यान से पढ़ रहा हूं। पत्रिका समय की कला, संस्कृति और सौंदर्य के उच्च प्रतिमानों को आम आदमी तक पहुंचाने में मुझे आप समर्थ व्यक्तित्व लगे। आपने अभी कुछ दिन पहले ही ''भारतीय संस्कृति में अक्षर पुरुष की अवधारणा'' पर आधारित अंक डॉ श्याम सुंदर दुबे जी के अतिथि संपादकत्व में प्रकाशित किया । वह कला और साहित्य जगत का श्रेष्ठ प्रतिमान है। अभी आपने वर्तमान अंक ''लोक संस्कृति में अद्वैत'' जैसे गंभीर विषय पर जो दायित्व मुझे व प्रोफेसर सरोज गुप्ता के अतिथि संपादकत्व में निकालने का संकल्प लिया, मुझे विश्वास है कि यह अंक अपने उच्च उद्देश्य को संपूर्णता में अभिव्यक्त करने में समर्थ होगा। आप ऐसे ही साहित्य और कला जगत के उच्च प्रतिमान शिखरों पर आरोहण करते रहें। भारतीय वैदिक वांग्मय की वीथी में विचरण करने की भूमि से मेरा आपको यही आशीर्वाद है और साथ ही ''कला समय'' भारतीय ज्ञान की दिव्य सुरभि से सदा महकती रहे। यही शुभकामना है। शुभमस्तु

पं आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल,
नूतन बिहार कालोनी डोंगा टीकमगढ़
(मध्य प्रदेश)

अतिथि संपादक की कलम से....

लोक संस्कृति की कसौटी पर खरा उतरता अद्वैत

मां जगदम्बा भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुरसुंदरी अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायिका सद्गुरु स्वरुपा सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता मां ललिताम्बा के पादपद्मों पर सीस नवाकर उनके लोक प्रचलित मां बीजासेन रुप के प्रति अपार श्रद्धा से नतमस्तक हूँ जो जन-जन को कृपापात्र बनाकर समग्र लोक में विस्तरित हैं । गुरुदेव पीताम्बरा पीठाधीश्वर स्वामी जी महाराज एवं गुरुदेव पं दुर्गाचरण शुक्ल जी का आनुभूतिक आशीर्वाद पाकर 'कला समय' पत्रिका के सम्पादक श्री भंवरलाल श्रीवास जी की प्रज्ञा दृष्टि को भी प्रणाम करती हूं जिन्होंने वैदिक तत्वज्ञान, भारतीय ज्ञान परम्परा की जड़ों को लोक जीवन से जोड़ने, आगम निगम शास्त्रों पर सदियों से जमीं धूल को प्रक्षालित करने हेतु नवीन दृष्टि से अनुसंधान करने का अभियान चलाया और 'अति नूतनम् नहि नहि अति प्रत्नं रहस्यं' के सिद्धांत को गति प्रदान की। आज हमारे जीवन में निष्क्रियता और अकर्मण्यता आ गयी है, जीवन की महती प्रेरणाओं से हम दूर हो गये हैं। आत्मविस्मृति के वशीभूत होकर अपनी संस्कृति के आदर्शों की ओर से आंखें मूंदे बैठे हैं। जीवत्व से ब्रह्मत्व की ओर अग्रसर होना, स्वार्थ पर लोक कल्याण के आदर्श की प्रतिष्ठा करना,यही हमारी संस्कृति की वाणी है जो शताब्दियों से मानवता के हृदय को पुकार रही है । ब्रह्मविद्या के आचार्य भगवान सनत्कुमार से उनके शिष्य देवर्षि नारद ने पूछा- 'सुखं भगवो विजिज्ञास इति' जिसका उत्तर देते हुए भगवान् श्री सनत्कुमार जी कहते हैं-

'यो वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति,भूमा त्वेष विजिज्ञासितव्य।' इस प्रकार शास्त्रों में त्रिकालव्यापी शाश्वत सिद्धांतों के दर्शन होते हैं। यहां भूमा तत्व से तात्पर्य व्यापकता है। विराटता में सुख है, अल्पता में नहीं । जो भूमा है, व्यापक है वह सुख है,कम में सुख नहीं है। इसीलिए वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा हमारी लोक संस्कृति की जड़ों में शताब्दियों से परिव्याप्त है।

संस्कृति ब्रह्म की भांति परम सूक्ष्म तत्व है। ईशावास्योपनिषद के ऋषि का उद्घोष 'ईशावास्यमिदं सर्वं, यत् किंचित जगत्यां जगत' के रूप में अद्वैत के बीज को जन-जन में रोपित करता रहा है। भारत गायत्री सावित्री का देश है। ऋषि मुनियों की अक्षुण्ण विरासत हमारे पास है। इस संस्कृति ने ही लोक जीवन को सुसंस्कृत बनाया है। सम्पूर्ण भारत में क्षेत्रीय विशेषताओं के बीच लोक संस्कृति और अद्वैत दोनों अन्योन्याश्रित हैं। भारतीय जनजीवन आज जिन अनेक धाराओं के मध्य प्रवाहित है उसका मूल उद्गम लोक संस्कृति से ही हुआ। लोक संस्कृति को ही भारत की संस्कृति का संस्कार करने का श्रेय प्राप्त है। आज संस्कृति का जो परिष्कृत रुप शिष्ट जन समुदाय में दृश्यमान है वह उसका प्रकृत रुप नहीं है। उसका प्रकृत रुप तो लोक संस्कृति में ही अपनी सार्थकता ढूंढता है। लोक संस्कृति अपने वास्तविक रुप में आज भी गांवों, जंगलों, पर्वतों के प्राकृतिक प्रांगण में अपना अक्षुण्ण रुप संवारती सर्वत्र परिलक्षित है। श्री अरविन्द जी कहते हैं प्रकृति स्वयं सच्चिदानंद रुप है, सभी विषय वस्तुएं या वृत्तियां प्रकृति से अनन्य हैं, प्रकृति चेतन है, प्रकृति ही ब्रह्म है। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रकृति के सान्निध्य की शिक्षा दी है। लोक संस्कृति की जीवन्तता और उसकी सप्राणता जन-जन के जीवन में उनके रीति-रिवाजों, लोकगीतों संस्कारों और आचार व्यवहारों में देख सकते हैं। सामान्य जन इस संस्कृति के सजग प्रहरी हैं। कृत्रिमता के

वातावरण से बहुत दूर लोक संस्कृति अपने आकर्षक स्वरूप को आज भी हार्दिक सरसता का संचार कर रही है। लोक संस्कृति ने हमारी परम्पराओं, रीतियों, नीतियों,जीवन मूल्यों के संरक्षण एवं आध्यात्मिक जीवन के स्रोत को सूखने से बचाया है। पर्व उत्सव, त्यौहारों, मेलों, यंत्र मंत्र तंत्र हठ,लय राजयोग साधना शैली की विभिन्न प्रक्रियाएं मनुष्य को अद्वैत की प्राप्ति कराने में समर्थ हैं। यदि हम लोक संस्कृति में अद्वैत जीवन के स्पन्दन को महसूस करना चाहते हैं तो भारत के सामान्य से सामान्य परिवार में लोक संस्कृति का विरवा फलता फूलता देख सकते हैं, सम्यक् अध्ययन करके लोक संस्कृति के व्यापक सुष्ठु स्वरुप का संधान कर सकते हैं।

अद्वैत ब्रह्म के तीन वैकल्पिक स्वरुप हैं जिनका सम्बन्ध चेतना की ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति और भावना शक्ति से है। जो भी व्यक्ति अद्वैत ब्रह्म का अनुभव करता है वह अपने अनुभव को पूर्ण पाता है। अद्वैत अनुभव की पूर्णता से व्यक्ति इतना आश्वस्त रहता है, उसे इतनी शांति मिलती है कि वैकल्पिक वृत्तियों के साथ उसकी शान्ति का कोई सामंजस्य नहीं है। प्रत्येक वृत्ति में आत्मा अपनी स्वानुभूति को सम्पन्न करती है। ज्ञान की सर्वव्यापकता उसका अणोरणीयान तथा महतोमहीयान एक साथ होना सिद्ध है। लोक जीवन में पर्व उत्सव त्यौहारों को मनाने के पीछे यही सिद्धांत लागू होता है। भक्ति भावना से चैतन्य की स्वानुभूति आनन्द से अभिन्न है। इसकी थाह ले यह लोक संस्कृति की रसवन्ती धारा ने अद्वैत को अभिषिक्त कर लोक जीवन को अनन्त काल से लेकर आज तक सरस बनाया है । लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है,जीवित और जाग्रत सत्ता है। लोक जीवन का प्रतीक है,जन-जन का पर्याय है । जहां तक भूमंडल है, वहां वहां लोक का विस्तार है । संस्कार और संस्कृति निबंध में महादेवी वर्मा कहतीं हैं कि एक विशेष भूखण्ड में जन्म और विकास पाने वाले व्यक्ति को अपनी धरती से सिर्फ पार्थिव अस्तित्व ही प्राप्त नहीं होता, उसे अपने परिवेश से विशेष बौद्धिक और रागात्मक सत्ता का दाय भी प्राप्त हो जाता है। वह सूक्ष्म,बाह्य और आंतरिक तथा प्रत्यक्ष अगोचर ऐसी विशेषताओं का सहज ही उत्तराधिकारी बन जाता है जिसके कारण मानव समष्टि में सामान्य रहते हुए भी सबसे भिन्न पहचाना जा सकता है। लोक अपनी ऊर्जा से ऊर्जस्वित है,अपनीअन्तर्निहित शक्तियों से शक्तिशाली है। भारतीय मानस में लोक की जड़ें इतनी गहरी जमीं हैं कि बाजारवाद, भूमण्डलीकरण, आधुनिकता,उत्तर आधुनिकता की आंधी उसे हिला नहीं सकती। अनुभव की पुनर्नवा शक्ति से सृजन पालन और संहार की अकूत ताकत लोक के पास है। लोक ऐसी सुरधारा है जिसमें चाहे जिस स्रोत से सम्पदा मिले अन्ततः वह लोक को ही समृद्ध करती है। आधुनिक से आधुनिक व्यक्ति भी लोक परम्परा से स्वतः ही जुड़ जाता है। वास्तव में 'यथा ब्रह्मांडे तथा पिण्डे' की परिकल्पना पर केन्द्रित है। जिस प्रकार पिण्ड में ब्रह्माण्ड उसीतरह लोक में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। लोक में बहुत बड़ी शक्ति है, ताकत है। लोक की इसी ताकत को समझकर राजा महाराजाओं ने कभी लोक की उपेक्षा नहीं की। लोक कानून और सत्ता से भी ऊपर है। प्राचीन काल से ही हमारे साहित्यकारों ने लोक की शक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित किया और लोक की शक्ति बनकर लोक की राह प्रशस्त की है। लोक का आश्रय समग्र जनसमाज और जनमानस है। लोक और ब्रह्माण्ड की बातें जनमानस के बीच की सोच, कार्य, व्यवहार का परिणाम है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, तीनों लोक, आकाश, पाताल, भूलोक, चौदह भुवन, अनेक मान्यताएं आदि विचार लोक की परिधि में आते हैं। लोक के जीवन व्यवहार ,चिंतन आदि सभी के समन्वित रूप का नाम संस्कृति है। लोक संस्कृति बहुव्यापी, बहुआयामी है। लोक संस्कृति का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव मन के विकास का इतिहास। भारतीय लोक संस्कृति ने न सिर्फ देश के जनजीवन में अपना अलग अस्तित्व बनाया है अपितु विश्व की अनेक संस्कृतियों को अपना आश्रय भी दिया है।

लोक संस्कृति की अनुपम मंजूषा के केन्द्र में वैदिक वांग्मय है। जिसकी दीप्ति से लोक मानस अतीतकाल से समुन्नत रहा है वर्तमान में पोषित है और भविष्य समुन्नततर है। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेंगसांग जब भारत आया,अनेक वर्ष भारत में रहकर उसने भारत की तस्वीर प्रस्तुत करते हुए कहा था कि भारत समृद्ध है, यहां का हर व्यक्ति धर्मपरायण है। प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों से सम्पन्न है।

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो ग्रामे ग्रामे स्थितो मखः।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ।।-भविष्यपुराण

'भारत के प्रत्येक ग्राम में देव-मन्दिर था, प्रत्येक देशमें यज्ञ होता था, घर में द्रव्यका अटूट भण्डार भरा रहता था और प्रत्येक मनुष्य में धर्म का अस्तित्व होता था।' इसप्रकार भारत अनादिकाल से तत्वज्ञान की जन्मभूमि व क्रीड़ाभूमि रहा है। ऋषि मुनि अनुराग, प्रेम और हृदय की वृत्तियों को जागृत कर अपने चितलोक में,चेतना में ,देवसृष्टि या चिन्मय सृष्टि किया करते थे। ज्ञानी लोग जानते थे कि समस्त चैतन्य और ज्ञान हमारे भीतर है। भीतरी चैतन्य और ज्ञान को एकाग्र होकर प्रकाशित करते थे। वह कहते थे कि ज्ञान और सत्य अलक्षित हैं,अल्प प्रकाश के

सहारे ही ढूंढने से मन और प्राण क्षेत्र में अल्प आघात से भीतरी प्रकाश रग-रग में प्रस्फुटित हो सकता है। अरस्तु ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है कि ज्ञान कोई दूसरी वस्तु नहीं, भूली हुई वस्तु का स्मरण हो जाना ही ज्ञान है। प्रकृति की गोद में हृदय पटल खोलकर आह्लादित होने से समूचे विचार निर्मल हो जाते हैं। इन्ट्यूशन-अन्तर्ज्ञान की विशेष शक्ति जागृत हो जाती है। पशु-पक्षी, लता, पर्वत, नदियों से ज्ञान की शिक्षा मिलने लगती है। सभी दिशाओं से मधुर सुरलहरियां सुनायी देने लगती हैं। यही सनातन ज्ञान का मार्ग है और यही अद्वैत है। भारत के आत्मदर्शी ऋषियों ने अपने दीर्घ अनुभव, तप:पूत ज्ञान और चिंतन द्वारा बताया कि आत्म अनुभव, आत्म साक्षात्कार ही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है।

भारतीय ऋषि प्रज्ञा ने जन-जन में ध्यान, धारणा आदि के प्रति विश्वास की आवश्यकता को देखते हुए भारतीय समाज में व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार संस्कार, रुचि, शिक्षा तथा व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। लोक जीवन में कर्तव्य- अकर्तव्य निर्धारण के लिए एवं वास्तविक सत्य के प्रकाशन के लिए अनेक शास्त्रों का प्रणयन किया। शास्त्र अनन्त हैं, गुरुगम्य हैं, सर्व साधारण की बुद्धि से परे हैं। ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत सूक्ष्म परावाणी को जगतहितार्थ बैखरी का अवलम्बन लेकर वेद रुप में प्रकाशन किया गया। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों में अनन्त ज्ञान भरा है- 'तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ' वास्तविक सत्य का स्वरुप आच्छादित सा है। शास्त्र का कथन है कि श्रुति, स्मृति परमात्मा की आज्ञा हैं। आगम निगम इसके प्रमाण हैं। उनके आदेशों का ही शास्त्रों के माध्यम से प्रचार हुआ है। कर्तव्य अकर्तव्य का निर्णय शास्त्र स्वरुप भगवद् आदेश पर आधारित है। गुरु की आज्ञा शास्त्र के समान है। ये शास्त्र सर्वज्ञानाधार हैं, शाश्वत आनुभूतिक सत्य हैं। इस ज्ञान को आत्मसात करने के लिए विभिन्न रुचि सम्पन्न व नाना प्रकृति के व्यक्तियों के लिए अनेक ध्यानी, ज्ञानी अभ्यासी, आचारपूत तपस्वी, संत महात्मा और भक्त सभी ने अलग अलग साधनाएं, तरीके बताए हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रज्ञा दृष्टि सम्पन्न बनाने के लिए सीमित से असीम की ओर अग्रसर करने के लिए पर्व, उत्सव, व्रत, त्यौहारों की व्यवस्था की गयी। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न भिन्न संस्कारों से सम्पन्न मन द्वारा संचालित है। व्यक्तिगत संस्कार, रुचिभेद, अनन्त वासनाएं, विविध दृष्टिभंगिमा, आशा आकांक्षा, राग-द्वेष की क्रिया से अंत:करण को उन्मुक्त करने के अनेक साधन व्रत, उपासना, आराधना द्वारा सुझाए गए हैं जिनसे मन के सन्देह दूर होते हैं। अज्ञान की ग्रंथियां कटती हैं। चित्त अन्तर्मुखी होता है। मिथ्या अनुभूति का विनाश होता है। सीमित दृष्टिकोण में सीमित विश्वास ही अवस्थान करता है इसलिए शास्त्रों में असीमित ज्ञान शक्ति उपलब्ध कराई गई। स्पष्ट रुप से शास्त्रों में व्यक्ति के अधिकार भेद भी दृष्टव्य है। साधना द्वारा मन की प्रधानता को समाप्त करके सीमित मन की प्राचीर का खण्डन करने के लिए भावनारुपी सामरस्य की आवश्यकता बतायी। यह सामरस्य हमारी लोक संस्कृति की जड़ों में गहरे तक जमी है जिसे मंदिरों में, मेलों में, धार्मिक स्थलों तीर्थों में देख सकते हैं।आज आवश्यकता है लोक संस्कृति की वैज्ञानिकता को समझने की। भारतीय संस्कृति लोक प्रतिष्ठापक है। लोक संस्कृति के उपादानों को हिन्दुओं के सोलह संस्कारों, पर्वोत्सव, तीर्थ व्रत, पूजा पाठ, खान-पान, वेशभूषा, आमोद प्रमोद के विविध स्वरूपों में देख सकते हैं। वाणिज्य व्यवसाय, विज्ञान सम्बन्धी धारणाओं, लोक विश्वासों, सामान्य रहन-सहन की नाना गतिविधियों और आदर्शों का सुन्दर निर्देश हमारी लोक संस्कृति में दृष्टव्य है। यदि आपके मन में कुछ प्रश्न हैं तो आपको सारे प्रश्नों का समाधान इस लोक से मिल सकता है। मुनि यास्क ने लोक की सर्वतोभद्र सत्ता रेखांकित करते हुए कहा था कि तुम कुछ भी जानना चाहते हो तो 'लोकं पृच्छ' क्योंकि लोक की व्याप्ति सर्वत्र है अतिभौतिक से आधिदैविक सभी सत्ताओं तक विद्यमान है। पत्थर को भगवान और भगवान को पत्थर बनाने की विस्मयकारी शक्ति इसी लोक में है। लोक का बोध हमारी परम्पराओं में विद्यमान है। जब जनता ही जनार्दन है पंच ही परमेश्वर है तभी लोक का बोध होता है। लोक मानस एक सामूहिक चेतना के साथ तमाम कर्म संस्कृति का कर्णधार है। लोक की शक्ति अपरिमेय है। लोक जीवन की आत्मा में अद्वैत समाहित है। यही उसकी सुगंध है। यही ज्ञान दृष्टि है, यही अद्वैत है। सौंदर्य कला लोकजीवन के लिए लोक संस्कृति में अद्वैत उसी प्रकार समाहित है जैसे पुष्प में उसकी सुगंध।

संस्कृति किसी जाति, समाज अथवा देश के मानव समुदाय में प्राणतत्व की भांति परिव्याप्त मानवतावादी उच्चादर्शों की वह भूमिका है जो उस समुदाय द्वारा परम्परागत रुप से काव्य, कला, संगीत, धर्म, दर्शन, आचार विचार, रीति रिवाज , संस्कार, खान-पान, वेशभूषा, पूजा, पर्वोत्सव, लोकगीत, आमोद प्रमोद आदि अनेक भावनात्मक गुणों के माध्यम से निरन्तर अभिनीत होती रहती है। अद्वैत दर्शन की प्रणाली का मेरुदंड युक्ति (उपाय) और अनुभव है। अनुभवहीन युक्ति सावद्य है और युक्तिहीन अनुभव अंधविश्वास है। इन्हीं दोनों की निरवद्यता पर अद्वैत की मनन विधि आधारित है। अद्वैत के तीन क्रमिक सोपान हैं- श्रवण मनन निदिध्यासन। श्रुति का विश्लेषण और समन्वय श्रवण है। अनुभव का विश्लेषण और श्रुति का निग्रह मनन है। निदिध्यासन निरन्तर परिपक्व, मनन है। निदिध्यासन के लिए मनन, मनन के लिए श्रवण आवश्यक है। लोक संस्कृति में साधना का उद्देश्य चित्तशुद्धि है, ध्यान जप नाद गायन नर्तन इन सबसे बहिर्मुखी वृत्ति रुद्ध होती है, अन्तर्मुखी वृत्ति खुल जाती है। अशुद्ध मन के संस्कार छंटने

लगते हैं। मन निर्मल, प्रकाशवान हो जाता है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी श्रेष्ठ विचार युक्त हो जाता है। गुरु भक्ति का प्रभाव, तीव्र अभ्यास, उपासना, आराधना,सेवा आवश्यक है। संसार सागर में जीवन नौका को पार करने के लिए गुरु पतवार रुप दिशा निर्देश आवश्यक। गुरु स्वयं ज्ञान स्वरूप। प्रत्येक साधक के लिए हृदय का ज्ञान आवश्यक है । जागृत स्वप्न सुषुप्ति के साथ हृदय सम्बद्ध रहता है। बुद्धि की अपेक्षा हृदय पक्ष की प्रबलता से भाव पूर्ण साधना सम्पन्न हो जाती है। लोक की गति अवर्णनीय है। महाभारत में वर्णित है कि 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानाम् सर्वदर्शी भवेन्नर: ' अर्थात् जो व्यक्ति 'लोक' को अपने चक्षुओं से देखता है वही सर्वदर्शी अर्थात् उसे पूर्णरूप से जानने वाला ही कहा जा सकता है। लोक संस्कृति में अध्यात्म विद्या के साथ पदार्थ विद्या,शासन व्यवस्था, समाज व्यवस्था,अर्थ विद्या,शरीर विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, सूर्य विज्ञान, वास्तु कला, युद्ध कला, चौसठ कलाओं,परा–अपरा एवं भौतिक विद्याओं के विवेचन सहित आत्मशुद्धि, एवं श्रेष्ठ आचरण द्वारा अन्तर्वृत्तियों का परिष्कार करने 'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय'– अंधकार से प्रकाश ,असत से सत्य, मृत्यु से अमरत्व के स्रोत की यात्रा करने की वृत्ति पर ध्यान आकृष्ट किया। लोक संस्कृति अपने आधारभूत सिद्धांतों, अध्यात्म शास्त्र के जटिल विषयों को सरलता से जन–जन,मानव जीवन के लिए अभीष्ट उच्च आदर्शो को उपमा, रूपक, दृष्टांत, अन्योक्ति आदि अनेक अलंकारों द्वारा संगठित करती हुई अनेक मौखिक, लिखित, मनोरंजक, आख्यायिकाओं एवं गीतों, कथाओं ,गाथाओं में संस्कृति के तत्वों को इस प्रकार सजाकर प्रस्तुतीकरण करती रही जिससे अपढ़, मूर्ख, गंवार, जंगली, सुशिक्षित, विद्वान, पंडित, बाल युवा वृद्ध सभी समान भाव से रसग्रहण करते रहे। ऐसा मधुमयआसव पुंजीभूत होता रहा जो सबको परम आह्लादकारक कल्याणविधायक और अलौकिक अनुभूति का प्रदायक रहा। यही अलौकिक अनुभूति हमें वैदिक साहित्य से लेकर श्रीमद्भगवत गीता, महाभारत रामचरितमानस आदि अन्यान्य ग्रंथ सब लोक संस्कृति के प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने प्रस्तुत होते रहे। हम लोक संस्कृति के समन्वित रूप का दर्शन करते रहे। इस प्रकार लोक संस्कृति मानव मात्र की एकता को एक सूत्र में आबद्ध करती रही। वसुधैव कुटुंबकम के इस मूल मंत्र को एवं प्राणतत्व अद्वैत को समग्र विश्व में प्रचारित प्रसारित करने में सफल रही। जीवन के सत्य के साथ समाज का सत्य, जीवन के मंगल के साथ समाज का मंगल और सत्यम शिवम सुंदरम के समन्वय पर लोक संस्कृति में अद्वैत से विशेष बल मिला।

लोक संस्कृति में अद्वैत का शाश्वत आनुभूतिक सत्य गुरुदेव पं दुर्गाचरण शुक्ल जी ने आशीर्वचन में स्पष्ट किया कि लोक संस्कृति में अद्वैत युग– युगादि से छिपी स्मृति का रुपायन है और 'लोके च वेदे च' के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। इस विशेषांक के अधिकारी विद्वतजनों ने विषय के मर्म का स्पर्श करते हुए ज्ञानवर्धक शोधालेखों से इस अंक को संग्रहणीय बना दिया। यथा–श्री राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी–लोकमानस का देवभाव और अद्वैत, डॉ. श्याम सुंदर दुबे–लोक की अद्वैत चेतना, पं प्रभुदयाल मिश्र–लोक में वेदान्त, श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय– अद्वैत दर्शन: लोक आचरण का पर्याय, डॉ. राजकुमार पांडेय, अद्वैत सिद्धांत और लोक संस्कृति: ललित कला में आध्यात्मिकता का सामाजिक प्रभाव, डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'– बृज लोक–संस्कृति में अद्वैत, डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य– लोक संस्कृति में अद्वैत, डॉ. सुमन चौरे– निमाड़ के लोक गीतों और मान्यताओं में जीवत्व, डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव– लोक संस्कृति, श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि– जनजातीय संस्कृति में शिव–शंभु की अवधारणा, लोक संस्कृति में अद्वैत के चित्र –श्री अनीता सक्सेना, पर्वों उत्सवों में लोक आस्था और अद्वैत दर्शन (बुंदेलखंड के विशेष सन्दर्भ में) डा कुमकुम गुप्ता, कश्मीर की लोक संस्कृति में शिवाद्वैत – डॉ. अद्वैत वादिनी कौल, श्री अरुण कुमार शुक्ल–लोक संस्कृति में बीजासेन देवी का अनुष्ठान, वेदान्त का अद्वैत और उसका व्यावहारिक स्वरुप – डॉ. किरण आर्या, मीराबाई पर केन्द्रित लेख डॉ. विदुषी शर्मा आदि विद्वानों ने 'लोक संस्कृति में अद्वैत' श्रेयस्कर विषय पर अद्वैत दर्शन के लोक स्वरुप पर अपने विचार व्यक्त किए। मुझे भी विषय को समझने व स्वयं शोधपरक चिंतन करने का अवसर मिला। इस पत्रिका से मेरा परिचय 'अक्षर ब्रह्म' विशेषांक में हुआ तब से लेकर आज तक मेरी रुचि, जिज्ञासा, अपनी संस्कृति के गुह्य रहस्यों को जानने के लिए बढ़ती गयी । आज सम्पादकीय के माध्यम से आप सबके बीच अपने को पाकर अत्यंत हर्ष व प्रसन्नता अनुभव कर रही हूँ। कला समय पत्रिका के विशेषांक हेतु विषय चयन व सामग्री के लिए सम्पादक महोदय की जितनी प्रशंसा की जाये कम है। कला समय पत्रिका के सम्पादक महोदय एवं अधिकारी विद्वतजनों, विदुषी बहिनों के प्रति हार्दिक आभार।

शुभमस्तु

प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता,
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
पं दीनदयाल उपाध्याय
शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय सागर, म. प्र.

संपादकीय

लोक संस्कृति की आत्मा ही अद्वैत है

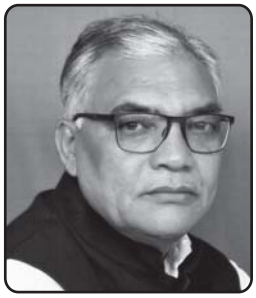

''यह जो रात की छाती को चीर कर
किरण निकली है
अकेले सूरज के बल पर नहीं।
इसके पीछे
सन्नाटे को बेधकर गाने वाले पंछी
धरती को फोड़कर उगने वाला बीज
और चट्टानों को तोड़कर बहनें वाली
अराधना का बल हैं।''

–पं. रामनारायण उपाध्याय

लोक की चर्चा जब भी होती है प्राय: यह प्रश्न उभरता है कि आखिर लोक है क्या ? लोक से अभिप्राय क्या है ? लोक को अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। इन सबके मूल में हैं जन–जीवन। स्थान विशेष का परिवेश जहाँ मनुष्य अपनी विशिष्ट जीवन–शैली के साथ रहता है। मनुष्य है तो समाज है। और समाज के सामूहिक आचरण से बनता है लोक। चूँकि जीवन प्रकृति पर निर्भर है, अत: प्रकृति और जीवन में गहरा अंतर सम्बन्ध है। मनुष्य ने प्रकृति के सानिध्य में रहकर जीना सीखा है। विभिन्न पर्वो–त्यौहारों अवसरों और अनुष्ठानों पर गीत, गाथा, संगीत, नृत्य,चित्र आदि बनाने की परम्परा ने जहाँ एक ओर भारतीय लोक संस्कृति को निरन्तरता दी है, वहीं अपने समय और उसके परिर्वतनों से उसे जोड़े रखा हैं। उसमें सृजन की 'व्यक्तिगत अभिव्यक्ति' और एक चमत्कारिक 'सामुदायिकता का अद्भुत तालमेल हुआ है। लोक अन्नत भी है और आँगन भी। वह अनंत को आँगन में उतार लेता है। और घर के आँगन से ही अनंत की यात्रा करता है। लोक में ही यह शक्ति है कि वह आवाहन न जानते हुए भी सारे देवताओं को एक छोटा सा चौक पूरकर उसमें प्रतिष्ठित कर सकता है। लोक को जो मिला है वह उसी में गुजारा करता है। उसे माटी मिली, उससे अपने बर्तन बना लेता है। चूल्हा और घर बना लेता है। लोक देवता कच्ची मिट्टी के ही होते हैं। जिन्हें वह कभी अकेला नहीं छोड़ता रोज उनके माटी के चबूतरे पर एक दिया जला आता है। उन्हें कोई छोटी सी गाथा सुना आता है सुमिरन की कड़ियों को बार–बार दोहराता है। लोक एक पगडण्डी है जिस पर सब अपनी–अपनी राह चलते है। चन्द्रमा को देखकर लगता है वह एक पारदर्शी बर्तन है। जिसमें सूरज अपनी गौओं का दूध दुहकर अंतरिक्ष के छींके पर लटका देता है। पूरी आकाश गंगा में छिटकता हुआ माखन झिलमिलाने लगता है। रात गोरी लगने लगती है। लोक गोरस की मटकी में अपने आप को रोज मथता है। लोक एक बछड़े जैसा है। जिसे भौर होते ही सुरहन गैया रँमाकर जगाती है। लोक ही महिष है जिस पर यम सवारी करते हैं। लोक जीवन और मृत्यु दोनों को पालता है। लोक ही ममता से भरी हिरणी है और लोक ही शिकारी है।

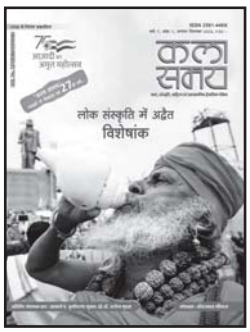

संस्कृति आन्तरिक वस्तु है। इसके अन्तर्गत मनुष्य अपने आचार–विचार उसके जीवन–मूल्य, उसकी नैतिकता, संस्कार, आदर्श, शिक्षा, धर्म, साहित्य और कला का समावेश होता है, अत: संस्कृति एक व्यापक तत्व है। निश्चय ही संस्कृति मानव की साधना की सर्वोत्तम परिणति का ज्ञान इतिहास से होता है। अत: इतिहास एवं संस्कृति का अभेद सम्बन्ध है। सृजन की यज्ञ वेदी पर कर्म की अहुतियों का निरन्तर डाला

जाना लोक के स्वरूप की पहली और आखरी पहचान है। बिना कर्म के लोक परिभाषित नहीं होता। वह एक निरतंर चलती हुई मौखिक ज्ञान की परंपरा है। शब्द एवं भाषा के प्रयोग में लोक ही प्रमाण है। सभ्यता अन्न का उत्पादन बढ़ा सकती है, लेकिन भोजन और अन्न के प्रति दृष्टिकोण क्या हो यह संस्कृति तय करेगी। संस्कृति कहती है –'अन्नं ब्रह्म' भोजन की थाली ईश्वर का प्रसाद है। इसे बिगाड़ना नहीं, पैर के नीचे पड़ने नहीं देना। भूखे के लिए भोजन देने की बात संस्कृति तय करेगी। भोजन की दृष्टि संस्कृति तय करेगी, भोजन का विस्तार सभ्यता तय करेगी। नए–नए इंस्ट्रूमेंट लाना सभ्यता तय करेगी, बजाना क्या है, यह संस्कृति तय करेगी, नए–नए वस्त्र पैदा करने का काम सभ्यता करेगी, वस्त्र कैसा पहनना है यह संस्कृति तय करेगी। दोनों चीजों का अन्तर समझिए। संस्कृति हजारों वर्षो में आती है और हजारों वर्षो तक टिकती है। जन्म–जन्मांतर तक चलती है। जन्म से लेकर अंत तक साथ नहीं छोड़ती, उसका नाम 'संस्कृति' जैसे फूल में सुगंध है, दूध में मख्खन हैं। दिखता नहीं लेकिन हैं। उसकी अनुभूति होती हैं। यह संस्कृति का मर्म है। हमारे संस्कारों की जो आधार भूमि है, वह अध्यात्म है।

आदिगुरु शंकरचार्य ने वनांचलों में बसने वाले लोगों को अपनी लोक–संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए मूल संस्कृति से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया। गिरि–पूजन, नदी–पूजन, वन–देवता–पूजन, उत्सव, मेले, पर्व, तीर्थाटन आदि के द्वारा वैदिक संस्कृति, लोक–संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए विकसित होती रही। सृष्टि का एक प्रयोजन है। व्यक्ति का भी एक मुख्य प्रायोजन है। सृष्टि द्वारा सृष्टिकर्ता अपने प्रयोजन की व्याख्यान करता आया है। व्यक्ति अपनी आत्मपूर्णता का अपनी ब्रह्मरुपता का देह–पाद के पूर्व ही अनुभव कर ले यही वह परम प्रयोजन है। जिसे भारतीय संस्कृति सिद्ध करना चाहती है। अद्वैत–मूर्ति आचार्य शंकराचार्य ने जीवन जगत और जगदीश्वर को अपनाने का पूर्ण दर्शन दिया। उन्होंने चरितार्थ किया कि द्वैत–जगत, अद्वैत–शिव की जटाओं में सुशोभित द्वितीया की कला–सदृश आत्म–शिव का आवरण है। लोक–जीवन में व्यक्त जड़ता, भोग अवसाद व अंधेरे व दुष्टाचार का निवारण कर कामना को सुमंगली श्रृंगार देकर निष्कामना का पावन प्रवाह उन्मुन्त कर उन्होंने लोक–चित्त में ज्ञान–प्रदीप प्रज्वलित किया। भगवान भाष्यकार जगतगुरु आद्य शंकराचार्य का अद्वैत युगों–युगों तक मानवता का पद–प्रदर्शन करता रहेगा।

ओंकारेश्वर के 'एकात्म धाम' सांस्कृतिक एकता का विश्वस्तरीय केन्द्र आचार्य शंकराचार्य, गुरुगोविंदपाद और सनातन परंपरा के प्रति यह कृतज्ञता ज्ञापित करने का अवसर है। बालक रूप में आचार्य शंकर की 108 फीट ऊँची बहुधातु प्रतिमा ''स्टैच्यू आफॅ वननेस'' मध्यप्रदेश शासन के विशाल स्वप्न का एक उपक्रम है! मांधाता पर्वत की हरीतिमा को सुरक्षित रखने के लिए एक विशाल अद्वैत वन इस परियोजना का प्रमुख भाग है। यहाँ आने वाले लाखों श्रद्धालुओं, पर्यटकों, विद्यार्थियों, नर्मदा परिक्रमा के यात्रियों के लिए ओंकारेश्वर का यह तीर्थ एक स्मरणीय प्रेरणा प्रसंग बनेगा। यह स्वप्न साकार प्रदेश के मुखिया श्री शिवराज सिंह चौहान ने 21 सितम्बर 2023 को विशाल संत समागम की उपस्थिति में ओंकारेश्वर धाम में यह गौरवशाली सौगात देशवासियों को सौपी मध्यप्रदेश विश्व का पहला राज्य बना जहाँ आदिगुरु शंकराचार्य का अद्वैत–वेंदात तीर्थ का लाभ जनसाधरण सहित विश्व को मिलेगा। इससे श्रेष्ठ व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का निर्माण होगा। अद्वैत दर्शन ही विश्व को बचा सकता है। ऐसे महापुरुषों की कीर्ति किसी एकयुग तक सीमित नहीं रहती उनका लोकहितकारी चिंतन कालजयी होता है और युगों–युगों तक समाज का मार्गदर्शन करता है। आदि शंकराचार्य हमारे ऐसे ही प्रकाश स्तम्भ है। उन्होंने अपने सांगठनिक कौशल से सम्पूर्ण भारत को धर्म एवं संस्कृति के अटूट बंधन में बाँधकर विभिन्न मत–मतांतरों के माध्यम से सामंजस्य स्थापित किया। यह संस्कृति नैमिषेय भारत कि विराट चेतना को पुनर्जागृत करने का उपक्रम हैं। 'वृहदारण्यक उपनिषद का श्लोक–'' ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम पूर्णात पूर्ण मदुस्यते पूर्वस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवावशि स्यतें'' अपने आप में पूर्णता की बात करता है अर्थात वह परमात्मा सभी में सर्वदा परिपूर्ण हैं यह जगत उस परब्रह्म से परिपूर्ण हैं। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है। आदि शंकराचार्य ने तो यहाँ तक कहा कि हम ही परब्रह्म है। यह पूर्णता ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। अब तो विज्ञान और वैज्ञानिक भी इस बात से सहमत है। 'लोक संस्कृति में अद्वैत' विशेषांक के संपादक द्वय लोक और वेद के अभिनव आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल जी और उनकी सुयोग्य वरिष्ठ शिष्या प्रो. डॉ. सरोज गुप्ता के हम कृतज्ञ है कि इस गूढ़ विषय को दोनों के सम्पादकत्व में आप सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहें हैं। हम इस विशेषांक के विद्वान लेखकों के भी आभारी हैं उन्होंने हमारा आग्रह स्वीकार कर अपना रचनात्मक सहयोग 'कला समय' को दिया। आशा है आपको यह विशेषांक कि प्रस्तुति रुचिकर लगेगी। कुछ महत्वपूर्ण स्तंभ सामग्री, लेख इत्यादि पत्रिका की सीमा–बाध्यता के कारण इस अंक में सम्मीलित नहीं कर पा रहें हैं उसके लिए क्षमा! आगे के अंकों में इसका प्रयास किया जायेगा। कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें अवश्य प्रेषित करें।

अत्यन्त आदर के साथ।

– भँवरलाल श्रीवास

आलेख

अद्वैत दर्शन : लोक आचरण का पर्याय

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

आदिगुरु शंकराचार्य का व्यक्तित्व अपने आपमें प्रज्ञा का साकार पुंज है। जब भी उनकी स्मृति आती है तो लगता है जैसे हम प्रज्ञा का प्रकाशोत्सव मना रहे हों, और आलोक निर्झर बन गया हो। आदिगुरु भगवत्पाद की प्रज्ञा उनके अद्वैत दर्शन में परिलक्षित होती है। यह दर्शन अपने आपमें एक ऐसा दर्शन है जो इस लोक के पोर-पोर में चिंतन और आचरण दोनों के रूप में समाया हुआ है।

आदिगुरु शंकराचार्य के जीवनवृत्त से हम भलीभांति परिचित हैं। उनका जन्म केरल के कालपी, कालड़ी अथवा काषल नामक ग्राम में सन् 788 में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु भट्ट तथा माता का नाम सुभद्रा था जिन्हें विशिष्टा भी कहा जाता है। शंकर ने आठ वर्ष की अवस्था में ही सन्यास ग्रहण कर लिया था तथा इससे जुड़ी यह कथा भी प्रसिद्ध है कि माँ उन्हें जब सन्यास की आज्ञा नहीं दे रही थीं तब इसी बीच नदी में स्नान करते समय मगरमच्छ ने इनका पैर पकड़ लिया तथा जब तक उनकी माँ ने उन्हें सन्यास की आज्ञा नहीं दी तब तक उस मगरमच्छ ने उनका पैर नहीं छोड़ा। शंकराचार्य केवल बत्तीस वर्ष की आयु में ही अपना कार्य पूर्ण कर दिवंगत हो गए। उन्हें भगवान शंकर का अंशावतार माना जाता है।

शंकर दर्शन के बारे में बहुत विस्तार से कहा और लिखा गया है। लेकिन सार रूप में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने ब्रह्म की व्याख्या की तथा कहा कि यह त्रिकाल बाधित, नित्य, चैतन्यस्वरूप तथा आनंदस्वरूप है और जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का आविर्भाव भी ब्रह्म से ही होता है।

आचार्य शंकर एक ऐसे महासागर हैं जिनमें निर्गुण और सगुण भक्ति की दोनों धाराओं के दर्शन होते हैं। उन्होंने अनुभव किया कि ज्ञान की अद्वैत भूमि पर जो परमात्मा निर्गुण, निराकार ब्रह्म है वही द्वैत की भूमि पर सगुण रूप में साकार होता है। उन्होंने जहां एक ओर ब्रह्म के सत्य होने और जगत के मिथ्या होने का उद्घोष किया वहीं शिव, पार्वती, गणेश तथा विष्णु आदि पर भक्तिरस से परिपूर्ण स्त्रोत रचे तथा 'सौंदर्य लहरी' व 'विवेक चूड़ामणि' जैसे श्रेष्ठ ग्रंथों की रचना की। माँ नर्मदा पर लिखा उनका नर्मदाष्टक सुप्रसिद्ध है तथा वह माँ नर्मदा की सर्वश्रेष्ठ आराधना है।

'सौंदर्य लहरी' में उन्होंने देवी के अद्भुत नखशिख सौंदर्य की आराधना की है। आदिगुरु शंकराचार्य ने प्रस्थान त्रयी के भाष्य की रचना की तथा शैव, शाक्त और वैष्णवों के बीच जहां एक ओर द्वन्द्व को समाप्त किया वहीं दूसरी ओर पंचदेवोपासना का मार्ग प्रशस्त करते हुए भारतीय दर्शन की उदात्तता का आख्यान किया। उन्होंने ब्रह्म सूत्रों की विशद और रोचक व्याख्या की तथा मुण्डक, ऐतरेय, तैत्तिरीय, ईश, बृहदारण्यक और छान्दोग्योपनिषद् सहित कठ, प्रश्न व केन जैसे उपनिषदों के भाष्य लिखे। उन्होंने वेदों का विरोध करने वाले चार्वाक, जैन और बौद्ध मतों को अपने शास्त्रार्थ से खण्डित किया।

अपनी तपस्या और पांडित्य से भगवत्पाद ने समूचे भारत की चेतना को झकझोर कर जागृत कर दिया। उन्होंने सनातन धर्म की विभिन्न विचारधाराओं का एकीकरण करते हुए भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए, ये हैं, ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम, श्रृंगेरी पीठ, द्वारिका शारदा पीठ और पुरी गोवर्धन पीठ।

उन्होंने प्रतिपादित किया कि जीव अज्ञान के कारण ही ब्रह्म को नहीं जान पाता जबकि ब्रह्म तो उसके अंतर में ही विद्यमान है तथा शरीर में होने वाली प्रतिक्रियाएं इसका उदाहरण है। शरीर तो एक होता है लेकिन जब पैर में कांटा चुभता है तब आंखों से पानी आता है और हाथ कांटा निकालने के लिए तत्पर होते हैं। इसलिए उन्होंने 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष किया।

जहां तक लोक का प्रश्न है भारत में लोक की अवधारणा व्यापक है। यह अवधारणा पश्चिम के उस फोक की अवधारणा से भिन्न है जिसमें केवल अनपढ़ और ग्रामीण समाज को लोक माना गया है।

ऋग्वेद की ऋचा है 'यो वो वृताभ्यो अकृणोदलोकम्'। इसका आशय है घेरे से उन्मोचन। लोक का अर्थ है खुली जगह और

आलोकमय स्थान।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में लोक का अर्थ है देखने वाला।

महर्षि व्यास ने महाभारत में लोक के संबंध में कहा –

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भुवेन्नर'

अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वत: अपनी आंखों से देखता है वही उसे सम्यक रूप से जान सकता है। गीता में लोक संग्रह शब्द आया है जिसका तात्पर्य भी साधारण जनता के आचार–विचार तथा आदर्श से है।

उपनिषदों में लोक का अर्थ इहलोक और परलोक से लिया गया है।

यास्क के निरुक्त में पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक आदि के साथ–साथ संसार, जगत, जन, समाज आदि के पर्याय हैं।

'हिन्दी शब्द कल्पद्रुम' में लोक शब्द का अर्थ, लोग, मानव, यश, कीर्ति व सृष्टि है।

हलायुध कोष के अनुसार लोक के अंतर्गत पूरा जगत आता है, पूरी सृष्टि आती है।

तुलसी के अनुसार त्रिलोकीनाथ अर्थात् ईश्वर भी लोक के वशीभूत हैं।

''लोक एक भांति को त्रिलोकनाथ लोकबस''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबंध संग्रह 'चिंतामणि भाग–1' में लोकमान्य, लोकसत्ता, लोक व्यवहार, लोक कर्म तथा लोक मंगल आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक की व्याख्या करते हुए कहा है कि लोक शब्द जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। लोक की सच्ची व्यंजना देखना ही है।

इस लोक की परिधि बड़ी व्यापक है। यह केवल मनुष्यों का समूह नहीं है बल्कि उसमें सृष्टि के सभी चर व अचर सम्मिलित हैं।

भारतीय लोक की अवधारणा अपनी आत्मा के अनंत विस्तार की और अपने स्व के पूर्ण विसर्जन की है।

पं. विद्यानिवास मिश्र मानते हैं कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में लोक दृष्टि का अर्थ समग्रता की दृष्टि है और वैयक्तिकता का विसर्जन ही लोकदृष्टि का सच्चा पर्याय है। यदि एक छोटा सा भी उपादान छूट जाए तो यह दृष्टि अधूरी रहती है।

यह लोक निजता के विसर्जन और समग्र में समा जाने का आकांक्षी है। भगवत्पाद ने लोक की इसी अवधारणा को अपने एकात्म दर्शन में साकार कर दिया। उसे भाषा दे दी और अपने कृतित्व से इस महादेश के संपूर्ण लोक को एक सूत्र में बांध दिया। पूरे भारत में अपनी धर्म ध्वजा फहराई तथा चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना कर इस देश को आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक एकता के अविच्छिन्न सूत्र में बांध दिया तथा पूरे लोक को यह संदेश दिया,

दुर्जनः सज्जनो भूयात सज्जन' शांतिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बंधेम्यो मुक्तः चान्यान् विमोच्येत्।।

अर्थात दुर्जन सज्जन बनें, सज्जन शांत बनें। शांतजन बंधनों से मुक्त हों और मुक्त अन्य जनों को मुक्त करें।

इस प्रकार भारतीय सनातन दृष्टि में जो लोक ऋग्वैदिक काल से निजता से मुक्ति का पर्याय माना गया आचार्य शंकर का अद्वैत दर्शन उसी लोक का आख्यान करता है। शंकर अविद्या की आलोचना करते हैं और विद्या को अपरिहार्य मानते हैं। विद्या के लिए शंकराचार्य अमानित्व अर्थात मान रहित या विनम्रता, अदम्भित्व अर्थात दंभ मुक्त चित्त, अहिंसा, क्षांति अर्थात सहनशीलता, अनहंकार अर्थात मिथ्या अभिमान से रहित होना, इत्यादि 24 साधन बताते हैं। इन गुणों में ही तो सच्चा लोक प्रतिष्ठित है। आदिगुरु शंकराचार्य की इस लोक को सबसे बड़ी देन उसे एकात्म भाव से एक कर देने की है। शंकर का अद्वैत धर्म के सच्चे मर्म को उद्घाटित करता है।

अद्वैत की दृष्टि वास्तव में लोक दृष्टि ही है। ऐसी लोक दृष्टि जो यह विश्वास करती है कि जो व्यक्ति आत्मज्ञान को उपलब्ध कर लेता है उसमें निष्काम कर्म स्वयं फलित हो जाता है। नित्य कर्म में संलग्न व्यक्ति का चित्त ऐसी शुद्धता को प्राप्त कर लेता है जिससे जीव आत्मस्वरूप का बोध करता है। आदिगुरु शंकराचार्य का मानना था कि ज्ञान महत्वपूर्ण है और ज्ञान वह है जो स्वयं का स्वयं से साक्षात्कार करा दे। स्वयं और ब्रह्माण्ड के एक होने से जुड़े होने का विचार अद्वैत दर्शन का सार है। यह दर्शन अपने से पूर्ववर्ती दर्शनों को भी अपने आपमें समाविष्ट करता है।

शंकर के ब्रह्म को दार्शनिक चिंतकों ने दुरूह बना दिया जबकि यह दर्शन सहज और ग्राह्य है। यदि ऐसा नहीं होता तो शंकर के समय के लोक में भी एक्य नहीं होता और वे इस महादेश की भिन्नता को एकसूत्र में पिरोकर अपने एकात्मवाद के माध्यम से उसे अभिन्न नहीं बना पाते।

उनकी वाणी अकाट्य थी। अपने समय के जो भी अवैदिक मत थे उनका उन्होंने खण्डन किया और अखण्ड भारत की यात्रा कर उसे एकसूत्र में पिरो दिया। वास्तव में शंकर का दर्शन भारतीय लोक

के एक्य को परिभाषित करने वाला दर्शन है।

यह दर्शन लोक के पोर-पोर में कैसे व्याप्त हुआ इसका उदाहरण हमें उस निमाड़ अंचल में मिल जाता है जहां ओंकारेश्वर में उन्होंने स्वामी गोविन्दपाद से दीक्षा ली थी। संत ब्रह्मगीर से लेकर सिंगाजी तक के एकात्मवाद और अद्वैत को गाने वाले महान निर्गुनिया संत निमाड़ में हुए जिनकी वाणी आज भी वहां के कण-कण में गूंजती है।

निमाड़ में आचार्य शंकर का प्रभाव जिन निर्गुण पंथी संत कवियों में मिलता है, उनमें **संत ब्रह्मगीर, स्वामी मनरंग गिरि** एवं **संत सिंगाजी** के नाम प्रमुख हैं। इनका समय कबीर व उनके कुछ बाद का समय है।

हिन्दी के ख्यात ललित निबंधकार गोविन्द गुंजन ने इन कवियों की बानी के परिप्रेक्ष्य में शंकर दर्शन को परखा है। स्वामी ब्रह्मगीर के एक भजन को उदृत करते हुए वे लिखते हैं,

'समझी लेओ रे मना भाई, अंत नी होय कोई आपणा।
आप निरंजन निर्गुणा, सगुण तट ठाड़ा,

यही रे माया के फंद में ,नर आण लुभाणा। /भवसागर को तैर के,किस विध पार उतरणा नाव बनी खेवट नाहिं, अटकी रह्यो रे निदाना/कोट कठिन गढ़ चैढणा, नर आण लुभाणा घड़ियाल बाजत पहर का, दूर देश का जाणा/माया के भ्रम नहीं भूलणा, ठगी जासे निदाना ब्रह्मगिरी कहते भये, पहिचाण ठिकाना।

शंकर जिसे माया की लीला कहते हैं उसी से ब्रह्मगीर सावधान कर रहे हैं, इस पद में एक महत्वपूर्ण संकेत है, जो निर्गुण, सगुण ब्रह्म के अंतर को ठीक शंकराचार्य के मतानुसार व्यक्त करता है, वे कहते हैं – 'आप निरंजन निर्गुणा, सगुण तट ठाड़ा। जो निर्गुण ब्रह्म है वह सगुण के घाट पर खड़ा है अर्थात सगुण और निर्गुण एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं, बीच में केवल एक किनारा है सगुण का जिसे पार करते ही निर्गुण निराकार ज्ञेय की उपलब्धि हो सकती है।

दूसरा महत्वपूर्ण संकेत माया का है, इसी माया के फंदे में फंसा मनुष्य अपना स्वयं का ब्रह्म स्वरुप भूल जाता है, अन्यथा अहं ब्रह्मास्मि का बोध दूर नहीं है। गूढ़ अद्वैत दर्शन को लोक संत ने जिस तरह सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है वह चमत्कृत कर देने वाला है। कहते हैं, इसी पद को ब्रह्मगीर के शिष्य स्वामी मनरंग गा रहे थे, जिसे सुन कर सिंगाजी वैराग्य को उपलब्ध हो गये थे। यह घटना निमाड़ के भामगढ़ और रणगांव के बीच बसे भैसावा गांव की है। आज भी निमाड़ में यह लोक के बीच बड़ा लोकप्रिय पद है तथा इसकी व्याप्ति निमाड़ के बाहर भी बहुत है।

एक पद में संत ब्रह्मगीर उस मार्ग पर किसी नाव या किसी केवट के ना होने की भी बात कहते हैं, अर्थात यह यात्रा स्वयं की ही साधना से संभव है, इसमें कोई गुरु कोई मार्गदर्शक नहीं मिलता जो पार करा दे। यह सहज साधना तब ही संभव है जब मन माया के भ्रम से मुक्त हो सके। यही शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का मूल सूत्र है।

एक अन्य पद में संत ब्रह्मगीर कहते हैं-

आखिर चलना अंत को, निर्गुण घर जाना
हम परदेशी पावणा, दो दिन का मेजवान।
नाद से बिदु जमाइयां, जैसा कुंभ का काचा
काचा कुंभ ना रहे, एक दिन होय गा विनाशा।
खाया पिणा सो आपणा, दिया लिया सो साथ
एक दिन अचरज होय गा, उठी लागेगे बाट।
ब्रह्मगिरी ब्रह्म ध्यान में, ब्रह्म ही कियो देवा
ब्रह्म ब्रह्म मिसरित भयो, करी ब्रह्म की सेवा।

इस पद में एक तरफ जहां नाद बिंदु आदि हठ योग साधना मूलक प्रतीकों का भी सुंदर प्रयोग है वहीं ब्रह्म के ध्यान में स्वयं के ही ब्रह्म स्वरुप की उपलब्धि का भी संकेत है जिसे शास्त्रीय शब्दों में – 'अहं ब्रह्मास्मि' कहा गया है। अंत में निर्गुण निराकार ही बचता है जब सगुण के तट से आगे की यात्रा पूरी हो जाती है। एक दिन मार्ग मिल जाता है, तब यह सहज साधना का पथिक अपने रास्ते पर निकल पड़ता है – 'एक दिन अचरज होय गा, उठी लागोगे बाट।' इसमें सबसे महत्वपूर्ण संकेत ब्रह्म के उस नाद स्वरुप की ओर है, जिसे हम ओंकार के रूप में जानते हैं। यह ब्रह्म ही नाद रूप में ओंकार ध्वनि है जिसे साधक अनाहत नाद के रूप में जानते हैं।

सिंगाजी निर्गुण ब्रह्म के उपदेष्टा है-

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण हारा।
खोजत ब्रह्म जलम सिराणा, मुनिजन पार न पाया,
खोजतऽ खोजतऽ शिवजी थाके, वो ऐसा अपरंपारा
शेष सहस्त्र मुख रटे निरंतर, रैन दिवस एक सारा
ऋषि मुनि ओ सिद्ध चौरासी, और तैतीस कोटि पचिहारा।
त्रिकुटी महल में अनहद बाजे, हॉट शब्द झंकारा
सुकमणि सेज शून्य मऽ झूले, ओ सोहम पुरुष हमारा।
वेद कहे और कहे निर्वाणी, श्रोता करो विचारा।
काम क्रोध मद मत्सर त्यागो, झूटा जगत पसारा।
एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा।
सिंगाजी नऽ भर नजरां देख्या, ओ ही गुरु हमारा।

इस पद में सिंगाजी निर्गुण ब्रह्म स्वरूप बताते हुए त्रिकुटी महल, अनहत नाद सुकमणि सेज इत्यादि हठयोग मार्गीय कूटपदों

का उपयोग करते हैं एवं 'सोह्मं' के निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, सोह्मं – वह ब्रह्म है, यह साधना पूरी सृष्टि में ब्रह्म का वास देखने वाली ईशावास्योपनिषद की दृष्टि हैं जिसका विवेचन शंकराचार्य ने किया है।

वह ब्रह्म वाणी से व्यक्त नहीं होता, भले ही हज़ार मुखों से शेष उसका गुणगान करते रहें। ऋषि मुनि से लेकर भगवान् शिव भी जिसकी महिमा बखानते थक जाते हैं, पर उसका पार नहीं पाते, ऐसा वह निराला न्यारा निर्गुण ब्रह्म है। इस पद में सबसे महत्वपूर्ण संकेत यह है कि यह पूरा संसार एक ही ब्रह्म का विस्तार है – 'एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा। यहाँ पसारा शब्द विस्तार के अर्थ में है, किन्तु निमाड़ी में यह एक और विशेष अर्थ विस्तार को देता है वह है बिखरा हुआ विस्तार। यह सिंगाजी की दृष्टि का चमत्कार है, कि वह इस संसार के विस्तार के साथ ही उसके बिखराव को भी व्यक्त कर देते हैं। साथ ही झूठा जगत पसारा कहकर जगत मिथ्या का भी संकेत कर देते हैं।

अंत में वे कहते हैं –

वो है, सो तू है, तू है सो वो है, रख निश्चय अधारा
ये है तंत, संत नित प्यारा, रख निश्चय ये धारा।

यहाँ सोह्मं से लेकर तत्वमसि तक की साधना यात्रा संपन्न होती है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। कबीर की पूरी निर्गुनिया परंपरा आचार्य शंकर से प्रभावित है।

सुप्रसिद्ध चिन्तक और प्रख्यात ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय ने आचार्य शंकर के अवदान को बड़े मौलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है तथा यह बाताया है कि उन्होंने किस प्रकार उस वामाचार से लोक को मुक्त किया जो एक कदाचरण के रूप में उस समय के लोक में प्रचलित था तथा किस प्रकार उनहोंने उपासना पद्धतियों को सरल किया। उनके अनुसार यह वह समय था जब अधर्म का एक धार्मिक संस्करण वामाचार के रूप में प्रचलित था। शंकर ने उसके स्थान पर समयाचारी दक्षिणमार्गी पद्धति पर बल दिया। वे इस पद्धति के जन्मदाता नहीं थे लेकिन उन्नायक थे। उन्होंने सौंदर्य बोध के माध्यम से ध्यान–धारणा और समाधि के कठिन मार्ग को सुगम बनाया तथा इसके लिए 'श्रीविद्या' की उपासना पद्धति का प्रवर्तन किया। आद्या त्रिपुर सुंदरी को कामेश्वर शिव की 'महाविद्या', 'महाप्रज्ञा' के रूप में उपस्थित करने के लिए ही उन्होंने 'सौंदर्य लहरी' की रचना की तथा वामाचारी बौद्ध व हिन्दू तंत्रों के गलित और ह्रासोन्मुख पथ को उन्होंने विशुद्ध पवित्र 'भावना' मार्ग द्वारा परिष्कृत करने का उद्यम किया। उन्होंने दक्षिण भारत में प्रचलित शिव उपासना पद्धति के बारे में भी विचार किया तथा समाचार पद्धति के लोक प्रचलित सारी वामाचारी अर्चा के स्थूल रूपों को सूक्ष्म भाव प्रदान रूप दे दिया। उन्होंने स्थूल योनि पूजा के स्थान पर श्रीयंत्र की पूजा पर बल दिया और शारदा पीठ तथा कामकोटि पीठ पर उन्होंने स्वयं श्रीयंत्र की स्थापना की तथा समयाचारी दक्षिणमार्गी पूजा पद्धति चलाई।

आदिगुरु शंकराचार्य ने नारी के उस शक्ति रूप को प्रतिष्ठित किया जिसकी कुत्सित पराकाष्ठा तक उसे बौद्ध और वामाचारी ले जा रहे थे। इसके विरोध में उन्होंने सांस्कृतिक परिमार्जन किया।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है भारत के जनजातीय लोक के विश्वास और उसकी परम्परा में भी शंकर का अद्वैत विद्यमान है।

आचार्य शंकर अर्थात शंकराचार्य ने जिस अद्वैत दर्शन को अंगीकार कर उसका प्रचार किया वह अद्वैत दर्शन केवल निराकार ब्रम्ह की ही उपासना नहीं करता अपितु सगुण रूप में भी ब्रम्ह को पूजता है और इसका सबसे बड़ा उदाहरण आचार्य शंकर के द्वारा प्रणीत 'सौन्दर्य लहरी' है जिसमें देवी के स्वरूप को काव्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। इसलिए जनजातीय दर्शन भी सगुण और निर्गुण स्वरूप से प्रभावित रहा है तथा इस दर्शन ने भी यह स्वीकार किया है कि पूजा के अस्तित्व निर्गुण भी होते हैं और सगुण भी। प्राय: अधिकांश जनजातियां पुनर्जन्म को स्वीकार करती हैं। उदाहरण के स्वरूप उरांव जनजाति जो छत्तीसगढ़ और बिहार में प्राय: निवास करती है वह पुनर्जन्म को स्वीकार करती है तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत में निहित इस अवधारणा को भी स्वीकारती है कि जो सत्कर्म करता है उसे स्वर्ग मिलेगा तथा दुष्कर्म करने वाले को नर्क तथा यह भी कि उसका अगला जन्म दुखमय होगा।

भारतीय संस्कृति में देवी पूजा को मुख्य माना गया है लेकिन जनजातीय संस्कृति में प्रकृति पूजन को मुख्य माना गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विश्व में भारत से ही जनजातीय समाज और संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। जनजातीय संस्कृति में आदि देव फड़ा पेन और भगवान शिव एक ही हैं, अर्थात अद्वैत हैं।

आज भी गाँव–गाँव में ग्राम्य अर्थात गाँव देवी, वनदेवी, देवी मंडप, बाघ देवी, ज्वाला माई, सती देवी, धूमावती, मालादेवी, खेरमाई माता, टोंगरी देवी, डूंगरी माता, सरना देवी के मन्दिर, मंडप, पट, मढ़िया व अन्यान्य देवी से सम्बन्धित प्रतीक स्थल विद्यमान हैं। उरांव, मुण्डा, खड़िया, संथाली, पहाड़िया आदि तो ग्रामीण, कस्बाई, शहरी क्षेत्रों में निवास करने के कारण बहुसंख्यक हिन्दुओं की भांति ही देवी मंडपों, देवी मन्दिरों व पूजा पंडालों में जाकर नवदुर्गा के

विभिन्न स्वरूपों की पूजा-अर्चना करते हैं।

भील समाज में नवणी पूजा, गोंड समाज में खेरो माता, देवी माई की पूजा, झारखण्ड में दसांय नृत्य से उपासना, मध्यप्रदेश के कट्ठीवाड़ा क्षेत्र में डूंगरी माता, गुजरात के जौनसार-बावर में अष्टमी पूजन, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखण्ड में जइया (जवा) पूजा, गुमला जिले में श्रीबड़ा दुर्गा मन्दिर कोरकू समाज में देव-दशहरा के रुप में देवी माँ की पूजा होती है। भील समाज में नवणी पर्व नवणी में भील अपनी कुलदेवी व दुर्गा-भवानी का पूजन करते हैं। इस प्रकार हमारा जनजातीय समाज उस देवी की अपने-अपने ढंग से आराधना तथा पूजा करता है जिस देवी की वंदना शंकर करते हैं। देवी के ये जनजातीय स्वरुप जिनकी संख्या अपार है हमारी उसी परंपरा से सम्बद्ध हैं जिसके आदि स्रोत शंकर हैं और जो अपने अपने अपने परिवेश के अनुरूप रूपांतरित हो गए हैं।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि हमारे जनजातीय या आदिवासी समाज में भले गूढ़ दर्शन की कोई अवधारणा न हो तथा वे प्रकृति को ही अपना सर्वस्व मानते हों व ईश्वर के रूप में कोई उनका सगुण ईश्वर न हो किंतु वे हमारे लोक के अविभाज्य अंग हैं तथा उन्होंने अपने आचरण में एकएकात्म भाव को अंगीकार किया है। वे निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों में शक्ति की आराधना करते हैं। आदिवासियों के बीच में जो टोटम की धारणा है उसके पीछे भी एक सगुण विश्वास ही है।

विस्तार से इस संबंध में चर्चा की जा सकती है।

किन्तु यह सार रूप में कहा जा सकता है कि वह आदिगुरु शंकराचार्य का ही अद्वैत दर्शन था जिसमें सगुण और निर्गुण दोनों समाहित थे तथा जो लोक के आचरण में रुपांतरित होकर प्रत्यक्ष हो गया था।

आचार्य शंकराचार्य वास्तव में न केवल एकात्म के आख्याता हैं बल्कि लोक के आचरण में उस एकात्म को साकार कर देने वाले महान संत हैं जिन्हें माँ नर्मदा के तटों ने सुदूर दक्षिण से बुलाकर इस अद्वैत भाव से दीक्षित कर दिया।

उनका दर्शन हमारे लोक आचरण की महान धरोहर है।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
संपर्क : 85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

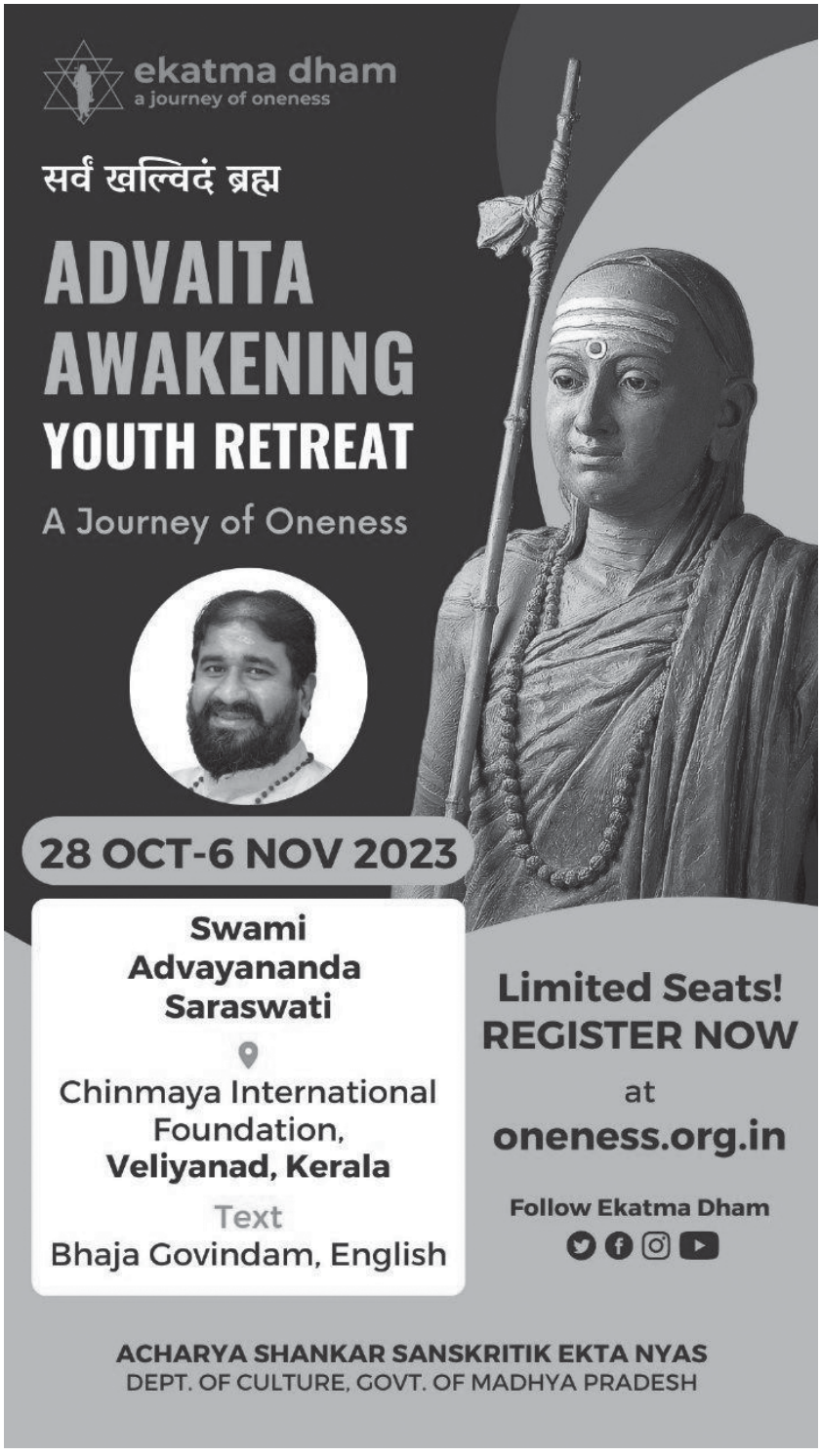

शंकरो लोक शंकरः

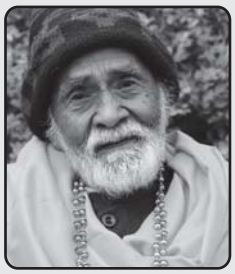

पं आचार्य
दुर्गाचरण शुक्ल

मेरे मन में आचार्य शंकर के प्रति सदा से गहरी जिज्ञासा रही है। में उन्हें लोक संग्रही के रुप मेँ देखता आ रहा हूँ। बचपन में अपने घर में ही मैने उनकी पुस्तक **सौन्दर्यलहरी** पढ़ी! उसके पद्य बिना अर्थ जाने याद किये। आचार्य के जीवन के संबंध में कुछ कहानियां सुनी तब से मेरा आचार्य के प्रति गहरा आदर भाव उत्पन्न हो गया है।

आठ वर्ष की उमर में चतुर्वेदी बन जाना और सन्यास की इच्छा असंभव नहीं है। आज भी सात-आठ की उमर में गीता भागवत कंठस्थ कर उन पर गहरा व्याख्यान देने वाले कथाकारों की कमी नहीं है, पर मेरी जिज्ञासा उस शंकर के बारे में थी, जिसने सन्यास लेने के लिये ग्राहाग्रास लीला रची थी। मेरी जिज्ञासा थी उस शंकर के बारे में जिसने उफनती रेवा को कमण्डलु में भर लिया था। और बद्रीनाथ में अलकनंदा गंगा में डुबकी लगाकर विष्णु की मूर्ति का उद्धार किया था। मेरी जिज्ञासा सनन्दन को पद्मपाद बनाने वाले, जड़ बालक को त्रोटकाचार्य बनाने वाले भारतीभक्त शंकर और परकाया-प्रवेशी शंकर के प्रति थी। मैं यह सोचता था कि आचार्य शंकर ने यह सब कैसे किया ?

आज इस का उत्तर हमे मिल चुका है। मैंने ओंकारेश्वर की यात्रा की और नर्मदा के तट पर तांत्रिक-योगी श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य के आश्रम को देखा तब जाना कि श्रीगोविन्दभगवत्पादाचार्य परम योगी थे। श्रीगोविन्दभगवत्पादाचार्य के गुरु श्रीगौड़पदाचार्य थे । श्रीगौड़पदाचार्य ने माण्डूक्योपानिषद की करिका लिख कर अजातवाद की स्थापना की थी। उन्होंने भगवती परा शक्ति ललिता देवी से संबंधीत **सुभगोदयस्तुति** नामक ग्रंथ की रचना की। स्वयं को श्रीविद्या के उपासक तांत्रिक साधक सिद्ध किया। ये सीद्धियां उन्हें प्राप्त हुई थीं, जन्म से अपने पिता के पुण्यों से और बाद में गुरुओं के आशीष से।

शंकर ने अपनी प्रतीभा से **प्रस्थानत्रयी** पर भाष्य लिखा। दादा गुरु श्रीगौंडपाद के अजादवाद को आगे बढाया और सौन्दर्य लहरी तथा प्रपंचसारतन्त्र की रचना कर के स्वयं को श्रीगौड़पाद के अनुयायी श्रीविद्या के उपासक तांत्रिक के रूप में प्रस्तुत किया।

वें मानतें थें, जानते थे, कि कोरे शास्त्र ज्ञान से न तो तत्व का निर्णय हो सकता है और ना ही तत्व की अनुभूति। सिद्धांत व्यवहार प्रयोग दोनो होने चाहिये। केवल सिद्धांत जली हुई घास की तरह निरर्थक है। वें मानते थे इसलिये कहतें थे कि- भाई कुछ करो। कोरा ज्ञान मत बघारो।

भज गोविन्द भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमतें।
प्राप्तें सन्निंहिते मरणें नहि नहि रक्षति डुकृत्र करणें।

यदि केवल बन्ध्या प्रतिभा- प्रदर्शन से कुछ होता तो अद्वैतसिंद्धिकार आचार्य श्रीमधुसूदन सरस्वती यह न कहतें कि '' बासुरीवाला कृष्णा के अतिरिक्त कोई और तत्व है, यह मैं नही जानता-

वशीविभूषितकारानवनीरदाभात्
पीताम्बरादरूणाबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनोंत्रात्,
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने।।

शंकर के दो रूप थें।

1. सिद्धात वादी शंकर और 2. व्यावहारिक शंकर

सिद्धांती शंकर अद्वैतवादी थें और व्यावहारिक शंकर शाक्ततांत्रिक थें। उस समय और आज भी शंकर के ये दोनो रूप प्रासंगिक है। मिथ्यामतवादी वितण्डवियों का दमन तब भी जरूरी था और आज भी जरूरी है। शंकर ने ये सब किया था।

शंकर ने लोक अनुग्रह के लिये ही शरीर धारण किया था। वे शंकर के अवतार थें, लोक दुख निवारण के लिये और लोक संग्रह के लिये ही।

प्रपंचसारतन्त्र के विवरण में श्रीपद्यपाद की अवतरणिका

देखियें–

'इह खालु लोहकानुग्रहैकरसतया कृतशरीरपरिग्रहो भगवान् शंकराचार्यः अपरोक्षीकृत- परदेवतात्मतत्वः परमां विभूतिकाष्ठां प्राप्तः स्वयमेकाकिसम्पदा लज्जमनों दुःखीकृतजन- कारुण्याक्रान्तमानसश्च सन् तदनुग्रहाय समस्तागमसार संग्रहपञ्चअचागमसारसंग्रहरूपं ग्रन्थं चिकीर्षुः अभिमतसकल प्रयोजनसिद्धय प्ररदेवतातत्वानुस्मरणलक्षणम् आशीर्लक्षणं च मलगमाचरन ग्रन्थारम्भौपयिक विषयादिकमपि अर्थात सूचयति अकचटतपयाद्यैरित्यादिना।

रूचीनां वैचित्रयादृजुकुटिलनानापथजुषाम,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव।

– के अनुसार शंकर शैव, शाक्त, बैष्णव, गाणपत्य और सौर सभी सम्प्रदायों में प्रचलित तान्त्रिक साधान- विधियों के प्रबल समर्थक थे। जिससें, जब और जहाँ जनदुःख का निवारण हो, वह साधन और साधना का वह पथ तान्त्रिक शंकर को मान्य था।

केवल शास्त्र के ज्ञान से तत्वों का निर्यणय नहीं हो सकता ना ही तत्व की अनुभूति हो सकती है। इसलिये सिद्धांत की स्थापना की अपेक्षा इसका प्रयोग अधिक आवश्यक है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रस्थानत्रयी पर आस्था रचने वाले अद्वैत के स्थापक शंकर ने प्रपंचसार तंत्र लिखा और सौन्दर्य लेहरी की रचना की।

शंकर तांत्रिक इसलिये है कि वे विस्तारवादी है। विस्तारवादी में श्रद्धा और उपकरण दोनों का योग है। विस्तारवाद लोक से लेकर वेद तक फैला है। इस में विश्वास और विश्वास को रूप देने वाले साधन दोनों योग हैं। तांत्रिक प्रयोगो में विश्वास और साधन दोनो की जरूरत होती है। इसीलिये वे लौकिक प्रयोगों का प्रतीपादन विस्तार से करते हैं।

उन्होंने अपने महान तांत्रिक ग्रंध श्रीप्रपंचसार तंत्र के प्रणवसांधना पटल में योग साधना की जिन विधियों का वर्णन किया है वै अद्भुत है। जैसे ओम्कारके दस नाम, ओंकार साधना की सात विधिया, परकायाप्रवेश, कार्यवंचन विधि धारणा, के स्थान, योगियों को प्राप्त होने वाले वैभाव का विशद स्पष्ट एवं सरल निरूपण किया है। जो अन्यत्र दुर्लभ है।

शंकर विरुद्धों में सामंजस्य के प्रतीक है। उनकी रूचि आत्यन्तिक सत्य की अपेक्षा व्यावहारिक सत्य में अधिक है। न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्माः न मे जातिभेदः कहने वाला संन्यासी शंकर वर्णाश्रमधर्म और जातिवाद का सबसे बड़ा समर्थक है।

नारी के लिये शंकर में पिता का वात्सल्य था, प्रेमी की व्याकुलती थी और पुत्र की श्रद्धा थी नारी का नाम लेते उसकी जिहा पर छाले नही पड़ते थें। उनकी वाणी पर छट्टा लगाम नहीं लगती थी। उनमुक्त भाव से नारी का अनुपम सौन्दर्य निरखते उनकी पलके लज्जित नही होती थीं, अपराध–बोध नहीं होता था। शंकर नारी – सौन्दर्य के अनुपम पारखी, संवेदक और प्रशंसक थे। नारी के प्रति शंकर बिल्कुल सामान्य थें।

श्रीविद्याः के दो मुख्य रूप है – कादि और हादि। कादिसाधना गृहस्थों के लिये विहित है और हादि साधना परमान्नंदैकरसिक संन्यासियों के लिये। दोनो के बीच कोई लक्ष्मण रेखा नही है। जो साधक भगवती ललिता के श्री और सुन्दरी दोनों रूपों की अभेदरूप से साधना करते है उन्हे मिश्राचारी कहा जाता है। ऐसे 'मिश्राचारी' शाक्त–साधकों को भोग और मोक्ष दोनों उपलब्ध है–

आचार्य शंकर मिश्राचारी शाक्त थे। सौन्दर्यलहरी इसका प्रमाण है। शंकर पहले **शिवः शाक्ति कमःक्षितिरथ रविः शीतकरण....**

अर्थात् कएईलह्री, हसकहलही सकलह्री' के रूप में कादि विद्या का उदघाटन करते है। पश्चात उन्होंने

समर योनिं लक्षमी त्रितयमिद्रमादौ तव मनों–...

अर्थात हसकलही, हसकहलही, सकलही के रूप में हादि विद्या का उदघाटन किया है।

इस प्रकार कादि और हादि दोनों विद्याओं का निर्वचन करके शंकर दोनों साधना– पद्धतियों में अपना आचार्यत्व सिद्ध करते है, लेकिन, मूलतः शंकर कादिविद्या के उपासक है। समस्त सौन्दर्यलहरी इसका प्रमाण है।

श्रीविद्यार्णव के अनुसार शाक्त–सम्पादाय के इकहत्तर मानवौध दीक्षागुरुओं मे गौडपादाचार्य, परमाचार्य, सर्वज्ञाचार्य, सर्वाचार्य, गोविन्दाचार्य तथा शंकराचार्य ये सात कादि और हादि दोनों शाक्तसम्प्रदायों के सम्पूज्य मानवौघ दीक्षागुरु हैं।

शाक्त उपासकों में किसी नारी गुरु से दीक्षा प्राप्त करना बहुत बडा सौभाग्य और शुभ माना जाता है–

स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ।
बहुजन्मार्जितत् पुण्याद बहुभाग्यावशाद यदि।
स्त्रीगुरुर्लभते नाथ !..... ।

शंकर को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पहली वात्सल्य – दीक्षा उन्होनें अपनी माँ से प्राप्त की थी। दूसरी काम के प्रति अनुरक्ति – दीक्षा उन्होने नारी गुरु उभ्यभारती से तथा कामकला की व्यावहारिक

दीक्षा तीसरी नारी गुरु अमरूक की सम्राज्ञी से प्राप्त हुई थी।

शंकर सन्यासी तो थें, विरागी नहीं। वे 'अहिमिव जनयोगं सर्वदा वृर्जयद्योदं' परमहंस संन्यासी नहीं थे। उनके जन्म का लक्ष्य ही 'जनयोग' लोकसंग्रही था। इसीलिये शंकर ने संन्यासी और गृहस्थ दोनों को शाक्तदीक्षा दी।

विद्यारण्य.. के अनुसार शंकर के निग्रहानुग्रहक्षम चौदह शाक्त –शिष्यों में से शंकर (सुरेश्वराचार्य), पहापादाचार्य, बोधाचार्य (त्रोकटाचार्य), गीर्वाणाचार्य और आनन्दतीर्थ् नामक पांच शिष्य संन्यासी: तथा सुन्दर, विष्णुशर्मा, लक्ष्मण मल्लिकार्जुन, त्रिविक्रम, श्रीधर, कपर्दी, केशव तथा दामोदर नामक नौ शिष्य गृहस्थ थें। आचार्य शंकर के गृहस्थ शिष्यों को गृहस्थों का दीक्षित करने का अधिकार प्राप्त था।

अचार्य शंकर ने लोककल्याण के लिये ही संन्यासी और गृहस्थ दोनों आश्रमियों को दीक्षा दी और प्रपंचसारतन्त्र नामक तांत्रिक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ पर शंकर के संन्यासी शिष्य आचार्य पद्दापाद ने विवरण लिखकर लोक –सामान्य के लिये तांत्रिक शाक्तसाधना–पथ और भी सुगम बना दिया।

इस प्रकार आचार्य शंकर ने कही भी लोक की उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने प्रस्थान मयी पर भाष्य लिख वेद – मार्ग और प्रपंचसारतन्त्र एवं सौन्दर्य लहरी की रचना कर लोक–मार्ग इन दोनों मार्गों का मंगल मिलन कराया है। वे सच्चें लोक संग्रही आचार्य है। निश्चित ही उनके लिये **शंकरो लोक शंकरः** –पूर्ण रूप से उचित है। उनके चरणों मे प्रणाम

लेखक– वरिष्ठ साहित्यकार
इस अंक के अतिथि संपादक हैं।

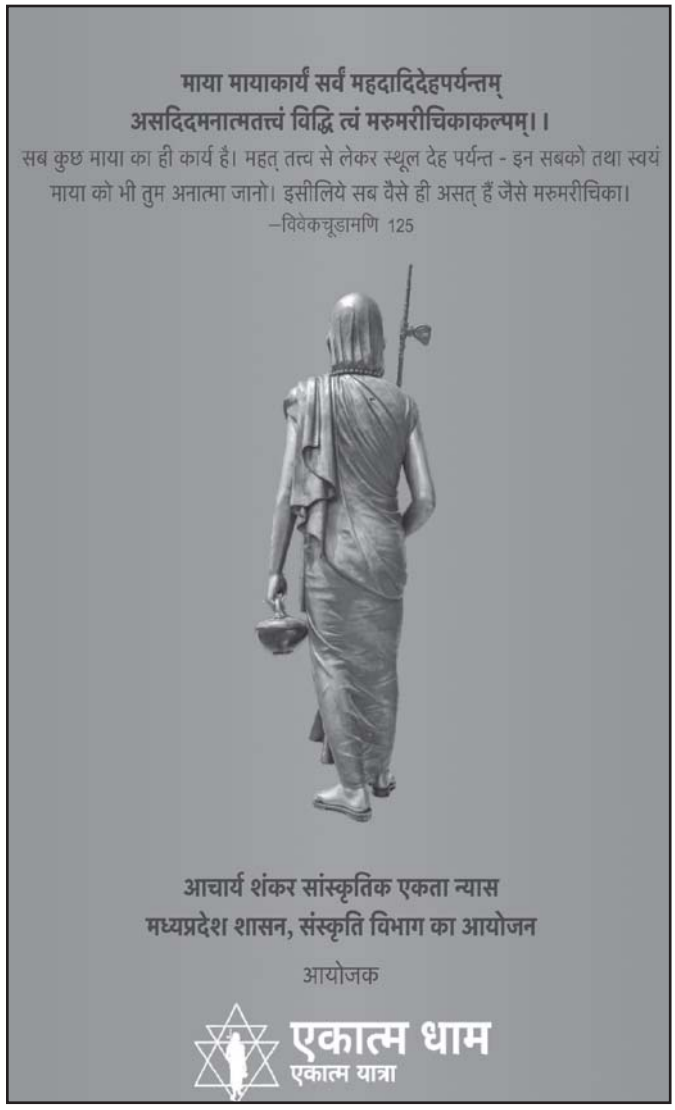

आलेख

लोक में वेदांत

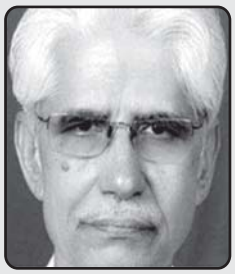

प्रभुदयाल मिश्र

वेद को ब्रह्म का निश्वास कहा गया है। इसका अर्थ यही है कि वेद ब्रह्म की ही भांति अनादि हैं। जिस प्रकार एक शिशु तथा प्राणीमात्र ही अपनी श्वास के साथ ही अस्तित्व में आता है, ठीक वैसे ही ब्रह्म की प्रथम अभिव्यक्ति/प्रकटीकरण वेद ही हैं। वे इस तरह ब्रह्म से अविभाज्य तो हैं ही, ब्रह्म के वाच्य और ब्रह्म की सत्ता के भी परिचायक हैं। यही कारण: है कि भारत की षड् दर्शन परंपरा में आस्तिकता की परिभाषा वेद में विश्वास रखना ही है। यहाँ तक कि सांख्य, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन धाराएँ यद्यपि ब्रह्म सत्तात्मक नहीं हैं, किन्तु वेद में उनकी सम्पूर्ण आस्था है इसीलिए वे जैन, बौद्ध और चार्वाक दर्शन की भांति नास्तिक न होकर आस्तिक कही जाती हैं।

श्रीमद् भागवत के व्याख्याकार इसके प्रथम श्लोक के द्वितीय पाद के अनुसार–

'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये'

अर्थात् सृष्टि के आरंभ में परम ब्रह्म ने अपने हृदयस्थ (आदिकवि) ब्रह्मा को स्वयं सृष्टि के उद्भव, विकास और लय का (वेद) ज्ञान प्रदान किया।

वेद के इस सनातन ज्ञान की मूल्यवत्ता इतनी अधिक है कि इसके लुप्त होने पर सृष्टि की सुरक्षा खतरे में आ जाती है। अत: भगवान के सभी 24 तथा मुख्य दश अवतार विशेष रूप से सृष्टि संरचना के आधार और पोषक इन वेदों की सुरक्षा के लिए ही होते हैं। वाल्मीकि जी राम चरित मानस में कहते हैं–

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी।

(अयोध्या कांड)

अत: प्रश्न उठ सकता है कि क्या वेद का कोई लोक–संस्करण भी है, हो सकता है ? और यदि ऐसा है, तो इसकी संरचना कब और कैसे हुई ? स्वयं तुलसीदास ही लोकमत को वेद मत के समतुल्य मानते हुये लिखते हैं –

'चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला।

बाल. 38/6

अर्थात् रामचरित मानस की राम का यशोगान करने वाली प्रवहमान सुंदर कविता–नदी सरयू के वेद और लोकमत रूपी दो किनारे हैं।

रामचरित मानस में चित्रकूट की विराट धर्म और राजनय की प्रधान सभा में अयोध्या राज्य प्रभार के निर्णय के संबंध में त्रिकालज्ञ गुरु वशिष्ठ कहते हैं–

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।

अयोध्या 258

वेद के तीन प्रभाग हैं – उपासना, कर्म और ज्ञान। इसे वेदत्रयी अर्थात् क्रमश: ऋक्, यजु और सामवेद को कहा जाता है। इससे यह भी समझ लेना है कि वेद का अधिकतम लगभग 80 प्रतिशत भाग उपासना, 15 प्रतिशत कर्म और लगभग 5 प्रतिशत ज्ञान प्रधान है। इस तरह वेदान्त, जो अद्वैत दर्शन के रूप में अभिज्ञात है, इस ज्ञानाश्रयी धारा का महाप्रस्थान है। उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता इसकी प्रस्थानत्रयी है। भारतीय षड् दर्शन– न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और पूर्वमीमांसा के बाद उत्तरमीमांसा ही वेदान्त अर्थात् वैदिक मनीषा का शीर्ष भाग है। जहां इसमें योग का पर्यवसान होता है वहीं पूर्वमीमांसा वैष्णवी पुष्टि धारा में इसका 'विशिष्ट' प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

किन्तु यह अपने आप में बड़ा आश्चर्य ही है कि इस विरल बुद्धि– बोध को भारत की लोकाश्रयी अनुभाव और व्यवहार की परिपूर्ण सत्ता प्राप्त है। जब भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को एक बुद्धिमान की परिभाषा समझाते हैं तब वे उसे इसी उत्कृष्ट धार्मिकता की पहचान करा रहे होते हैं–

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मण गवि हस्तिनि
शुनिचैव श्वपाके च पंडिता: संदर्शिन:।

गीता 5/18

अर्थात् एक विद्यावान विनीत व्यक्ति ब्राह्मण, गाय, हथिनी, कुतिया और चांडाल में सदा समान दृष्टि रखता है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छांदोज्ञ उपनिषद 3/14/2) के इसी आलोक में स्वयं भगवान शिव ने उस समय काशी के दशाश्वमेध घाट पर आदि शंकर के ज्ञान की परीक्षा ली थी जब वे एक चांडाल के वेश में आदिशंकर के गंगा प्रवेश के मार्ग को अवरुद्ध कर खड़े हो गए थे।

'अपसर' (दूर हटो) शंकर ने कहा।

'आप किसे हटने के लिए कह रहे है, महोदय ? यदि आपका संबोध्य मेरा शरीर है तो वह तो मिथ्या है (जगन्मिथ्या!) और यदि आप मेरी जीवात्मा को हटने के लिय कह रहे हैं तो वह स्वत: परब्रह्म स्वरूप होने से सर्व व्यापी है! उसके तो कहीं हटने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता!'

इसके बाद का क्षण तो आदिशंकर का साष्टांग प्रणिपात का ही हो सकता था !

भारतीय ज्ञान परंपरा के स्तम्भ वेद, वेदान्त, इतिहास, पुराण आदि सभी शिला-पट्टों में अमिट रह सनातन भारतीय संस्कृति का यही जीवन व्यवहार बनता है। इस लोक विश्रुत आदर्श को अपने रामचरित मानस में जीवन का आधार दर्शन बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने इसी लिए कहा-

सीय राम मय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोर जुग पानी।

(बालकांड 7/1)

भारतीय ज्ञान की आगम परंपरा तो तत्वबोध की इस सीढी को शैवागमों के माध्यम से जन सामान्य को सहज सुलभ बनाने के लिए ही आगे आती है। महामहेश्वर के आराधकों के लिए संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन अभीष्ट नहीं रह जाता क्योंकि प्रकाश और विमर्श रूप विराट सत्ता विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण दोनों ही है। एक दृष्टि से यह बोध श्रीकृष्ण द्वारा गीता में कहे इस विरोधाभासी कथन- 'मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्वस्थिता' (मुझमें सभी भूत अवस्थित हैं किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ गीता 9/4) का समाधान ही है क्योंकि परंब्रह्म निश्चित ही एकसाथ विश्वमय और विष्वोत्तीर्ण हो सकता है। तभी भगवान भोलेनाथ मंत्र, विधि और निषेध आदि की सीमा से परे चले जाते हैं। भगवान शिव के इसी शाबर-मंत्र जाल की महिमा का बखान गोस्वामी तुलसीदास ने करते हुए कहा है-

'कलि बिलोकि जग हितहर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाव महेस प्रतापू।

बाल. 15/3

अर्थात् शिव-शक्ति ने कलियुग को देखते हुए संसार के हित में शाबर मंत्र समूह रचा। इसके शब्द, अर्थ और जप प्रक्रिया में स्वयं का ही विधान काम करता है और यह शिव के प्रसाद से त्वरित फलदायी भी है।

सर्प, बिच्छू के दंश, प्रेत बाधा के निवारण तथा सम्मोहन, उच्चाटन आदि अनुष्ठान के मंत्र और उनके प्रभाव सदा से विज्ञात और प्रचलन में चले या रहे हैं। अथर्ववेद में तो ऐसे प्रयोग हैं ही, ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग में निषत और उपनिषत, लाक्षा, मेधा, श्री आदि सूक्तों में इनका मूल देखा जा सकता है। आदिशंकर अपने प्रसिद्ध स्तोत्र ग्रंथ 'सौन्दर्यलहरी' में श्रीविद्या को सकल सिद्धि का आधार देने का महत्संकल्प शिव का ही प्रतिपादित करते हैं जिसे शक्ति के आग्रह पर उन्होंने परिपूर्ण किया-

चतु:षष्ट्या तंत्रै: सकलमतिसंधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतंत्रै: पशुपति:
पुनत्वन्निर्बन्द्धादाखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतंत्रं ते तंत्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्। 31

हमारे हिन्दी काव्यानुवाद के अनुसार इसका भाव इस प्रकार है-

चौंसठ तंत्र सिद्धियों के परतंत्र बनाकर
पशुपति ने जगती को जैसे ठग डाला था।
हठ तेरे तब एक सकल पुरुषार्थ योजना
तंत्र स्वतंत्र तुम्हारा इस धरती पर लाया।

जिस प्रकार किसी देहधारी के संबंध में यह पूछा जाए कि उसके शरीर और श्वास में पहले कौन जन्मा ठीक वैसे ही यह प्रश्न भी बेमानी ही है कि लोक और वेद में अधिक पुराना कौन है ? मानवीय अस्तित्व की इयत्ता उसके अस्तित्व-बोध के समानांतर ही समझी जा सकती है। जिस प्रकार कला, साहित्य, सुंदरता, संगीत, नृत्य आदि का रसास्वादन कलाकारों का स्वांत: सुख है तो कला के पारखियों के लिए वह भूषण और शृंगार है। उसी प्रकार वेद- विज्ञान लोक- जीवन का विकास है तो लोक-जीवन वेदज्ञ का रस-परिपाक है।

यहाँ पर कला-समय के इस अंक विशेष के संपादक आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल की पुस्तक 'बुन्देली शब्दों का व्युत्पत्ति कोश' में मुझे अपनी निम्न प्रकाशकीय टिप्पणी का स्मरण हो आता है -

'भाषाशास्त्रीय अध्ययन परंपरा का भी एक नया आयाम विभिन्न बोलियों के विकास संदर्भ में निम्न सूत्रों में परिलक्षणीय हैं-

1. हमारी लोकभाषाएं संस्कृत से नहीं निकली हैं। वे तो वैदिक भाषा से भी पुरानी हैं।

2. वे संस्कृत से अधिक समृद्ध्य हैं।
3. सभी बोलियाँ अनगिनत बोलियों के बिपाक से बनी हैं।

भाषाविद् श्री भगवानसिंहजी की स्थापना है कि वेदों के काल मे पहुँचने के लिए वेदों की भाषा को उसके मूल में पहचानना आवश्यक है। इसके लिए एक तो संस्कृत भाषा का मार्ग है और एक मार्ग है जन भाषा का। विद्वान् विचारक के मत में जन भाषा के अध्ययन द्वारा हम वेद की भाषा ही नहीं, वेद के मूल तक भी पहुँच सकते हैं। तब क्या जनभाषा, बोलियाँ एक व्याकरण सम्मत विशालकाय साहित्य संरचना के सागर को प्रभावित कर सकती हैं? क्या बोलचाल और साहित्य की भाषाओं के भेद को लेकर चलना साहित्य, भाषाशास्त्र और सांस्कृतिक आरोह के सिद्धान्त के अनुरूप है? आखिर भाषा का धातु रूप बोलियों पर आश्रित है अथवा बोलियाँ कालांतर में भाषा के समानान्तर ही इसका संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि के रूप में विस्तार करने में स्वत: समर्थ हो जाती हैं?

प्राचीन साहित्य मे इस प्रकार की दो प्रकार की भाषा प्रयोग के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। वाल्मीकि रामायण में ही हनुमान अपना संवाद जिस भाषा में राम से पहली वार करते हैं उस पर राम उन्हें संस्कृतनिष्ठ होने का प्रमाण पत्र देते हैं। मध्य युग की रचनाओं, विशेषकर कालिदास, भवभूति आदि के नाटकों में सुशिक्षित और कम शिक्षित पात्र क्रमश: संस्कृत और प्राकृत का प्रयोग करते हैं। यदि यह भी स्वीकार कर लिया जाए कि लोकभाषा संस्कारित भाषा को प्रभावित करती है तो साहित्य की भाषा की उस पर ऐसी निर्भरता और उसके उत्स कि कुंजी या माध्यम मान लेना सामान्यत: कठिन प्रतीत होता है। विशेषकर संस्कृत की अपनी प्रकट समृद्धि, संभावना और व्याकरण की अनुशासनबद्धता ही इसे इतने अपार साहित्य सृजन की क्षमता प्रदान करती प्रतीत होती है।

अत: यह स्वभाविक ही है कि आचार्य शुक्ल ने बुन्देली भाषा का मूल संस्कृत धातुओं, ध्वनि परिवर्तन, निर्वचन,सन्धि ऊष्मीकरण, अनुनासिकीकरण, घोषी-अघोषीकरण, अल्प-महाप्राणीकरण, अभिस्वीकृति और अपस्वीकृति आदि पर आधारित किया है'

लोक और वेद के एक अद्भूद समाहार का दृश्य रामचारित मानस के आयोध्याकाण्ड में मिलता है। जब श्री राम अपने वनवास काल में चित्रकूट पहुंचते हैं तो वहाँ के मूल निवासी 'कोल, किरात' को जब यह सूचना मिलती है तो वे 'कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना' और कहते हैं-

'हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भर नयन तुम्हारा
कीन्ह बासु भल ठाँव बिचारी। इहाँ सकल ऋतु रहब सुखारी।'

इस पर श्री राम की प्रतिक्रिया और गोस्वामी तुलसीदास की टिप्पणी भी उतनी ही अनूठी है-

'बेद बचन मुनि मन आगम ते प्रभु करुणा ऐन
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक् बैन।'

अयोध्याकांड 136

एक सारयुक्त विषय और संदर्भ का इस सुखद प्रसंग से समापन करते हुए मुझे स्वयं बहुत प्रसन्नता है। अस्तु... इत्यलम् !

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार
एवं मानस भारती पत्रिका के
प्रधान सम्पादक हैं।
35 ईडन गार्डन,
चूनाभट्टी, कोलार रोड,
भोपाल 462016 (9425079072)

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आलेख

लोकमानस का देवभाव और अद्वैत

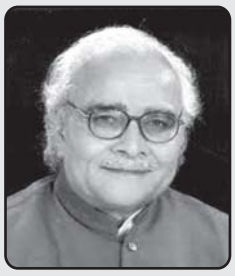

डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी

परिवेश की समस्याओं से घिरा हुआ मनुष्य जब तक आर्थिक-भौतिक-शारीरिक- शक्ति रहती है, अपना प्रयास करता रहता है किन्तु जब और जहाँ आर्थिक-भौतिक-शारीरिक-शक्ति चुक जाती है, भौतिक- बल से समाधान नहीं कर पाता ,वहाँ वह पराजय नहीं मान लेता उसकी मनोवैज्ञानिक- शक्ति काम करने लगती है! देवभाव मनुष्य की मनोवैज्ञानिक- शक्ति का ही एक रूप है, अपने ही मन की ऊर्जा: भाव और विश्वास! देवभाव, मानवमन और परिवेश के सूत्रों से बुनी हुई संश्लिष्ट -रचना है। देवभाव परिवेश की समस्याओं से मुकाबला करने के लिये भौतिक-रूप से निर्बल मनुष्य का मनोवैज्ञानिक अस्त्र और आधार है। अनन्त ब्रह्मांड से, ब्रह्मांड की शक्तियों से सापेक्ष-संबंध की एक मनोवैज्ञानिक प्रणाली का नाम देवभाव है !देवभाव कहीं बाहर से नहीं आया, यह स्वयं मनुष्य की ही मानसी- सृष्टि है।

जिस परिवेश में मनुष्य का जन्म होता है और जिस परिवेश में उसका जीवन व्यतीत होता है, उस परिवेश की देव परम्परा उसके मन में प्रतिष्ठित हो जाती है., उसके पूर्वज उस देवपरम्परा के अनिवार्य अंग बन जाते हैं। देवभाव में मनुष्य का परिवेश-तत्त्व तो व्याप्त है ही, मूल-प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान हैं, जो कामना के रूप में मौजूद रहती हैं! भूख है, भोजन मिले, दूध मिले, फल मिले, अनाज मिले, यह बुनियादी कामना है! कामना देव-भाव के रूप में व्यक्त होती है, अन्नपूर्णा, शाकंभरी, गो [गाय] भू देवी, मेघ, हल, तथा अलग-अलग जनपदों में उसके अलग-अलग रूप हैं! भूखेन कों अन्न देत! किसान के जीवन में अन्न की उपासना के बहुत से अनुष्ठान हैं! अन्न देवता आप मुरारी! नट बीमारी में बाँस की और ढोल की पूजा करते हैं। गाडिया लुहार कहते हैं कि हमारे देवता तो लोहासुर हैं, धधकती भट्टियों में निवास करते हैं, काम प्रारंभ करने से पहले उनका स्मरण कर लेते हैं!

रति मूलप्रवृत्ति के लिए पति की कामना ,पत्नी की कामना ! कामना का ही देवरूप कामदेव है ।कामदेव और रति की पूजा है! सौभाग्य की देवी गौरा हैं, जूरी देवी है! अशोक की पूजा है! सिसृक्षा या पुत्रैषणा के लिए गंगा मैया हैं! दूध-पूत! छटमैया, बाँझन को पूत देत निरधन को माया! देवी के गीतों में संतान-कामना के अनेक रूप हैं! संतान-कामना से अपने ही पितृश्वर की पूजा की जाती है! वित्तैषणा, तृष्णा या अर्थलाभ कुबेर और लक्ष्मी, दीपावली का समस्त अनुष्ठान धन की कामना से है! सुख-संपति घर आबै! देवता से धन माँगता है! जमीन की पूजा करता है! नयी कार खरीदता है, पूजा के लिए मन्दिर जाता है! फ़िल्म का मुहूर्त करता है! धन की कामना से अनेक टोटके करता है ! साँईं की पूजा तो नया रूप है! शनिपूजा! ग्रह-देवताओं को मनाते हैं! रक्षा और भय के लिए हनुमान हैं - भूत पिशाच निकट नहिं आबै! भूत क्या है ? भय! प्रत्येक देव के पास कुछ आयुध हैं! किसी के पास चक्र है तो किसी के पास धनुष-बाण! ये रक्षा की मूल-प्रवृत्ति के ही रूप हैं ! शत्रु पर विजय ! रोग-मातृकाओं का बहुत विस्तार है, शीतला माता ! भागवत के द्वितीय स्कंध में भिन्न -भिन्न मनोकामनाओं के लिए विभिन्न देवी -देवताओं की पूजा उपासनाओं का वर्णन है। एक बात बहुत स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन में उपस्थित अभाव, भय, दुख और चिंताएँ देवभाव की उद्भवभूमि हैं। मनुष्य की इच्छा, मनोकामना अभिलाषा आदि देवभाव में समाविष्ट हैं. जितनी मनोकामनाएं मनुष्य की हैं, उतने ही देवता हैं, जितनी मनुष्य की आवश्यकताएं हैं, उतने ही देवता हैं । शुभ -लाभ, मंगल और अभय के विश्वास का ही दूसरा नाम देवता है। भय, चिन्ता, भूख, अभाव, रोग, शोक, महामारी आदि जितने प्रकार के दुख हैं,दु:ख निवारण के लिए उतने ही प्रकार के देवता हैं। अकाल पड़ गया , वर्षा नहीं हुई तो मेघासिन देवी है! शाकंभरी देवी, अन्नपूर्णा है। मृत्यु के प्रति मनुष्य का रहस्य-भाव है। देव भावना जिजीविषा का ही रूप है, अदम्य जिजीविषा!

लोकमानस जड़ और चेतन सभी में अपनी अनुभूति का आरोपण करता है, इसे सर्वसजीवत्ववाद कह सकते हैं। जैसे मैं सोच रहा हूँ, वैसे ही हवा भी सोच रही होगी, वैसे ही पत्थर भी सोच रहा होगा । लोकमानस अनुभव करता है कि वे सब मेरी जैसी ही प्राणशक्ति से संचालित-परिचालित हैं। आदिम मानस ने पशु, पक्षी और अन्य प्राणियों के साथ सूर्य चंद्र विद्युत मेघ आदि में परा

प्राकृतिक –तत्व अतिमानवीय शक्तियों का आरोपण किया, उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा की और अपनी रक्षा की कामना से उनकी पूजा करने लगा। बिजली केगिरने का भय हुआ तो उसने गाज परमेसुरी को मनाया।

लोक मानस की गति लोक से अलौकिक की ओर होती है। अलौकिक–तत्त्व या चमत्कार देवभाव का अनिवार्य लक्षण है। प्रत्येक देवी–देवता के साथ कोई न कोई चमत्कार संबंधी किंवदन्ती या कहानी जुड़ी हुई है।

संस्कृत में कहावत है –उपास्य–उपासकयोरभेद अर्थात्? उपास्य और उपासक में अभेद–संबंध है, अभिन्नता है।

किसी भी देवता को हम उसके उपासक के आधार पर समझ सकते हैं और किसी भी उपासक या उपासक–समुदाय को उसके देवता के रूप के आधार पर समझ सकते हैं। जो जाति या समुदाय किसी देवता से जुड़ा हुआ है , उसकी प्रकृति उस देवता में समाहित है, वैसा ही आहार–व्यवहार उस देवता का भी है, उपासक–समूह यदि शाकाहारी है तो उसका देवता भी शाकाहारी है।

जो दुर्बलता उपासक में हैं, वे दुर्बलता उसके देवता में भी होंगी। केरल के देवता–संबंधी दन्तकथाओं में मानवीय–दुर्बलताओं का चित्रण किया गया है, जैसे गणेश पेटू माने जाते हैं , रसोई की ओर मुख करके विराजमान हैं और अप्पम [मोदक] को बनते हुए देखते रहते हैं, उच्छिष्ट गणपति का पूजा–विधान भी ऐसा है कि साधक जप करते हुए लड्डू का भोग लगाता रहता है। सुब्रह्मण्यम कुमारामल्लूर की देवी की सुन्दरता पर इतने मुग्ध हैं कि उनकी झलक पाने के लिए दीवाल पर चढ जाते हैं। मालाबार के भगवान कृष्ण चेरुकुन्नू की अन्नपूर्णेश्वरी की सुन्दरता पर ऐसे मुग्ध हुए कि अपनी संपत्ति ही ठगा बैठे ।मारवाड़ में इलोजी छेडछाड के लोकदेवता हैं । सूर्यदेवता की कहानी में रानकदे अथवा कुन्ती के प्रसंग में हम सहज मानव और मानवीय–दुर्बलता देख सकते हैं। लोकमानस को परिवार वाला देवता चाहिये । लोककहानियों में शिव–पार्वती की समस्या परिवार की वैसी ही समस्या है, पैसे की कमी है, शिवजी के पास बीड़ी पीने के लिए पैसा नहीं है। लोकदेवता सामान्य मनुष्य के ही प्रतिरूप होते हैं। लोकमानस में एक ओर अलौकिक या दैवी–शक्तियों के सामान्यीकरण की प्रवृत्ति है तो दूसरी ओर लौकिक–व्यक्तियों के दिव्यीकरण की। देवताओं की मान्यता के साथ वह अपने समुदाय के महापुरुषों संतों और वीरों को भी अलौकिक–गुणों से मंडित करके उनको दिव्य आसन पर प्रतिष्ठित करता है। साईं बाबा इसका एक उदाहरण है। अपने समुदाय में भी विशेष गुण शक्ति संपन्न व्यक्ति की पूजा की जाती है। उसमें अलौकिक शक्ति का विश्वास किया जाता है। अपने समाज के प्राचीन व ऐतिहासिक पुरुषों को देवताओं की कोटि में माना जाता है–पुरखा पनमेसुरे।

देवभाव में परिवेश–तत्त्व व्याप्त है । ईश्वर की अवधारणा की संरचना और विकास में परिवेश अथवा देशकाल का महत्त्व ध्यान देने योग्य है! विष्णु की रूप–परिकल्पना में समुद्र [क्षीरसागर] है ! लक्ष्मी सागर की पुत्री है! शिव की रूप–परिकल्पना में कैलास–पर्वत के साथ पार्वती भी है, पर्वत–राज की पुत्री ! कृष्ण की रूप–परिकल्पना के में यमुना है , गोवर्धन है , वन हैं, गोष्ठ है, माखन है, दूध है और गाय हैं!

देवता संस्कृति के साथ चलते हैं, वे संस्कृति की उपज है। आखेटक संस्कृति के देव प्राकृतिक और भयानक होते हैं। रौद्र रूप में (रुद्र) उनकी कल्पना सहज थी। इसके पश्चात् जब खेती–पशु–पालन' का स्थिर ग्राम–जीवन प्रारम्भ हुआ तो उसके देवता भी बदल गये। सूर्य आकाश–विद्युत–जल–नदी–पृथ्वी आदि देवों का सीधा सम्बन्ध कृषि से है। किसानों के देवताओं से भिन्न देवता योद्धाओं के हैं, जो बल–बुद्धि, वैभव–विजय देते हैं।

यह ध्यान रखने वाली बात है कि ये देवता किसी किताब में से नहीं आये, लोकजीवन से आये हैं ! भारत के लोकजीवन में इनकी मान्यता बहुत गहराई में व्याप्त है। ऐसा कोई प्रदेश नहीं, जहाँ के लोकजीवन में, लोकगीतों और गाथाओं में लोकदेवता का अहर्निश गान न होता है!

लोकदेवता की मान्यता के चार स्तर माने जा सकते हैं । पहले स्तर पर वह परिवार या कुल का देवता है और गोत्र और परिवार तक ही सीमित है , दूसरे स्तर पर वह कबीले का देवता है, एक जाति–विशेष तक सीमित है! दूसरी स्थिति में वह अन्य कबीले ,दूसरी जाति में भी मान्य हो जाता है, ग्राम स्तर पर जनपद स्तर पर मान्य हो जाता है! तीसरी स्थिति में वह अन्तर्जनपदीय और अन्तर–प्रदेशीय स्तर पर पँहुच जाता है! उसके बाद चौथे स्तर पर वह देवता पूरे राष्ट्र में मान्य हो जाता है! विष्णु राम , कृष्ण, शिव शक्ति, गणेश, हनुमान क्रमविकास के इसी स्तर पर हैं, इस स्तर पर आकर शास्त्र की व्याख्या होने लगती है!

विभिन्न लोकवार्ता–शास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने संसार के असंख्य सांस्कृतिक–समूहों के असंख्य देवमंडल का अध्ययन किया है! उन्होंने यह भी देखा है कि विभिन्न सांस्कृतिक–समूह जब निकट आते हैं तो उनके देवमंडल भी निकट आते हैं और धीरे–धीरे उनकी अन्तर्भुक्ति हो जाती है ! कबीले के युग से चल कर आज विश्वसमाज का विकास हुआ और देवमंडल का भी विकास हुआ है! जैसे–जैसे हम वृहत्तरसमाज की ओर बढ़ते हैं , वैसे–वैसे सीमाएं टूटती चली जाती हैं और हम एक व्यापक ईश्वरभाव की ओर बढते चले जाते हैं ! द्वैत से अद्वैत की ओर! सर्वं खल्विदं ब्रह्म! जो सब में व्याप्त है और जिसमें सब व्याप्त हैं ! वह जमाना था , जब प्रत्येक कबीले का एक अलग देवमंडल था !

उत्तरपूर्व के आदिवासियों के विभिन्न समूहों के देवमंडल आज भी भिन्न –भिन्न हैं। मनुष्य जीवन की इस युगयात्रा की दिशा बहुदेववाद से एकेश्वरवाद की ओर अग्रसर होती रही है! विभिन्न देशों में, विभिन्न युगों में, विभिन्न सन्तों और पैगंबरों ने विभिन्न विधियों से एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है!

अद्वैतवाद अर्थात्? विश्व में एक ही तत्त्व की सत्ता है भले ही वह नाना रूपों में प्रतिभासित होता है! इस प्रकार अद्वैतवाद मानवीय एकता का आधारभूत दर्शन है। हालाँकि जहाँ आत्मा और परमात्मा अथवा जीव और ब्रह्म की एकता के सिद्धांत की प्रतिष्ठा है, वहाँ मानवीय –एकता की बात बहुत सामान्य बात है। वहाँ तो ईशावास्यमिदम् सर्वं है। एक तत्त्व की ही सत्ता है, दूसरे किसी तत्त्व का अस्तित्त्व ही नहीं।

भारत में आदि शंकराचार्य से पहले भी विविधता में एकता का प्रबल स्वर सुनाई देता है– **इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।** जिसे लोग इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि कहते हैं, वह सत्ता केवल एक ही है। विप्र (वेदज्ञ) ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) लोग उसे भिन्न–भिन्न नामों से पुकारते हैं। मूल में जो एक और नित्य (सत्) है, उसी को विप्र (वेदज्ञ) भिन्न–भिन्न नाम देते हैं। अर्थात् एक ही सत्य वस्तु नाम–रूप से भिन्न–भिन्न देख पड़ती है। [ऋग्वेद.1.164.46]– श्रीमद्भागवत का वाक्य है–**नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे** नाम–रूप विभेदेन जगति क्रीडति यो यतः! अथवा गजेन्द्रमोक्ष का वाक्य है >> **नामरूप विभेदेन फ़ल्व्या च कलया कृताः** 77 22 ! आदित्यहृदयस्तोत्र में कहा गया है – **''सर्वदेवात्मको ह्येष''**। संत **कबीर की वाणी है – कबिरा कुआँ एक है, पानी भरैं अनेक। बर्तन में ही भेद है, पानी सबमें एक।**

– लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क– 1828 हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेक्टर– 13–12
पानीपत– 132203(हरियाणा), मो.– 9996007186

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें– ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम– ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें– जे–191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई–6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल– 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755–2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई–मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 120/– का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

–संपादक

आलेख

लोक की अद्वैत-चेतना

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

लोक विराट और कालातिक्रांत है- वह सृष्टि संभूत प्रत्यय है- एक तरह से सृष्टि-विकास के क्रम में उसका सहगामी है। जैसे वैसे ही लोक आकल्पित होने लगा, 'लोकान अकल्पयन्' के अनुरूप! यह लोक जड़-चेतन के समायोजन से विकसित हुआ। एक भाव-सूत्र में आबद्ध होकर यह पंचभूत, लीलामय हुआ। मनुष्य इसका केन्द्रक बना किन्तु यह केन्द्र स्वनिष्ठ बिन्दु नहीं था- यह परिधि विस्तारी सत्ता में समाहित था। उसके लिए सब नहीं- वह सबके लिए। यही सत्य वह अद्वैत है, जो मनुष्य की संवेदना का विस्तृत आयाम है। लोक में पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी-निर्झर, जंगल-पहाड़ जो भी है- सबमें मानुष भाव को दखने वाला केवल मनुष्य है। यह मनुष्य का भाव-वितान है जो लोक के रूप में जाना जाता है। मनुष्य जिस प्रकृति की गोद में पला-बढ़ा उस प्रकृति ने ही उसे मानवीय बनाया। प्रकृति की बदलती ऋतु-छवियों ने न केवल आकर्षित किया बल्कि उसके अनुभवों को विस्तारित भी किया। वह अपने आसपास के प्रति संवेदनशील हुआ। संवेदना लोक का प्रमुख और महत्वपूर्ण गुण है। यदि आकाश से तारा टूटता है तो लोक जन को दर्द होता है। मैंने अक्सर देखा है- बुजुर्ग लोग तारा टूटने पर 'राम-राम' कह उठते थे। पृथ्वी का व्यक्ति आकाश से पतित तारा को देखकर द्रवित हो उठता है। आकाश के ग्रह-नक्षत्र उसके पड़ौसी हैं। वह अपने समय का मापन इनकी गतियों-स्थितियों से करता है। लोक में हिरणी ऊँगने, पौ फटने आदि से अपने समय का निर्धारण होता है। वह समय की लघुत्तम इकाईयों से अनभिज्ञ हो, किन्तु आकाश के चाँद-सूरज में वह अपने होने की तलाश करता है। चाँद-सूरज उसके भाई-बहिन है- वह कहता है- ''चंदा-सूरज दोऊ ऊँगियो हमारे अँगना।'' आकाश को उसने घर का आँगन बना लिया। वह विराट और व्यक्ति का अद्वैत भाव है।

लोक की संबंध धारणाओं में केवल मनुष्य ही नहीं है- मनुष्य के मनुष्य से बढ़कर उसके संबंध अपने आसपास की प्रकृति से है। नदियाँ उसे मातृस्वरुपा हैं- गंगा मैया, नर्मदा मैया की संबंध धारण मात्र कल्पना आधारित नहीं है। लोक जानता है कि नदी-पय का पान करके वह मनुष्य की कर्म-चेतना का विकास कर पाया है। भले ही नदी उससे कोसों दूर हो, किन्तु वह नदी के जल का ही आचमन कर रहा है। गाँव में कुआ खोदा जा रहा है- पानी की झिर अभी नहीं निकली है, और खोदो एक कुदाली पड़ती है, और हुल्ल से पानी की झिर फूट पड़ती है- गाँव भर नाचने लगता है- उसके गाँव में गंगा मैया आ गयीं। गांव कुऐ का पानी नहीं पीता, वह रोज गंगाजल ही पीता है- वह गाता है- ''गंगा मैया आईं पाहुनी निहुर के पैयाँ लागूँ।'' नदी, जगत्तारिणी बन गई। नदी का माँ हो जाना केवल संबंधों का सेतु बनाना नहीं है- यह मनुष्य का नदी हो जाना है। नदी को इतना बड़ा बनाना कि उसके साथ मनुष्य भी बड़ा बनता जाये। मैं अक्सर अपने पिता के साथ गाँव से पास के कस्बे में हाट-बाजार करने आता था। सुनार नदी पार करना पड़ती थी। एक घाट ऐसा था जिसमें पैदल, पैदल ही चलकर ही नदी-संतरण कर लिया जाता था। पिता नदी में पाँव रखने के पूर्व ही नदी के जल को छूकर प्रणाम करते और कहते माँ मुझे क्षमा कर देना मैं तुम्हारे भीतर पाँव रख रहा हूँ- ''यह वह निर्मल मन था, उसे नदी के जल में अपना वह आत्म-बिम्ब देखता था, जो ईश्वर का ही एक अंश है और नदी देव स्वरूपा हो जाती थी। मेरा लोक जब बमभुलिया गाता है, तब वह जिन शब्दों को स्वर देता है, वे शब्द हैं- ''नरबदा मैया मोय ऐसे तो मिलीं जैसे मिल गये मताई और बाप।'' ये शब्द सुनकर मैं चकित हो उठता हूँ कि नदी माँ तो है, किन्तु वह बाप कैसे बन गयी ? नर्मदा क्वाँरी नदी है- बड़ी बहिन भी है और बड़ी बहिन छोटे भाई-बहिनों की केवल बहिन नहीं होती, वह पिता स्थानीय भी होती है। जाने कितने संबंध लोक ने नदियों से बनाये हैं- वे सखी हैं, वे प्रिया हैं, वे स्वर्ण की नसैनी हैं, वे कर्मनासा हैं, वे वैतरणी हैं। यह पार्थिव सत्ताओं में जीवंतता का जो भाव आया है, यह लोक की उस संवेदनशीलता का

परिणाम है जिसमें संपूर्ण सृष्टि विराट के संवेदन तंत्र का ही एक हिस्सा है। लोक ने इस संवेदन-तंत्र में अपनी हृदय-तंत्री का निनाद भी शामिल कर लिया।

पेड़-पौधे, वन-जंगल सभी के ज़र्रे-ज़र्रे में उस परा चेतना की हलचल समायी हुई है। लोक ने अपने होने में इनकी भागीदारी को अनुभव किया है। वृक्ष, लोक में पूजनीय हैं, उसके सगे भी हैं। ''वट तो अपना परदादा है, इमली लगे भौजाई।'' यह एक सामान्य कथन भर नहीं है- इसमें वृक्ष की आत्मीयता, वृक्ष की सदाश्यता और वृक्ष की मानवीय वृत्तियों का भी प्रत्यक्षीकरण है। तीज-त्यौहार, उत्सव-समारोहों, व्रत-उपवासों में वृक्ष के किसी न किसी भाग की साझेदारी अनिवार्य है। वृक्ष में देवता निवास करते हैं, तो उसकी डालों से भूत प्रेत भी लटकते हैं। एक देवर अपनी भौजाई को उस कुऐ से पानी भरने के लिए रोकता है, जिसके किनारे पर पीपल का वृक्ष है, वह कहता है- ''भौजी पनियाँ नें जाव-पीपर के पत्ता में देवता।'' वृक्ष एक जीवित सत्ता है। वह देव स्वरूप है। उसके नीचे दीपक जलाया जाता है। उसका पूजन किया जाता है- 'वट सावित्री' पर वट वृक्ष की परिक्रमा की जाती है। उस पर कलावा लपेटा जाता है। तुलसी का विवाह होता है। कुश से तर्पण किया जाता है। आम्रपत्तों का वंदनवार बाँधा जाता है। तरु-वीरुधि का यह संसार व्यक्ति का अपना संसार है। आदिम लोक में तो मृत्यु के बाद आत्मा का निवास कोई वृक्ष ही बनता था। यह लोक विज्ञान नहीं, यह लोक का वह भावना-विस्तार है जिसमें वह परमसत्ता के दर्शन इस स्थावर जगत में करता है।

पक्षियों की चहचहाहट में मनुष्य ने परा नाद का अनुश्रवण किया। चिड़िया का बोलना उसे परा-स्पंदनों की अनुभूति देता है- ''चौखट पर चिरैया काय बोली- कैसे बोली।'' घर की देहरी पर चिड़िया का बोलना न जाने कितने विस्मय पैदा करता है। चिड़िया तो घर की बिटिया है- वह फुदकती है, तो बेटी चहकती है, ''हम तो बाबुल तोरे आँगन की चिरैया।'' यह एक संबंध धारणा भर नहीं है, यह स्त्री जीवन का मर्म भी है। आँगन की चिड़िया पता नहीं कब दूसरे आँगन के लिए उड़ जायेगी। ममता के एक घेरे से कब छूटकर वह दायित्व के दूसरे घेरे में दाखिल हो जायेगी। नारी जीवन की छटपटाहट को उसके बंधनों की कसमसाहट को चिड़िया को रूपक तोड़ता भी है, ''उड़ आवती चारऊ छोर चिरैया हो जाती राजा।'' स्त्री जीवन की स्वतंत्र कामना में रूपवान होती चिड़िया क्या कोई पक्षी है, नहीं? वह मनुष्य की इयत्ता का ही विस्तार है, उस इयत्ता का जिसमें चिड़िया और मनुष्य की अन्यता नहीं है। है तो केवल एक भाव जिसमें राम का ही खेत है और राम की चिरैया है। ''राम की चिरैया और राम का ही खेत। खाओ री! चिरैया भर-भर पेट।'' इस एकात्म को लोक ने जान लिया था, इसलिए उसकी लोक-कथाओं में चिड़िया बहु बनकर रात भर में अपने पंखों से घर की दीवारों को लीप-पोत देती है, अनाज से कंकड़ बीन देती है। कौवा जैसा पक्षी- मुड़ेर पर बैठकर काँव-काँव करता है, तो परदेश गये पति की पत्नी उससे कहती है कि मेरा संदेशा यदि तूँ मेरे प्रिय तक भेज देगा तो मैं तेरी चौंच सोने से मढ़ा दूँगी और तुझे दूध-भात खिलाऊँगी- कौवा को पितृपक्ष में कागौरी खाने को आमंत्रित किया जाता है। यह केवल कविता या रिचुअल मात्र नहीं है- यह मनुष्य का संप्रसारण है। लोकचित्त की द्रवणशीलता ही उसे 'मुझ में रहा न मुमझ' की स्थिति में ला देती है- ''मानुष देही को गरब न करियो, हो जैसे जर के छार।'' इस नाशवान देह में जो परमात्मा का अंश है, उसको पाकर ही जड़चेतन में व्याप्त उस अविनाशी तत्व का अनुभव किया जा सकता है, जिसमें लोक कहता है कि ''कीरी कुंगर सब में उसे पिछानो।'' सभी में वही चैतन्य प्रकाशित है।

लोक की संरचना में एक व्यापक हेलमेल है- यह पारस्परिकता केवल मनुष्य, मनुष्य के बीच नहीं है, बल्कि जो मनुष्य के आसपास है- उस सब में यह परस्पर विद्यमान है। जिन जीवन मूल्यों का अर्जन मनुष्य ने किया है, वे केवल मनुष्यकृत नहीं है, उनमें उसके आसपास के साथ की गई अंत:क्रियायें भी हैं। इनके साझा दर्शन से ही जीने की कला और जीवन-निर्धारक मूल्यों का सृजन-निर्धारण संभव हुआ है। दया, करुणा, परोपकार ये जो मूल्य हैं, इन मूल्यों का लक्ष्य मनुष्य के भीतर के देवांश को जगाना है। नदी के जल में, वृक्ष के फल में, गाय के दूध में वितरण की वे समस्त संभावनायें निहित हैं, जो उन्हें देव-प्रदत्त हैं। वे अपने लिए उतना जीते हैं, जितना उनके जीवन संधारण के लिए आवश्यक है अन्यथा उनका सबकुछ पशु-पक्षियों, कृमि-कीटों और मनुष्यों के लिए ही है- यह स्वयं को समर्पित करने की अहैतुकता मनुष्य ने प्रकृति से ही ली है। इस आधार पर मनुष्य ने भी लोक स्तर पर अपनी जिम्मेवारी का अनुभव किया। नदियों की रक्षा, वृक्षों की रक्षा और गाय जैसे पशुओं की रक्षा के लिए उसने अनेक आस्थामूलक उपक्रम किये, जिसे उसने देव आराधन माना! लोक में 'हर शंकरी' लगाकर जीवन

को सार्थक माना गया है- 'हर शंकरी' वट -पीपल और नीम के वृक्षों को एक साथ रोपित करने का उपक्रम है- ये वृक्ष हर गृहस्थ रोपित करता था। ये त्रिदेवों के प्रतीक थे, और मनुष्य अपनी अनिवार्य आवश्यकता के लिए जितने वृक्ष काटता था, उससे दुगने वृक्ष रोपित करता था। इन देव स्वरूप प्राकृतिक संसाधनों से वह अभिन्न नहीं था, यह वह लोक दृष्टि थी, जिसमें पहाड़ में भी ईश्वरत्व का अनुभव किया गया है, श्रीमद् भागवत भले ही पुराण है और संस्कृत में रचा गया है, किन्तु इस ग्रंथ में व्यास की लोक चेतना ही स्पंदित रही है। गोप-संस्कृति प्रधान लोक में अनेक वैदिक अभिप्राय निर्बल पड़ने लगते हैं, इन्द्र की जगह गोवर्धन पहाड़ की पूजा, यमुना जल में निर्वस्त्र नहाने का निषेध, गौचारण और आमीर गीतों को गाते गोप-गोपियाँ और इन सबमें ईश्वर की खोज करती ऋषि दृष्टि अद्वैत की धारणा को ही पुष्ट करती है, यह लोक भाव है, जहां पांडित्य, धराशायी हो जाता है। यह वह लोक है, जहां छछिया भर छाँछ पर गोपियाँ परब्रह्म को नाचने पर मजबूर कर देती हैं।

लोक, निभ्रांत और निर्भीक है, वह जानता है कि सर्वव्याप्त परमात्मा उसके भीतर और बाहर है। उसने परमात्मा की उपस्थिति को ''यों में तो में खड़क खंभ में कहाँ बताऊँ राम?'' जैसी पंक्ति प्रह्लाद के मुख से तब कहलवायी जब उसका क्रूर पिता खड़ग-हस्त लेकर उससे पूँछता है कि बता तेरा राम कहाँ है? वह यही तो जबाब देता है, मुझ में, तुझ में मेरी तलवार में और इस खंभे में राम हैं, कोई भी जगह कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है- जिसमें राम न हो, लोक गाथाओं में लोक के आदर्श पुरुष और स्त्री देवता बन जाते हैं, स्पष्ट है कि देवत्व लोक की मूलधारणा में ही बसा है। यह सोते-जागते, खेती करते, गाय चराते, वनिज-व्यापार करते राम के भरोसे ही रहता है, वह जानता है कि उसका राम सब कुछ देख रहा है- अनुभव कर रहा है- उसने चौंच दी है तो चुग्गा देगा ही! वह आत्मा राम से भी परिचित है- वह जानता है कि यह देह रूपी घटाकाश जब फूट जाता है, तब इसके भीतर का आत्माराम महा आकाश में ही मिल जाता है, ''रतन-जतन को, पींजरा जामें पंछी करत किलोल, उड़ जाये आकाशे जल अन्न नें पानी।'' रत्नों से जड़े इस शरीर में वह आत्माराम पंक्षी निवास करता हुआ, क्रीड़ालीन हैं, पिंजड़ा खुलता है, और वह पक्षी आकाश में उड़ जाता है, जहाँ अन्न-जल नहीं है, लोक का यह रूपक आत्मा और परमात्मा की अभेद दृष्टि को उजागर करता है। लोक सदैव अद्वैत में जीवित रहता है, आधुनिक बौद्धिकता ने उससे यह भाव छीना है, किन्तु वह इसे पचाकर फिर अपनी अद्वैत चेतना को बचा लेगा!

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार, सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक लेखन के क्षेत्र में संलग्न, लोक-मानस के मर्मज्ञ विद्वान,
हटा दमोह (म.प्र.) मो.- 9977421629

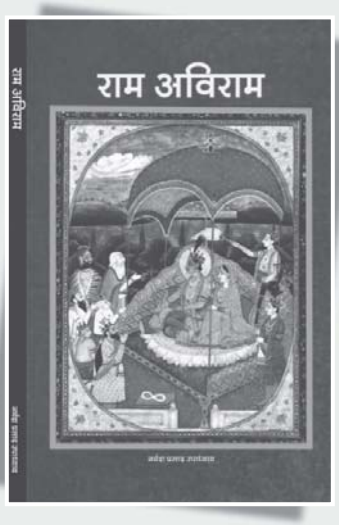

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का
नया गद्य संग्रह

कला समय प्रकाशन
जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर,
अरेरा कालोनी, भोपाल-462016 (म. प्र.)
मो. 9425678058, 0755-2562294

अनुरोधः कृपया पुस्तकों के प्रेमी, पुस्तकों के विक्रेता तथा पाठक परिवार के सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि कला समय प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तकों का क्रय आदेश हमें इस पते पर भेजनें की कृपा करें।

आलेख

कश्मीर की लोक संस्कृति में शिवाद्वैत

जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।
पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ।।

– कुलार्णवतन्त्र 9:42

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

लोक–साहित्य (कथाओं, गीतों इत्यादि) में एक क्षेत्र विशेष की संस्कृति के विकास की संयुक्त प्रतिभा की अभिव्यक्ति निहित रहती है। अतीत से प्राप्त, वर्तमान को पुनर्जीवित करते हुए भविष्य की दिशा को आकार देने वाला पारम्परिक लोक–साहित्य तीन स्तरों पर स्वतः कार्य करता है। अर्थात् यह साहित्य पूर्व की पीढ़ियों के ज्ञान को संरक्षित करते हुए वर्तमान में उसे प्रसारित करता है और भविष्य के लिए इस परम्परागत ज्ञान को आकार देने में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार लोक–साहित्य एक ऐसी अनमोल निधि है जो मानव अस्तित्व और रचनात्मकता के विभिन्न पहलुओं का स्रोत होता है। इस ज्ञान स्रोत को नैतिक व धार्मिक मूल्यों, सामाजिक सम्बन्धों, पारिवारिक मानदण्डों से लेकर – कला, साहित्य, नृत्य, नाटक और रंगमंच के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

इसी कड़ी में 19वीं शताब्दी में संरचित शिवलग्न कश्मीर के पण्डित कृष्ण जू राज़दान का एक महत्वपूर्ण संकलन है। पण्डित कृष्ण जू राज़दान का जन्म सन् 1850 में और इनका देहावसान सन् 1926 में हुआ। कश्मीरी भाषा में लिखित शिवलग्न, शिव और शक्ति की लीलाओं (भक्ति गीतों) का एक संकलन है। कश्मीर की शैव परम्परा में शिव और शक्ति दो मूलभूत अवधारणाएं हैं। यद्यपि कश्मीर में सदैव शैव दर्शन का बोलबाला रहा है, 8वीं–9वीं शताब्दी में विशेषतया यहाँ संस्कृत में रचित शैव दार्शनिक ग्रन्थों के रूप में महत्वपूर्ण शैव साहित्य का सृजन हुआ। 19वीं सदी में कश्मीरी भाषा में रचे गए शिवलग्न के संकलन–काल की बात करें तो हम पाते हैं कि वही दर्शन लोक कथाओं एवं लोक प्रथाओं के माध्यम से प्रसारित हो रहा है। शिवलग्न में कश्मीरी में लिखी गई शिव–लीलाओं में दार्शनिक विचारों को आसानी से खोजा जा सकता है जो अनुष्ठानों, प्रथाओं इत्यादि में प्राप्त होते हैं और अभी भी कश्मीरी समुदाय में प्रचलित हैं। इनमें से शिवरात्रि के पवित्र पर्व पर और विवाह संस्कार के दौरान मनाई जाने वाली प्रथाएँ सबसे महत्वपूर्ण हैं। इन लीलाओं का भक्तिपूर्ण गायन विशेष रूप से शिवरात्रि के महा पर्व पर बड़ी श्रद्धा से किया जाता है। कश्मीर में शिवरात्रि शैव दर्शन से जुड़ा सबसे महत्वपूर्ण त्योहार है और शिवलग्न में इस त्योहार का पूरा विवरण मिलता है। शिवलग्न में इस त्योहार के दौरान मनाए जाने वाले विभिन्न अनुष्ठानों की चित्ताकर्षक व्याख्याओं को अंकित किया गया है।

स्वच्छन्द नाथ भैरव शिव
(छाया आरियंटल लाइब्रेरी, कश्मीर संग्रह)

पंडित कृष्ण जू राज़दान प्राचीन शैव परम्परा के वाहक थे। उन के द्वारा शिवलग्न में शिव और शक्ति के सांसारिक विवाह की औपचारिक कथा के द्वारा शैव दर्शन को वर्णित किया गया है। कश्मीरी शैव विचारधारा की इस व्याख्या के कारण अधिकांश कश्मीरी शिवरात्रि के त्योहार को शिव और पार्वती का विवाह ही मानते हैं।

परम्परा के अनुसार कवि विघ्नहर्ता भगवान गणेश से आशीर्वाद मांगकर शिवलग्न का प्रारम्भ करते हैं। निष्ठावान जिज्ञासु शिष्य का उद्धार करने का श्रेय गुरु को जाता है, अतः विघ्नहर्ता की उपासना के पश्चात गुरु का आवाहन करते हैं:

''हे मेरे सत्गुरु !अपने ज्ञान के प्रकाश से मेरी वासनाओं को मिटा दो। सच्चे ज्ञान के द्वारा मेरा उद्धार करो। उपनिषदों में निहित रहस्यों को मेरे लिए खोलो। मुझे अन्धकार में प्रकाश दिखा दो।''

(राज़दान 1998:7)

पण्डित कृष्ण जू राज़दान
(1805-1926)

इसके पश्चात् ब्रह्माण्ड के निर्माता की उपासना करते हैं:

''परमात्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप हैं। उसी परमात्मा को स्वछन्द (ईश्वरीय इच्छा शक्ति) के नाम से जाना जाता है। स्वछन्द से, माया (अभिव्यक्ति/ विमर्श) का विकास होता है। ॐ नम: शिवाय कर, शिव को नमस्कार कर।'' (वही :9)

कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शिव की दिव्य इच्छा शक्ति का विकास है, जिसे स्वच्छन्द (भैरव) के नाम से जाना जाता है। कवि आगे कहते हैं (वही : 9-15) कि इस विकास के अन्तर्गत भगवान विष्णु और भगवान ब्रह्मा प्रकट हुए और उसके बाद पूरे ब्रह्माण्ड का विकास हुआ। उमा ने प्रजापति से जन्म लेकर शिव से विवाह किया। प्रजापति की अन्य 27 पुत्रियाँ तारा मण्डल में चंद्रमा से जुड़ गईं । जो क्षणों और पलों को मिलाकर समय को उत्पन्न करता है। ज्योतिषियों द्वारा शुभ क्षणों की गणना के लिए इसका ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, कवि कहते हैं।

व्यक्तिगत अहंकार असन्तुलन को जन्म देता है(वही : 16-22)। दक्षप्रजापति द्वारा आयोजित महायज्ञ जिसमें वे अपनी पुत्री एवं दामाद (उमा-शंकर) को आमन्त्रित नहीं करते हैं, अत: देवी का ज्वाला (उग्र) रूप प्रकट होता है (वही: 23-25)। कवि ज्वाला देवी के साथ-साथ शक्ति के अन्य स्वरूपों की भी उपासना करते हैं।

घोर तप के माध्यम से अपने शरीर को अग्नि में निमज्जित करने के लिए सती को जाना जाता है ।(वही: 26)

इसके फलस्वरूप क्रोध में शिव अहंकार को नष्ट करने के लिए वीरभद्र का रूप धारण करते हैं (वही :27-30)। ब्रह्मा, वरुण, मंगल, बुद्ध और बृहस्पति की उपासना करके कवि सभी को शिव की शरण लेने का सुझाव देते हैं (वही : 31-38)। कवि अपनी ओर से भी प्रार्थना करते हैं (वही: 39-40)। दक्ष भी अपने झूठे अहंकार को महसूस करते हुए शिव की उपासना करते हैं (वही: 41-42)। पश्चाताप के कारण दक्ष सांसारिक इच्छाओं के प्रति उदासीन हो जाते हैं। अपनी निरन्तर प्रार्थनाओं के माध्यम से वे शिव को प्रसन्न करते हैं(वही: 43-48)। दक्षप्रजापति द्वारा आयोजित यज्ञ का समापन होता है। ऋषि नारद भी अपने सितार वादन के साथ शिव की स्तुति में राग गाते हैं (वही: 54-56)। इस प्रकार शिवलग्न का पहला भाग पूरा होता है। कवि अंतत: अपनी रचना के पहले भाग के सफल समापन के लिए शिव की आराधना करते हैं।

दूसरे भाग की रचना के आरम्भ में कवि शिव के आशीर्वाद का आह्वान करते हैं (वही: 57-58)। यहां कवि महादेव शिव और महादेवी पार्वती के विवाह का वर्णन करते हैं (वही: 61-63) । गौरी की सुन्दरता की सराहना करते हैं। पार्वती के लिए 'गौरी' नाम उनके माता-पिता द्वारा चुना गया। बहुत कम उम्र से ही वे अपने पिछले जन्म के संस्कारों के परिणामस्वरूप शिव की ओर आकर्षित होती हैं । वे निरन्तर ध्यान में रहते हुए तपस्या करने लगती हैं। यहाँ शिव और शक्ति की परस्पर निर्भरता पर ज़ोर देते हुए कवि कश्मीर के परिवेश से जुड़ी एवं अन्य उपमाओं के द्वारा समझाते हुए कहते हैं, जिस प्रकार – एक आभूषण और उसकी कान्ति ; दिन और रात ; आकाश और ब्रह्माण्ड; अनार और उसके बीज; पोशनुल (कश्मीरी नाम का एक पीले रंग का पक्षी) और आरवल (पीले रंग के जंगली गुलाब का कश्मीरी नाम); आत्मा और प्राण; मोती और धागा – एक दूसरे पर निर्भर होते हैं उसी प्रकार शिव और शक्ति का एक दूसरे के बिना कोई अस्तित्व नहीं होता है। इसी तरह (वही: 64-71) कवि सितारों और उनसे सम्बन्धित अनुकूल ग्रहों की उपमाओं का भी यहाँ उपयोग करते हैं। ध्यान में गौरी शिव के साथ एकाकार हो जाती हैं (वही: 72-73)। एक तपस्वी के वेश में शिव अपने प्रति गौरी की भक्ति की परीक्षा लेते हैं। गौरी करारा जवाब देती हैं। चर्चा आगे बढ़ती है और गौरी तपस्वी को डांटते हुए कहती हैं कि वह न तो सच्चा तपस्वी लगता है, ना ही सच्चा सन्यासी और वह जो कहता है वह सब पाखण्ड है। वे आगे उसे सच्चे अर्थों में शिव का अनुसरण करने के सही मार्ग का पालन करने की सलाह देती हैं। इस प्रकार पार्वती की परीक्षा समाप्त हो जाती है और शिव उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट होते हैं। गौरी शिव से प्रार्थना करती हैं और उनके सर्वव्यापी स्वरूप की स्तुति करती हैं (वही: 74-87)।

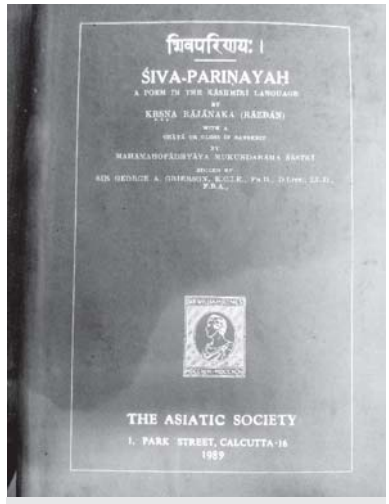

शिवपरिणय,एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित (पहला संस्करण 1914-25, द्वितीय संस्करण 1989)

इसके बाद शिव को सर्वोपरि दिखाते हुए विवाह का वर्णन आता है । शिव के लिए सभी समान और एक हैं। इस विवरण में यौगिक रहस्यों की भी चर्चा की गई है (वही : 88–153)। बारात के स्वागत के बाद प्रतीकात्मक और पारम्परिक 'व्यूग' का उल्लेख मिलता है (वही : 154–55) । 'व्यूग' सुन्दर रंगोली के रूप में एक मंडलाकार बनाया जाता है और उसके ऊपर वर–वधू को खड़ा करके परिवार की सबसे बड़ी महिला के द्वारा दोनों की आरती उतारी जाती है। यह मंडलाकार सूक्ष्म स्तर पर ब्रह्माण्ड का प्रतीक है एवं वर–वधू के रूप में शिव–शक्ति इसके मूलाधार हैं।

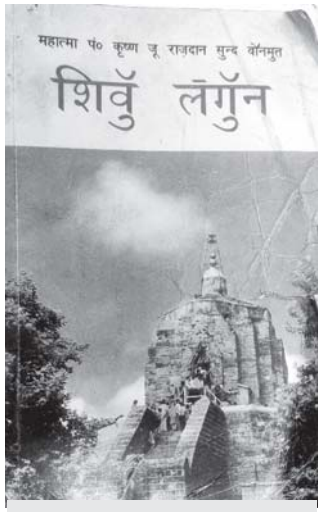

शिवु लगुन, देवनागरी संस्करण, 1998

अगला अनुष्ठान लग्न–मण्डप के प्रवेश द्वार पर पूजा करने का है। इस पूजा को 'द्वार–पूज़ा' के नाम से जाना जाता है (वही : 157–67)। 'लग्न' वर–वधू के विवाह सम्पन्न होने के शुभ क्षणों का संकेत है जो सृष्टि के दो मूलभूत तत्वों अर्थात् शिव और शक्ति के एकीकरण का प्रतीक है।

'पोश–पूज़ा' एक और अनुष्ठान है जिसमें वर–वधू को शिव और शक्ति का प्रतीक मानकर दोनों के ऊपर पुष्प वर्षा के साथ अर्चना की जाती है। विवाह के सभी अनुष्ठानों में यह अत्यन्त भावपूर्ण अनुष्ठान है। पण्डित कृष्ण जू राज़दान ने बड़ी श्रद्धा और उल्लास के साथ इसका वर्णन किया है (वही:168–81)। इस संदर्भ में देवियों के विभिन्न स्वरूपों के साथ–साथ उन सब से सम्बन्धित देवताओं तथा कश्मीर में स्थित उनके मन्दिरों का भी उल्लेख किया गया है। योग के माध्यम से शिव में इन सभी स्वरूपों की परिणति का भी यहाँ हृदयग्राही उल्लेख किया गया है। क्योंकि शिव ही वास्तव में विभिन्न रूप धारण करते हैं । इस परमसत्य का केवल स्वानुभव ही कर सकते हैं। इस अनुभूति के फलस्वरूप सब कुछ शिवमय हो जाता है ।

वर–वधू की द्वार पूजा

कश्मीरी विवाह का एक और रोचक अनुष्ठान है जो 'मननमाल' बांधने का अनुष्ठान है (वही: 182–85)। इस अनुष्ठान के अन्तर्गत वर–वधू के माथे पर एक –एक अलंकृत सुनहरा धागा बांधा जाता है। बाद में, विधाई से पहले दोनों के बीच इसका आदान–प्रदान किया जाता है। यह परम सत्य के दो मूलभूत तत्वों के एकीकरण पर ध्यान केन्द्रित करने की दृढ़ता का प्रतीक है। अन्तिम अनुष्ठान जिसे 'दय बत' के नाम से जाना जाता है (वही : 186) इसमें नवविवाहित जोड़े को प्रीति भोज कराया जाता है।

शक्ति का सदुपयोग उसके समुचित संचय से ही किया जा सकता है। इसके लिए वधू के लिए उपहारों की मांग महिलाओं की ओर से आती है। वधू के लिए सोने के आभूषणों के उपहार उपयुक्त होते हैं। इस संदर्भ में व्यक्तिगत क्षमताओं और सीमाओं को साकार करने के क्रम में शिक्षाप्रद विवरण दिया गया है (वही: 186–89)। सोने के आभूषणों की मांग सुनकर शिव पूछते हैं, 'सोना कैसा होता है? क्या यह अन्न की तरह है जो जीवन को स्थिरता देता है? अथवा यह दुर्लभ होने के कारण बहुमूल्य है?' तब शिव आदेश करते हैं कि सोने की उपलब्धता के माध्यम से सभी उच्च और निम्न को एक हो जाना चाहिए। जब सभी समान होंगे तो किसी को भी किसी वस्तु के लिए लोलुप होने का अवसर ही नहीं मिलेगा। इस प्रकार सोने की बर्फ का गिरना आरम्भ हो जाता है यानि वधू के लिए उसके ससुराल से उपहार। दूसरे शब्दों में कहें तो ईश्वर ने प्रचुर मात्रा में समृद्धि उपलब्ध करा दी जिससे सभी को असीम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या हर एक व्यक्ति के लिए इतनी अधिक सम्पत्ति को समायोजित करना संभव होता है? बर्फ अपने आप में प्रकृति द्वारा मानवता को दी गई सम्पदा है। लेकिन, यह समय पर और उचित मात्रा में होना चाहिए – न तो बहुत कम और न ही बहुत अधिक क्योंकि दोनों ही समस्याएं पैदा कर सकते हैं। यहां वेदों में प्रतिपादित 'ऋतं च सत्यं' का स्मरण हो आता है। ऋत परमात्मा के यथार्थ संकल्प को कहते हैं जो प्रकृतिभूता है और सत्य से प्रकृति का सञ्चालन नियमित रूप से होता रहता है।

अपनी कथा को जारी रखते हुए कवि कहते हैं कि इस प्रकार पूरा ब्रह्माण्ड सोने की बर्फ से भर गया। इससे सभी अपनी मनोकामनाएं पूरी कर सकते थे। लेकिन, ऐसा नहीं था। उन्हें शीघ्र ही 'सत्य के चक्र' के सामने झुकना पड़ा और अत्यधिक बर्फबारी

को रोकने के लिए प्रार्थना करनी पड़ी जो अनिष्टकारी हो सकती थी और विनाश ला सकती थी। इस तरह से अपरिग्रह की भावना के रहते किसी भी सांसारिक सुख की इच्छा नहीं रह जाती है क्योंकि इस अवस्था में सभी एक हो जाता है अर्थात् अद्वैत की भावना जागृत हो जाती है। अत: शिव के साथ एक हो जाना ही परम कल्याणकारी सत्य है। कश्मीरी शैव दर्शन इसी का प्रतिपादन करता है। कृष्ण जू राज़दान कहते हैं कि सत्य को समझने के लिए योग साधना की उच्चतम अवस्था प्राप्त करने के बाद व्यक्ति को भौतिक वासनाओं से प्रभावित नहीं होना चाहिए। ये वासनाएं उस अवस्था में योगियों को भी आकर्षित कर सकती हैं और अपनी योग शक्तियों के माध्यम से उन्हें तुरन्त उपलब्धि भी हो सकती है। लेकिन, उस स्थिति में ऐसे योगी सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुंचने के लिए आगे बढ़ने की कोई उम्मीद भी ? नहीं रख सकते हैं। इसीलिए इस बात पर अधिक जोर दिया गया है।

अपनी सीमित क्षमताओं के प्रति जागरूक होकर लोग सोने की बर्फ के बोझ को सहने से उबरने का प्रयास करते हैं। यहाँ इस वर्णन में भी स्थानीय अनुभूतियों की छवि प्राप्त होती है। लोग एक-दूसरे से कहते हैं, 'अपने घरों को गिरने से बचाने के लिए चलो सब अपनी छतों पर जाने की तैयारी करें क्योंकि छतें रत्नों से भरी हुई हैं' (वही, 190)। यहां बर्फ की तुलना रत्नों से की गई है क्योंकि जमी हुई बर्फ पारदर्शी और भारी हो जाती है और चमकने लगती है। बर्फ को नीचे धकेलते हुए परिसरों में गिराने से सभी घर बर्फ के पहाड़ों से भर गए। ये बर्फ के पहाड़ घरों की पहली मंजिल की छत के ऊपर तक जा रहे हैं। अत: लोग प्रार्थना करते हैं, 'हे सदाशिव ! हम ये सब सहन नहीं कर सकते। लेकिन यदि हम भयभीत भी हो जाएं तो भी क्या फर्क पड़ता है ? इतनी बर्फ से तो घरों के ऊपर से मार्ग निकल सकता है।' लोग एक-दूसरे को सम्बोधित करते हुए आगे कहते हैं, 'यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे हम हमारे बाह्यगृहों (कश्मीर में 'कुछ्य') में संग्रहीत कर सकें। इस बर्फ को उठाने के लिए टोकरियाँ (कश्मीरी में 'फोतरि') और थाल पर्याप्त नहीं हैं। सभी दुकानें भी तो विवशता में बंद हैं । ऐसी स्थिति में जमे हुए बर्फ के पहाड़ों को हटाने के लिए उपयुक्त उपकरण प्राप्त करना भी संभव नहीं है।' इस स्थिति में इन्द्र देव लोगों के बचाव में आकर कहते हैं कि आपके हाहाकार मचाने का कोई परिणाम नहीं मिलेगा। शिव को मनाना होगा ताकि हमें बादलों को हटाने का आदेश प्राप्त हो। इसके लिए तुम्हें पूर्णतया शिव की शरण में जाना होगा, क्योंकि वही एकमात्र आश्रयदाता हैं। तब पृथ्वी के रूप में साकार प्रकृति सर्वशक्तिमान से प्रार्थना करतीं हैं, 'यदि ऐसा ही चलता रहा तो मैं

वर-वधू की शिव-शक्ति के रूप में पोश-पूजा (पुष्प-अर्चना)

कैसे स्वयं को बनाए रख पाऊंगी ? ऐसा नहीं होना चाहिए'। इन प्रार्थनाओं में (वही: 192-93) काशी (वाराणसी), कश्मीर और नेपाल में शिव के भक्तों को संदर्भित किया गया है। ये सभी स्थान भारत के उत्तरी भाग में शैव परम्परा के केन्द्र रहे हैं। अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति के द्वारा अब सब शिव को समर्पित हो जाते हैं। संपूर्ण काव्य रहस्यात्मक वर्णन से परिपूर्ण है(वही 194-95)।

अगली कविता व्यक्तिगत आत्माओं की ओर से पश्चाताप के रूप में है (वही=196-97)। उन्हें 'प्रकृति की व्यवस्था' के सार तत्व का प्रतिभिज्ञान होने लगता है जो व्यक्तिगत आत्माओं के भरण-पोषण को संभव बनाता है। प्रार्थना के बाद, शिव के निर्देश पर बर्फ गिरना बन्द हो जाता है और सुमेरु पर्वत अस्तित्व में आता है जिससे पूरा वातावरण सामान्य हो जाता है (वही:198-99)।

कथन को बनाए रखते हुए, अगली कविताएँ हिमालय (पार्वती के पिता) द्वारा भगवान शिव और विष्णु को सम्बोधित उपासनाएं हैं। पहली उपासना में शिवरात्रि के महत्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इस अवसर पर प्रेम के देवता (कामदेव) का पुनर्जन्म हुआ था। यह सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक है क्योंकि इस अवसर पर सदाशिव के परमानन्द स्वरूप का प्राकट्य हुआ (वही: 202-04)।

देवी (परा शक्ति) को कुमारी देवी के रूप में मान्यता प्राप्त है, इसलिए शिवरात्रि के शुभ अवसर पर परिवार की ब्याही बेटियों को उपहार राशि (हेरथ भोग) प्रदान करने की परम्परा को यहां प्रतीकात्मक रूप से उद्धृत किया गया है। मान्यता है कि इससे देवी की कृपा प्राप्त होती है (वही: 202)। शिवरात्रि पर्व पर वटुक भैरव यानी शिव, एक बालक के रूप में अपने साथियों के साथ सभी को ज्ञान प्रदान करने के लिए आते हैं , जिसके फलस्वरूप अनुग्रह प्राप्त

व्यूग (मण्डलकार रंगोली वर-वधू के लिए)

हो (वही: 203)। संत-कवि आगे शिवरात्रि से जुड़ी मौजूदा पारमपरिक मान्यताओं को संदर्भित करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस अवसर पर छवहर नाग (कश्मीर में एक चश्मे का नाम) में बर्तन दिखाई देते हैं। यह भी कहा जाता है कि संदिमान नाम का एक राजा था जो शिवरात्रि की पूरी रात भगवान शिव की भक्ति में जागता रहता था। इससे राजा को ज्ञान प्राप्त हुआ और फिर उसने कश्मीर में शंकराचार्य पहाड़ी के ऊपर शिव मन्दिर का निर्माण कराया (वही: 203)। जो कोई भी प्रकृति के मर्म की समझ रखता है इस रात्रि के मर्म को समझ लेता है, ऐसा संत-कवि कहते हैं।

भगवान विष्णु से शिव के रूप में प्रकट होने के लिए प्रार्थना करते हैं:

''(हे भगवान विष्णु!) आप शिव के रूप में कृष्ण (कवि) के सामने प्रकट हों। क्योंकि वह (भगवान शिव) और आप (भगवान विष्णु) एक ही वास्तविकता को प्रकट करते हैं। परम शिव केवल एक ही हैं, दो नहीं । हे श्यामा! (भगवान कृष्ण का एक नाम) मुझे अभी अपने प्रकाश रूप के दर्शन कराओ (इससे पहले कि बहुत देर हो जाए)। हे नादबिन्द! हे परमानन्द! हे नंद के पुत्र!''

(वही: 207)

हिमालय नारायण की उपासना करते है:

''शिव के रूप में मैं स्वयं को आपके (नारायण के) समर्पित करता हूं। क्योंकि मूल रूप से आप किसी भी आकार या रूप से परे हैं। हे चैतन्य स्वरूप! आनन्दगण ! आप केवल अनुभव गम्य हैं''।

(वही: 209)

इन वचनों को सुनने के बाद शिव, हिमालय से प्रसन्न होकर कहते हैं कि वे इस सृष्टि की वास्तविकता को जानने का प्रयास करो, जिससे अज्ञानता से शिवत्व प्राप्त करने के ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकते हो (वही: 211)। इसके लिए राग- मुक्त हो जाना आवश्यक है। यह त्याग के समान है। यहां त्याग की अवधारणा को समझना अति आवश्यक है। कश्मीर शैव मत के अनुसार, त्याग का अर्थ है सृष्टि की सभी भौतिक वस्तुओं से भावनात्मक रूप से अलिप्त रहते हुए उन सभी का आनन्द लेना (वही: 212-15)। संत-कवि इस कथन को इस प्रकार प्रकट करते हैं:

''(कैलाश पर्वत की तरह) उच्च विचार वाले एक सच्चे सज्जन बनो। यह आपको प्रकट सृष्टि (बस्ती) का पूरा आनन्द लेते हुए अनासक्त (वनवास) रहने में सक्षम बनाएगा। आनन्द लेते समय वास्तविक आनन्द के बारे में जागरूक रहना होगा, जिसका उद्देश्य अनासक्त रहना है। परमानन्द के साथ एक्य का निरन्तर अभ्यास करो। प्रकट सृष्टि का आनन्द लेते हुए अनासक्त बने रहो''

(वही: 212)।

इस प्रकार विवाह संपन्न होता है। आमंत्रित लोग प्रस्थान करने लगते हैं। यहाँ कवि कहते है:

''कपोत की तरह शक्ति भक्ति के घोंसले से निकल जाती है। वह ऊंचाई प्राप्त करने के साधनों के माध्यम से तेजी से आगे बढ़तीं हैं। मध्य अवस्था (तुरीय) प्राप्त करके वह उसके (शिव के) साथ एक हो जाती हैं''(वही: 216)।

उच्चतम योगिक अवस्था का अनुभव कराते हैं:

''(तुरीय अवस्था में) ध्यान और कर्म एक हो जाते हैं क्योंकि सभी क्रियाएं अब आन्तरिक आनन्द को लक्षित करतीं हैं। परमानन्द का आभास होने पर कुछ भी शेष अप्रिय नहीं रहता''। (वही : 218)

कवि फिर नारायण से प्रार्थना करते हैं और फिर भगवान श्रीकृष्ण की कथाएं उद्धृत करते हैं (वही: 220-26)। इसके उपरान्त अद्वैत रूप शिव और विष्णु की उपासना करते है:

''हर (शिव), हरि (विष्णु) बन गए और केशव (कृष्ण), शिव बन गए। नारायण-शिव और विष्णु का अद्वैत स्वरूप है''(वही: 227)।

नारायण और उनके विभिन्न स्वरूपों की उपासना करते हैं (वही : 228-39) और फिर वर-वधू के प्रस्थान के बाद शिव और उनकी देवी माया (महामाया), आठ सिद्धियों (अष्टसिद्धि) के साथ प्रस्थान करती हैं (वही : 240)। यहाँ, कवि महत्वपूर्ण ढंग से कश्मीर में प्रचलित रहस्यात्मक स्तोत्रों - पंचस्तवी और शंकराचार्य की सौंदर्यलहरी का उल्लेख करते हैं:

''(उस समय) सभी छह दिशाओं में भैरवी (निर्भयता प्रदान करने वाली देवी का स्वर) गूंज रहा था। मधुर स्वर में पंचस्तवी के पांच अध्यायों के और सौंदर्यलहरी के पाठ से महामाया की स्तुति हो रही थी''(वही: 240)।

इसके बाद शारिका रूपा देवी पार्वती की उपासना करते हैं। कश्मीर में हारीपर्वत के नाम से जाने जाने वाले शारिका के लोकप्रिय मन्दिर के साथ ही कवि क्रमशः महान शैवाचार्य अभिनवगुप्त और वेदान्त के दार्शनिक शंकराचार्य का भी उल्लेख करते हैं, जिन्हें परा शक्ति का साक्षात्कार हुआ था (वही: 241-43)।

शिव और फिर शिव और विष्णु की एक साथ उपासना के बाद (वही : 246-47) अगली कविता में अनुष्ठानों (कर्म-कांड) के महत्व पर चर्चा की गई है। कवि का कहना है कि धर्म की मण्डलियों के माध्यम से जिसमें धार्मिक अनुष्ठान आयोजित किये जाते हैं, उनके द्वारा एक व्यक्ति ज्ञान की उच्चतम अवस्था तक पहुँचता है (वही : 248-49)। कवि का उद्देश्य यह बताना है कि सभी अनुष्ठान विभिन्न प्रकार से परम सत्य का प्रतीकात्मक स्वरूप ही होता है।

अगली कविता में शिवरात्रि के दर्शन की व्याख्या करते हैं (वही: 250-51)। शिवरात्रि सत्य की रात्रि है क्योंकि यही वह समय है जब नक्षत्र मानव को कृपा प्राप्त करने का शुभ क्षण प्रदान करते हैं:

''तिष्य या पुष्य (पुनर्वसु) में अभिजित (हर दिन होने वाला शुभ मुहूर्त का योग) बन जाता है। वहां सूर्य मानसून को जन्म देगा (आत्माएं प्रबुद्ध होने के बाद कृपा प्राप्त करने के लिए उपजाऊ हो जाती हैं)। इस प्रकार बारिश के रूप में अमृत पृथ्वी पर उतरेगा। (अतः) शिवरात्रि सत्य की रात्रि है''। (वही : 250)

इसलिए प्रार्थना करते हैं:

''हम उस हिरण की तरह अज्ञानी हैं (जो अपने ही भीतर सुगन्ध रखते हुए उसे पाने के लिए चारों ओर भटकते रहते हैं)। शक्तिपात की वर्षा के माध्यम से हमें कृपा के मोती प्रदान करें क्योंकि शिवरात्रि सत्य की रात्रि है''(वही : 250)।

आगे और भी :

''हे वटुक भैरव! आप शिव हैं। अपने साथियों के साथ आप सदैव हमारे साथ रहते हैं । हे रक्षक! हम आपको शिवरात्रि मनाने के लिए आमन्त्रित करते हैं क्योंकि शिवरात्रि सत्य की रात्रि है''

(वही : 250)।

शिवरात्रि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए (वही: 252-53)पण्डित कृष्ण जू राज़दान कहते हैं कि सभी रात्रियों में यह एक ऐसी रात्रि है जो सत्य और आनन्द की रात्रि है। क्योंकि यही वह समय है जब सीमित मानवों को अनुग्रह प्राप्ति की आशा रहती है क्योंकि इस रात के दौरान मूल तत्व (कारण देवता) क्रियाशील होते हैं। इसी अवधारणा के प्रतीक के रूप में सभी (घरवाले) इस अवसर पर मिट्टी के बर्तन खरीदते हैं। इसे एक अदृश्य कार्यशाला के रूप में समझ सकते हैं जिसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्व एकत्र हो जाते हैं, जबकि सभी कारीगर अपना कौशल दिखाते हैं और निराकार एक रूप लेता है। जो लोग प्रकृति के रहस्यों को सही मायने में समझते हैं वे इस रात्रि के महत्व को भी समझते हैं। पण्डित कृष्ण जू राज़दान कहते हैं, शिवरात्रि पारम्परिक रूप से प्राचीन काल से मनाई जाती है। आचार्य अभिनवगुप्त, जिन्होंने

वर-वधू की मनन-माल बदलना

(अपनी आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से) हजारों लोगों को इस संसार रूपी सागर से पार होने में सहायता प्रदान की है, वे शिवरात्रि के साधक रहे हैं।

इस रात्रि में जागते रहने के महत्व पर भी रोचक ढंग से जोर दिया गया है:

''(शिवरात्रि को) जागते रहना बहुत अच्छा है। सत्य का अनुभव करने के लिए शिव की उपासना करनी चाहिए। यद्यपि ऐसा नहीं कर सकते हो तो भी वटुक की अनुष्ठानिक वस्तुओं के साथ खेलते रहो। किसी भी स्थिति में जागते रहना चाहिए, बेशक अपने बच्चों के साथ जुए का खेल खेलते रहो''(वही: 253)।

यह शिवरात्रि हम सभी को बार-बार समृद्धि प्रदान करके लौटे।

अब शिवरात्रि और शाक्तमत का विवरण आता है (वही: 254-56)। दिन और रात की तरह दोनों एक समान हैं। जब दोनों एक हो जाते हैं तो शून्यता रह जाती है; इसका मतलब है कि यह किसी भी रूप और आकृति के वर्णन से परे की स्थिति होती है। आगे

का विवरण विशेष ध्यान देने योग्य है क्योंकि यह सांसारिक आनन्द के साथ आध्यात्मिकता के अनुभव को संदर्भित करता है जो कश्मीरी शैव दर्शन की विशेषता को प्रदर्शित करता है:

''इस उत्कृष्ट सिद्धान्त के प्रवर्तक कौन हैं! जिससे परमानन्द के अनुभव से सब सन्तुष्ट हो जाते हैं। इस (सिद्धान्त) के परिचय के साथ योगी (का शरीर) आनन्द रूपी छत प्राप्त करता है। (योगी के शरीर को धर्मशाला अर्थात् धर्म का घर कहा गया है, क्योंकि धर्मशाला सभी के उपयोग के लिए होती है, इसी तरह आत्मोत्थान के लिए योग भी सबके लिए है) । शिवरात्रि और शक्ति का सिद्धान्त एक ही है जैसे दिन और रात्रि केवल एक ही वास्तविकता के दो पहलू हैं''(वही : 255) ।

कश्मीरी भाषा में शिवरात्रि का नाम 'हेरथ' है, इसकी व्याख्या करते हैं:

''हे रति (हेरथ) नाम शिवरात्रि को इसलिए दिया गया क्योंकि इस अवसर पर प्रेम के देवता (कामदेव) एक बार फिर अस्तित्व में आए। 'रति' कामदेव की अर्धांगिनी का नाम है। चूंकि शिव और शक्ति एक हैं जैसे दिन और रात्रि एक ही वास्तविकता के दो पहलू हैं''(वही : 255)।

शिवरात्रि पूजा

शिव और शक्ति का एक हो जाना वर्णनातीत स्थिति है। कथन के अन्त में यही विचार व्यक्त किया गया है:

''निराकार की निराकार अवस्था को प्राप्त करने से वर्णन करने योग्य कोई चिन्ह शेष नहीं रह जाता'' (वही: 262)।

अन्त में शिव और पार्वती के सर्वोच्च निराकार रूप की उपासना करते हैं :

''हे निराकार! कौन जानता है कि आप किस मार्ग से चले गए । हे सर्वशक्तिमान! आप उस आश्रय स्थान पर चले गए हैं जिस शून्याकार का वर्णन किसी भी विज्ञान या किसी भी ज्ञान के माध्यम से नहीं किया जा सकता है (क्योंकि यह वर्णन से परे एक अनुभव मात्र है)। आपने उसी मार्ग का अनुसरण किया, जिसकी चर्चा साधुओं (जो योग का अभ्यास करते हैं) द्वारा की जाती है। हे इंद्रियों के विजेता! आप अद्वैत के स्थान पर चले गए हैं'' (वही: 263)।

पण्डित कृष्ण जू राज़दान अन्त में अपनी ओर से प्रार्थना करते हैं:

''मुझे ज्ञान के द्वार से भीतर ले चलो और मुझे चौथी अवस्था (तुरीय) दिखा दो। वहां रहकर मैं परमानन्द का आनन्द लूंगा। क्या मैं इस पर जोर दे सकता हूं!'' (वही: 267)

फिर एक बार प्रार्थना करते हैं:

''केवल एक वरदान के प्रभाव से कृष्ण (कवि) के लिए उस अवस्था (तुरीय) तक पहुँचने के लिए भक्ति के द्वार तुरन्त खोल दो (जैसे कश्मीर में प्राचीन घरों में दरवाजे को रोकने या खोलने के लिए 'तोर' का उपयोग किया जाता था), ताकि अमर होने के लिए आपके साथ एक हो सकूँ। क्या मैं उस पर जोर दे सकता हूं!''

(वही: 267)

निष्कर्षत: शिव लग्न का उपरोक्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि यह उच्चतम रहस्यों के अनुभव की एक रचना है जो कश्मीरी शिवाद्वय के विचार के समानान्तर है। यह एक ऐसी परम्परा है जिसका वहन हमारे पूर्वजों द्वारा किया गया है और अभी भी हमारे रीति-रिवाजों और पारम्परिक जीवन शैली में इस परम्परा का दर्शन कर सकते हैं। कश्मीरी पण्डित पृष्ठभूमि से आने के कारण, मैं इस संकलन से अत्यन्त प्रभावित हूँ क्योंकि यह हमारी परम्पराओं की निरन्तरता को दर्शाता है। यह संकलन कश्मीरी पण्डित समुदाय द्वारा आज तक अपनाई जा रही विभिन्न अनुष्ठान प्रथाओं की व्याख्या की सुविधा भी प्रदान करता है। दुर्भाग्य से, आज हममें अधिकांशत: लोग ऐसे अनुष्ठानों के वास्तविक महत्व से अवगत नहीं हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

राजदान, श्यामलाल (सं.), पंडित कृष्णा जू राज़दान का शिव लग्न (कश्मीरी भाषा और देवनागिरी लिपि में), ललिता स्टोर्स, राम दरबार मंदिर, शास्त्रीनगर, नई बस्ती, जम्मू तवी, 1998।

चटर्जी, जे.सी., कश्मीर शैविज़्म, इंडोलॉजिकल बुक कॉर्पोरेशन, पटना, नई दिल्ली, 1978 में पुनर्मुद्रित।

राज़दान, कृष्ण राजाक, शिवपरिणय: , छाया सहित, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता,1989।

लेखिका - वरिष्ठ साहित्यकार है।

आलेख

निमाड़ के लोकगीतों और लोक मान्यताओं में जीवत्व

डॉ. सुमन चौरे

पूस की गुनगुनी धूप सेकते-सेकते मैं भाजी-पत्ते तोड़ रही थी। वहीं बेला-लताओं से छिटकी धूप में बच्चे मण्डुवे के नीचे खेल रहे थे, बच्चों का रास-लोल और ऊपर भौंरा, तितली, चिड़ियाओं का किल्लोल बड़ा सुहावना लग रहा था। तभी एका-एक छोटे बालकों की तेज चीख सुनाई दी उधर नजर गई, तो एक बिल्ली चिड़िया के बच्चे को मुहँ में दबोचे भाग रहीं थी, बड़े बच्चे भी कितने बड़े छः सात साल के, उन्हें समझा रहे थे,''अरे बिल्ली का तो भोजन ही है, यद्यपि उन्हें भी रुलाई छूट रहीं थी, पर छोटे भाई बहन को रोते देख, समझा रहे थे कि ''चिड़िया का बच्चा मरा कहाँ ? उसकी आत्मा तो अमर है, दूसरी खोल में चली जायगी।'' तब तक दूसरा भाई बोला,''यार भाई से कह रहा है, बीते कार्तिक-मास में हमारे मंदिर के पुजारी जी, भागवत कथा कह रहें थे, तब उन्होंने भी तो यहीं कहा था ''कृष्ण भगवान अर्जुन से कहते है, कि आत्मा तो अमर, सबमें मैं ही तो हूँ।''

श्री कृष्ण-अर्जुन का संवाद मेरे इतने छोटे-छोटे बच्चे समझा रहे थे, एक दूसरे को मेरे कान खड़े हो गए' मैं चाह कर भी उन बच्चों के पास इसलिए नहीं गई कि मैं जानना चाह रही थी, कि ये भाई-बहन और क्या-क्या बातें करेंगे। संभवत: मेरे जाने से ये झेप जायेंगे। उनकी बातें चल रहीं थी, इतने में ही छोटी बहन बोली,''हाँ, ओ परसों उच्चे ओटले वाले पटिल दाजी मरे थे, तब भी तो सब यहीं कह रहें थे, अच्छी उमर पाई, पारिबरम में मिल गए,'' भाई बताना ये पारिबिरम कहाँ रहता है ''अरे रहता होगा कहीं बद्दल पार उच्चे आसमान में हमको क्या करना ?ज्यादा जरूरत है. तू तो रात को अपने दाजी से पूछना, नहीं तो मंदिर के पुजारी जी से पूछ आना, अपन तो खेलते हैं, दपड़ा-दपड़ी, ये तो सब ज्ञान की बातें हैं।

ज्ञान की बातें हैं, सच में ज्ञान की बाते हैं, जो बच्चे इतनी छोटी सी उम्र में कर रहे थे। आत्मा परमात्मा, परिबिरम, अम्मर, ऐसी बातें करने की उम्र है, क्या इनकी ? यह तो परम गूढ़ विषय है, इस परमतत्व का ज्ञान पाने के लिए तो ऋषि मुनियों ने, संत-ज्ञानी योगियों ने कठिन साधना, योग-जोग, जप-तप, ध्यान, हठ कर इस ब्रह्म ग्रंथी को सुलझाने की कोशिश की है, वहीं लोक के वाणी-व्यवहार, रीति-रिवाजों कथा गीतों ने इस परम तत्त्व को जराक में साध लिया, हासिल कर लिया हैं।

आत्मा परमात्मा की बात होती है, तब जब कोई कथा उपदेश हो, वेद-वेदान्त की चर्चा होती है। या किसी का स्वर्गवास हो गया हो, तभी यहीं चिन्तन करते हैं, ''कि यह जीव कहाँ से आता है, और क्षण मात्र में कहाँ जाता हैं ? आत्मा क्या है ? निमाड़ में इस आत्मा के लिए, जीवात्मा शब्द पहचाना जाता है, और विशुद्ध आत्मा की बात होती है, तो यहीं कहते है, कि यह जीवात्मा ईश्वर का अंश ही हैं, हमारे शरीर को भी ईश्वर का अंश ही संचालित करता हैं। हमारे भीतर भी वही ईश्वर परब्रह्म वास करता है, जो सृष्टि के चराचर में व्याप्त हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में उसी की सत्ता विद्यमान हैं। दृश्यमान अदृश्य सभी की रचना, परब्रह्म के अंश से ही हुई हैं। ''सब में वही परब्रह्म का स्वरूप हैं।''

तत्त्व ज्ञानियों ने ब्रह्म क्या है कि खोज की है इन चार महावाक्यों ये यह स्पष्ट होता है,

1. पहला है - प्रज्ञानं ब्रह्म, यह ऋग्वेद के अन्तर्गत एतरेय उपनिषद् में है,
2. दूसरा है - तत्त्वमसि, यह सामवेद के अन्तर्गत छन्दोग्य उपनिषद् में हैं,
3. तीसरा है - अहंब्रह्मास्मि, यह यजुर्वेद के अन्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद् में है,
4. चौथा है- अयमात्मा ब्रह्म, अथर्व वेदान्तर्गत माण्डूक्योपनिषद् में है।

उपनिषदों के यह चारों महाकाव्य निमाड़ के लोक जीवन में बड़ी सहज दृष्टि से दीख जाते हैं। निमाड़ के रीति-रिवाज परम्पराओं को देखें तो इस तथ्य लोक मान्यता है, लोक स्वीकार्य है, कि जो हम है, वहीं ईश्वर हैं। ऐसा ही वाचा व्यवहार में भी कहते है, सुनते है और देखा गया है कि जीव को सताना, ईश्वर को सताने जैसा ही है।'' जब शरीर से आत्मा निकल जाती है, तो परिवार के सदस्य

जो भी हो, वह अपने रिश्तों संबंधों के अनुरूप उस दु:ख से ग्रसित होता है, तब ज्ञानी जानकर कहते है,''यह आत्मा जिसकी थी, उसके पास चली गई। जहाँ से आई वहीं समा गई।'' यह दु:ख का नहीं अपितु, आनन्द का प्रसंग है। आत्मा तो आनन्त मनाती है, कि वह अपने परब्रह्म परमात्मा में मिल गई। जो इतने दिनों से उनसे बिछड़ गई थी। निमाड़ में संत सिंगाजी के कारण निरगुण ब्रह्म की उपासना का असर लोक साहित्य पर हैं। मृत्यु के पश्चात् अन्तेष्टि संस्कार के लिए, जब देहात्मा, मृतात्मा को ले जाते हैं, तब जब जो भजन गाये जाते हैं, जिन्हें निरगुणता भजन, नारद भजन, या लोक भाषा में मसाण्या गीत कहते हैं। इन गीतों को गाने का मुख्य कारण मृतक के परिवार दु:ख शोक को कम करना तो है ही, इस तथ्य को भी उद्घाटित करना है, कि मृत्यु सत्य है। जीवात्मा का ब्रह्म में विलीन होना ही, आत्म तथ्य हैं। इसमें ब्रह्म स्वामी स्वरूप और आत्मा पत्नी स्वरूप है। आत्मा जब देह में बिलम जाती है, माया-मोह में धस जाती है, अपने परब्रह्म को बिसर जाती है, तब परब्रह्म उसे अपने स्थान का स्मरण कराकर लेन आते हैं। ऐसे ही अनेक गीत गाये जाते हैं।

गीत-

आणों सोऽ आयो पारिब्रह्म को,
आतमा दपड़ी-दपड़ी जायऽ... आणों सो आयो-
थारो रेऽ स्वामी थारा लेणऽ चूँदड़ऽ लायोऽ
जेमऽ तारा हजारऽ चाँद सूरजऽरे दमकी रहया-
ढोलऽ ढमाका नाँदऽ ऋगिं कर झणकारऽ
मिलनऽ कर थारा परब्रह्म सीऽ
ओढ़ऽ चूदड़ तो बठी जा डोलामऽ...
लई चल्या चारऽ कहारऽ... आणो सो आयो...

भावार्थ:- हे आत्मा तेरा गौना लेने तेरे परब्रह्म स्वामी आये हैं। आत्मा तू छिप-छिप जा रही है। तेरे स्वामी नवलख तारों से झड़ी चूनड़ लाये हैं। चाँद और सूरज की दमक उस चूदड़ को तेजस्वी बना रहें हैं। तू इस चूदड़ को सहर्ष पहन कर डोली में बैठ जा। चार कहार तुझे लेकर चलेंगे। हर्ष मना, ढोल-नगाड़े-वाद्य ऋगि बज रही हैं। तेरा परब्रह्म पति बारात लेकर आया हैं। तू उनके साथ हर्षित हो जा।

आत्मा और परमात्मा परब्रह्म का संबंध तो नित्य है, सत्य है, किन्तु शरीर में रहते-रहते माया में आत्मा अपना सच्चा स्थान और अमर स्वामी को भूल जाती हैं।

यह माया ऐसी ही ठगनी है, आत्मा को शरीर में रहते-रहते, काया जगत से मोह हो जाता हैं। जब आत्मा शरीर से निकलती है। तो शरीर आत्मा को उलाहना देता है, ऐसे गीत महिलाएँ गाती है, जिस गीतों को 'उल्हणा' गीत कहते हैं। महिलाओं के चिंतन में कोमलता संवेदनशीलता, मातृत्व का भाव छिपा रहता है, जो उनके भावों में गीतों में प्रगट होता है उन्हें अपनी आत्मा की चिन्ता होती है कि वह भूखी प्यासी होती, ऐसा विलाप करती है, जबकि वे जानती हैं, कि प्राण निकलते ही प्राण माटी का हो जाता है, वह देख सुन, बोल कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु विलाप में वे गाती हैं।

गीत:-

आतमा ओऽ आतमा तु तो बड़ी अजाणी,
बिन देहऽ कोई तूखऽ वलखऽनी चीन्हऽ
नई कोई पेवाड़ऽ पाणीऽ आतमा ओ...
बिन देहऽ की कॉ तू बठती, नई कोई थारों ठाणी
चूगणऽ खऽ कोई देय, काई कॉ खायऽ गुड़ धानी
थारो पारीबिरम देख्यों नी जाण्यो
काई ओकीऽ रह्य ओ निसाणी आतमा ओ आतमा

भावार्थ:- हे आतमा तू बड़ी अजानी, अज्ञानी है। तूने देह छोड़ दी, बिना काया के कोई तुझे न जाने, न पहचाने और तू प्यास से, भूख से तड़पती भी रहे तो कोई तुझे कैसे गुड़ धानी खिलायगा, कैसा पानी पिलायगा ? बिना देह के न तेरे हाथ न मुँह। जैसे तू अदृश्य तू कहा बैठेगी, बिना देह के कोई तूझे कैसे पहचानेंगे जैसे तू अदृश्य ऐसा ही तेरा परब्रह्म भी निराकार अदृश्य है उसे पहचानने के लिए कोई निशान चिन्ह भी तो नहीं हैं। तू बड़ी अज्ञान है! मुझे छोड़ कर चली गई। मेरे से ही तेरी पहचान थी।

लोक ने आत्मा परब्रह्म का कितना गूढ़ रहस्य बता दिया। सहज ही जोक गीतों के जरिये। ऐसे ही बहुत से गीत नारद भजन महिलाएँ रात में गाती हैं। जहाँ देह से आत्मा विलग हुई है, उस स्थान पर दीपक जलाकर, निरगुणिया भजन गाती हैं, जो नौ दिन तक रात में गाते हैं ताकि शोक संतप्त परिवार का दु:ख कम हो जाये। वय पूर्व होने पर तो विशेष दु:ख नहीं किन्तु अल्पवय के समय ये निरगुणिय शोक को कम करते हैं। एक गीत और है, जिसमें आत्मा शरीर को कुछ उत्तर देती हैं।

गीत-

काया तूऽ तो भोलई अजाणीऽ
हाऊँ तो पारिविरम सी परणीऽ
थारी माया मोह नी जाणीऽ
काया तो तू आगऽ मऽ भसमीऽ
म्हारो परण्यों अम्मरऽ की निसाणीऽ
काया तू तो भरम मऽ भरमाणी,
परिबिरम सी परणाणीऽ।

भावार्थ:- हे काया, तू तो भोली है, अनजान है। मैं तुझे छोड़ दूँगी तो, लोग तुझे भस्म कर देंगे। मैं तो परब्रह्म से परणी हूँ। वह मेरा पति है। वह तो अमर है। तू तो सब इस भ्रम में हैं, कि तू अमर है। अमर तो मैं हूँ जो तुझको छोड़ चूकी हूँ।

महिलाओं के गीतों में देह और आत्मा के संवाद के गीत अपनी समझानुरूप हैं। यह गीत समझा हैं कि आत्मा अमर हैं। और देह, काया नश्वर है। जीवात्मा और परब्रह्म एक है। लोक व्यव्हार में द्वैत के दर्शन होते किन्तु लोक में भी, अद्वैत के दर्शन होते हैं। जहाँ अपनी परम्पराओं में उनका निर्वहन करता हैं। महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले मृत्यु गीतों में उन्हीं के परिवेश माया-मोह, सुख-दु:ख, धन एश्वर्य कर्तव्यनिष्ठा ममता का भाव होते हैं। जबकि पुरुषों के मसाण्या या गुरणियाँ भजनों में परमात्मा परब्रह्म और आत्मा का संवाद निराकार ब्रह्म की अनुभूति का भाव मिलता है। जो संत सिंगाजी का साक्षात प्रभाव नज़र आता हैं। महिलाएँ गाती है- ''आत्मा कहती है।'',''हे परब्रह्म मैं तेरे साथ नहीं जाऊँगी। वहाँ सब नीरस है, यहाँ मेरा रचा बसा संसार है, घर गृहस्थी हैं। मोह में लिप्त जीव अपनी सत्गति और परम धाम को भूल जाता है ऐसा ही गीत है-

गीत-

हाऊँऽ नै जाऊँ रेऽ पारिबिरम थाराऽ साथऽ
अन्याऽ तो म्हारीऽ गावड़ी भैस्याऽ
थारा जगतऽ मऽ नी रेऽ बागऽ बगीचाऽ
नै रे तूनऽ कुआँ रवणायाऽ
अन्याऽ तो म्हारा नात्या पोत्याऽ
नितऽ उठी झुला झुलावऽ
अन्याऽ तो म्हारी दागिणा री पेटी
नितऽ जायाऽ ववू झुकी-झुकी जाय
हाऊँ नें जाऊँ रेऽ पारिबिरम थारा साथऽ
हाऊँ कऊँ रीऽ मूरखऽ आतमाऽ
वन्या थारो अम्मर पाटऽ, चल ओ आतमा साथऽ,

भावार्थ:-

आत्मा कहती है, 'हे परब्रह्म मैं तेरे साथ नहीं जाऊँगी, इधर गाय-भैंसों से मेरे गोठान भरें हैं। तेरे संसार में तो बाग-बगीचा, कुआँ-बावड़ी कुछ भी नहीं हैं। इस संसार में तो मैं नाती-पोती को झूला-झूलाती हूँ। मेरे पास आभूषणों से भरी पेटी है। मेरे बेटे बहू मुझे नित उठकर प्रणाम करते हैं। वहाँ तो मैं अकेली ही रहूँगी, यहाँ तक कि काया भी नहीं रहेंगी परब्रह्म कहते हैं -''मूर्ख आत्मा, तू क्यूँ यहाँ विषय वासना, माया मोह में बिलम गई हैं। वहाँ तो तेरे लिए अमर पाट हैं तू आवगमन से मुक्त हो जायँगी। महिलाएँ अपनी भावना, समझ और अपने अनुभव से गाती हैं। ये महिलाएँ शव यात्रा में पीछे-पीछे निरगुण्या गीत गाते-गाते गाँव बाहर के बोर यिन्दी तक जाती हैं, मसाण घाट नहीं जाती हैं। निमाड़ी लोक साहित्य में इसी भाव के बहुत से गीत महिलाएँ गाती हैं।

गीत-

जदऽ पारिविरम म्हारो काकड़ऽ पऽ आयोऽ
सेरी - गली मऽ भागी गई ओऽ आतमाऽ
नईं जाणू ओऽ आणा पारिबिरम को।।
जदऽ पारिबिरम म्हारो सेरी गली आयोऽ
घरमा मंऽ दपड़ी गई ओऽ आतमा
नई जाणू ओ आणाऽ पारिबिरम को।।
जदऽ पारिबिरम म्हारों घरमा मऽ आयोऽ
कोठड़ी मऽ दपड़ी गई ओ आतमाऽ
नई जाणू ओ आणा परिबिमि को
जदऽ पारिबिरम म्हारो कोठड़ी मऽ आयोऽ
हाथऽ जोड़ी नऽ संग लगी गई ओ आत्माऽ
घरऽ मऽ मच्योऽ रड़ऽ-रड़ऽ
आणू से लई गई पारिबिरम मसी

भावार्थ :-

आत्मा ने देखा कि उसका परब्रह्म स्वामि पति उसका आणा लेने काकड़ तक आ गये हैं। आत्मा कहती है ''हे स्वामी मुझे नहीं जाना, वह आत्मा डर के मारे गलियों, भाग गई। परब्रह्म जब गली में आत्मा(अपनी पत्नी) को लेने आये तो घर में छिप गई कि हे परब्रह्म मुझे गौना नहीं जाना है। जब परब्रह्म घर में आये तो आत्मा कोठड़ी में छिप गई। अब परब्रह्म आत्मा को लेने कोठड़ी में आये, तो आत्मा समझ गई कि अब मैं बच नहीं सकती, तो हाथ जोड़कर गौना लेने आये परब्रह्म के साथ लग गई। घर में रोना धोना मच गया।

आत्मा ब्रह्म में मिल गई, शरीर मृत हो गया। मृतक परिवार में शोक छा गया विलाप करुणा होने लगी, पर आत्मा प्रसन्न है।

निमाड़ में पुरूषों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में आत्मा और परमात्मा के मिलन को परमानन्द का विषय मानते हुए जो निरगुणिया भजन गाते हैं, वहीं कई जन-जातियों में काया खोजी' गीत गाये जाते हैं, जिसका विधान किया जाता हैं। किसी भी व्यक्ति के मृत्यु के दसवें दिन सामान्यत: निमाड़ में पिण्ड क्रिया की जाती हैं। वहीं कई जन-जातियों में यह मान्यता है, कि आत्मा दस दिन तक घर के डाँडे

में लटकी रहती हैं। साथ ही वह उस शरीर को ढूँढती है, जिसमें उसका वास था। ऐसी स्थिति में आत्मा की मुक्ति के लिए ''सवा-घड़ा'' अनुष्ठान किया जाता हैं। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'काया खोजी' गीत कहते हैं।

'सवा-घड़ा' अनुष्ठान को सम्पन्न करने के लिए एक कर्मकाण्ड करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती हैं, जिसे संबंधित समाज में 'सादगुरु' कहते हैं। जो पुजारी होते हैं। मृत्यु के दसवें दिन घर को लिप पोत कर अशौच दूर किया जाता हैं। जिस स्थान पर व्यक्ति के प्राण निकलते हैं उस स्थान को पवित्र-साफ कर जुवार बिछाकर छेदों वाले घट को स्थापित करते हैं। यहाँ दो बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है, एक तो सूर्य अस्त के बाद यह अनुष्ठान प्रारंभ किया जाता है, दूसरा इसमें महिलाओं को प्रवेश निषेध रहता है।

छेदों वाले घट में भीतर दीपक जलाकर उस घट के बहारी आवरण पर जुवार के आटे से ही पुतली बनाई जाती हैं। घट के भीतर का जलता दीपक आत्मा और यह पुतली काया स्वरूप मानकर घट में आत्मा को बुलाया जाता हैं, आत्मा को बुलाने के लिए जो भजन गाये जाते हैं उसमें पतले चौक पाठ भजन गणेश भजन गाते हैं, कहते है इन गीतों के माध्यम से आत्मा को घट में बुलाया जाता हैं। जिन्हें 'आवाहन' भजन कहते हैं। यह लोक विश्वास है, कि आत्मा के आ जाने का आभास सादगुरु को हो जाता है।

इसके बाद जो गीत गाये जाते हैं, जिनमें आत्मा पूछती है,'कि वह शरीर कहाँ गया, जिसमें मेरा वास था।, जैसे की पूर्व में बताया गया है, कि इन गीतों को ''काया खोजी'' गीत कहते हैं। काया भ्रमण करती है, आत्मा और परमात्मा का स्वाद होता है, शरीर तो नष्ट को गया, किन्तु आत्मा को भी इस शरीर से लगाव हो जाता है, जिसमें वह इतने दिन रही, तो वह काया खोजती है, परब्रह्म के पास नहीं जाती हैं। आत्मा का यह भटकाव बंजारा पन ही कहलाता है, इस अवसर पर इसी भाव के गीत गाये जाते हैं जिन्हें 'बंजारा गीत' कहते हैं। फिर परब्रह्म आत्मा को मनाता हैं, समझाता है कि, यहाँ तेरी गति नहीं है। तो अपने परब्रह्म स्वामी के साथ चल। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते है, उन्हें ''चला-चली'' के गीत कहते हैं। यह सब गीत झांझ मिरघिंग के साथ गाये जाते जाते हैं। रात्रि के अंतिम पहर सादगुरु उस व्यक्ति के सिर पर जलता घट रख देते हैं, वह आगे-आगे को जलाशय की ओर जाता है, उसके पीछे-पीछे सब गाते बजाते जाते हैं। जलाशय में खड़े होकर वह व्यक्ति एक घट अपने मृतक को याद कर जलते दीप सहित जल में डुबकी लगाकर बिना पीछे मुड़े घर की ओर आता है, सभी लोग स्नान कर गीले वस्त्रों से ही घर लौटते है, घट दीपक साथ जल में समा गये, अर्थात उनके घर की आत्मा परब्रह्म में मिल गई।

लोक आस्था लोक विश्वास लोक मान्यताएं लोक परम्पराएं सदैव शास्त्र से श्रेष्ठ मानी जाती है। अन्त में कुछ लोक विश्वास लोक मान्यताओं पर चर्चा करते हैं।

लोक मान्यता है, कि आत्मा दस दिन तक भूखी प्यासी अपनी काया को खोजने के लिए भटकती रहती है, अन्त: अपनी अपनी परम्पराओं के साथ कोई दस दिन तक पीपल को जल चढ़ाता है, ताकि आत्मा जल पी कर तृप्त हो। कोई बिना नमक का मीठा, या पकवान बनाकर पीपल की जड़ में या काग को खिलाते हैं, कि उनकी भूखी आत्मा तुष्ट हो। मृतक को जब अंतिम संस्कार के लिए ले जाते हैं तब भी अपने रीति-रिवाजों के अनुरूप उसे बिदाई देते हैं।

जनजातियों में कई जातियों में यह मान्यता है, कि ''यह शरीर परब्रह्म का वासा था,'' इसलिए यह मंदिर जैसा पवित्र हो गया, अत: वे शरीर को लिटाकर नहीं अपितु ड़ोला बनाकर सजाकर उसमें बैठकर ले जाते हैं। और आनन्द मनाते हैं। कि आत्मा तो बड़भागी है। मृतक को बिदाई के पूर्व स्नान कराकर नये वस्त्र धारणकर उसका शृगांर करना सभी समाज में करते हैं। मृतक के शरीर पर परिवार जन हल्दी के हाथे देते हैं। अर्थात् हे आत्मा तुम्हें हम शीतलता प्रदान करते हैं, इस काया के माध्यम से तुमनें हमारे परिवार में वास किया। कई लोग मृतक के शरीर पर हल्दी, कुमकुम या चंदन का कुछ चिन्ह लगा देते हैं कि यह आत्मा हमारे परिवार में फिर से आयेगी तो हम पहचान लेंगे यही आत्म तथ्य है कि आत्मा अमर हैं। मृत्यु के अवसर पर शोक संतप्त परिवार को धीरज बाँधते हुए यहीं सुना गया हैं, कि यह जीवात्मा जिसकी थी, उसमें समा गई।'' या जीव जिसका था वह ले गया जहाँ से आये वहीं जा रहे हैं।

'जीवात्मा जीवतत्त्व, आत्मातत्त्व' निमाड़ के गीतों और परम्पराओं के माध्यम से दर्शन होता है, कि ''आत्मा परमात्मा एक हैं।''

लेखिका - वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्स्टेन्शन, बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफ़िस त्रिलंगा, भोपाल - 462039
मो.: 09424440377, 09819549984

■

आलेख

लोक संस्कृति में बीजासेन देवी का अनुष्ठान

अरुण कुमार शुक्ल

लोक संस्कृति वैदिक संस्कृति का ही सरलतम व्यवहारिक स्वरुप है। वैदिक कालीन ऋषियों के द्वारा मानव कल्याण के निमित्त जो चिन्तन किया वह संहिताओ में हमारे भारतीय वांग्मय की निधि मानते हुए आज भी सुरक्षित है।

उन्हीं वैदिक चिन्तनों को सामाजिक राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विविध प्रकार से विद्वानों द्वारा व्याख्या की गई है। संस्कृति के तत्वों में साहित्य कला, धर्म, 'राजनीति, अर्थशास्त्र विज्ञान, कृषि आदि को स्थान मिलने पर भी समस्त प्राणियों (भूतों) में व्याप्त एक अन्तर्यामी- परमात्मा को जानने की ललक ने दार्शनिक इष्टिकोणों को जन्म दिया। भारतीय षड़्दर्शन उसी ललक का क्रमश: परिष्कृत होता हुआ चिन्तन ही है। उसे शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन, जिसे वेदांत के रूप में लोक जीवन में जाना गया, उसे भारतीय संस्कृति ने भी शिरोधार्य किया।

लोक संस्कृति में उसी दार्शनिक तत्व चिन्तन को व्यवहारिक रूप में ''ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या'' को अपने मूर्ति पूजा अथवा अन्य साधनाओं के द्वारा साधा है। कण-कण में भगवान हैं (सर्व खल्बमिदं ब्रह्म) इसके परे कुछ भी नहीं । लोक संस्कृति को जीने वाले साधक विद्वानों ने साधना के सोपान बनाते हुए जन मानस को सगुण को आधार देकर उस निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति के जो मार्ग सुझाये है. मूर्तिपूजा उसी का एक सोपान है। यह आगे अद्वैत रूप में मात्र एक सत्ता को स्वीकारता है। पंचदेव पूजा भी अद्वैत चिन्तन का लोक स्वरूप ही है। इसी प्रकार ग्रामीण अंचलों से लेकर शहरों तक बीजसेन पूजा उसी अद्वैत दर्शन के चिन्तन का लोक व्यापी करण है। यह उस अद्वैत तत्व जिसे शैवाद्वैत संवित तत्व रूप में जानते तथा मानते हैं। उसी एक तत्व का क्रियात्मक सृष्टि परक रूप जिससे संसार प्रकट होता यह उसी मूल तत्व का बहिमुखी परावाक तत्व है। इसे ही शक्ति तत्व अथवा पार्वती के रूप में जाना गया है। किन्तु लोक संस्कृति में परावाक को बीजासेन देवी के रूप में पूजा जाता है।

यह पूजन सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान, दर्शन, योग का रहस्य समेटे हुए आगम निगम का सार श्रीविद्यारहस्य है।

इस बीजासेन अपना बीजासनी पूजन का विधान लोक संस्कृति में अनेक परिवारों में परम्परा गत चलता चला आ रहा है। यह पूजन अधिकांशत: रात्रि में ही सम्पन्न होता है। इसलिए सोमवार, बुधवार तथा शुक्रवार के दिन शुभ उत्तम मुहुर्त माने गये है। उस दिन अष्टमी अथवा नवमी (कहीं कहीं चतुर्दशी एवं पूर्णिमाको भी)के साथ निशीत समय विशेष योग सहित उत्कृष्ट पूजा काल माना जाता है। इसमें समस्त परिवार श्रद्धा सहित पूजन की तैयारी करते हैं। पूजन स्थल पर एक पटे पर नया लाल कपड़ा बिछाकर उस पर नौ चौक (मंडल) बना दिये जाते हैं। सामने अधिकांशत: दीवार पर पूजाघर दीवार पर घी (घृत) मिले सिन्दूर से नौ टिपकी बनाई जाती है, इनमें पाँचवी टिपकी के ऊपर एक पुत्तली (बुन्देली शब्द पुतरिया) बनाई जाती है यही बीजासन अथवा बीजासनी देवी हैं। पाटे के चौक पर प्रसाद रूप में हलुआ पूड़ी उन नौ चौकों पर रखी जाती है। उपहार के रूप नौ चूड़िया, नौ, पान, नौलोग नौ इलायची, नौ प्रकार की मेवा, और नौ प्रकार की मिठाईया नौ खूंट (त्रिकोण) के रूप में बीजासेन माई को अर्पित की सौभाग्यवती जाती है। दीपक जलता रहता है और सभी पूजन में माई से मौन रूप में प्रार्थना करते हैं। तथा पूजा करने वाला प्रमुख नौ होम भी करता है। प्रणाम, समर्पण के साथ पूजा अनुष्ठान पूर्ण होता है) परिवार का मुखिया प्रसाद सभी को प्रदान करता है। यह अनुष्ठान साधारणत: एक वर्ष या तीन वर्ष में करने की लोक परम्परा है। प्रसाद ग्रहण करने वाले को भी पूजा करना अनिवार्य हो जाता है। यह महिलाओं को भोजन कराना इसी पूजा का महत्वपूर्ण अंग है। सभी परिवार तथा पूजा में शामिल महिलाएँ (स्त्रियाँ) गले में सोने अथवा चाँदी के एक धातु पर बीजासेन देवी की नौ बिन्दु उत्कीर्ण कराकर यंत्र रूप में अपने गले में धारण करती है। इस प्रकार लोक संस्कृति में इस पूजन को अत्यन्त श्रद्धा के साथ सम्पन्न किया जाता है। इस पूजन में सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्य को सूत्र रूप में पिरोकर लोक में हमने बनाये रखा है। इसके दार्शनिक चिन्तन (अद्वैत) का शास्त्रों में विवेचन इस तरह किया गया है।

वीजासेन देवी की पूजा में ये रहस्य धारण करने वाले चार शब्द प्रयोग हुए है

1. बिन्दु

2. खूंट (त्रिकोण) कूट का तत्भव अत: त्रिकोण

3. चौक (चक्र, चतुरय अथवा मंडल)

4. बीज (बीजासनी) बीजों के उपर बैठने वाली, बिजाधिष्ठिता माता।

''इन चार शब्दों से सम्बन्धित बीजाधिष्टिता माता की गुह्य पूजा रहस्य परिभाषित हो जाता है। ये माता नव बिन्दुमयी, नव कूट मयी, नवचक्रमयी, नवबीजाधिष्ठिता श्रीविद्या का सरततम रूप है। यह उस महा विद्या का लोक स्वरूप है – जिसके बीज ऋग्वेद में हैं। इसे शंकराचार्य ने परा पूजा'' तथा परमा गुह्यविद्या कहा और चारों मठों में इसे प्रतिष्ठित किया। इसे ही वैदिक पृष्ठभूमि में वाक्शक्ति अथवा परावाक कहा है।

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षति एक पदी द्वि पदी साचतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी वभूवषी सहस्त्राक्षरा परमे व्योमन्॥

(ऋ 144)

कहा है– सम्पूर्ण सृष्टि का मूल कारण वाक्शक्ति ही है। शक्ति बीज रूपा गौरी ऋहत् समुद्र तक्षण करती है (सीमित करती है)

पहले वह एक पढ़ी है अर्थात अविभक्त गति वाली है। गति रूपी अक्षरों का भेद नहीं हुआ है अत: अनिरूक्त अमूर्त है। यही परा है। बीजासनी है। एक का दो होता, गति आरंभ होती है। यही पश्यन्ति है। (स्थिति और गति)। इसके बाद चतुष्पदी–यह परा, पश्यन्ती मध्यमा और बैखरी का सूक्ष्म रूप है। यही मध्यमावाक है। अष्टापदी जो अभी तक प्रणाग्नि 'अक्षर' थी वही प्राणाग्नि क्षर रूप में अष्टधा प्रकृति रूप (पंचभूत, मन प्राण, अपान) इस अपरा प्रकृति रूप हो गई। नवपदी– यहाँ सम्वत्सर रूप काल (क्रम) अपरा प्रकृति के साथ जुड़ गया और यही वाक् की बैखरी सृष्टि प्रक्रिया पूर्ण हुई। गौरी अपने मूल रूप में सहस्त्राक्षरा है जो वाक परमात्मा की अभिव्यक्ति के अनन्त अक्षर रूपा है। जो अव्यक्त है। पारमेष्ठ्य समुद्र (ऋत समुद्र) ऋत के सदन में अधिष्ठित रहती है। वह सर्वोच्च स्थान गौरी का अधिष्ठान है।

ऋग्वेद के एक उपनिषद (त्रिपुरोपनिषद) में स्पष्ट रूप से कहा है कि वाक शक्ति ने नव योनि, नव चक्र, को धारण किया है फलस्वरूप नव (नौ) शक्तियाँ के नौ योग है, जिनकी नव (नौ) किरणे और नव (नौ) मुद्रायें हैं।

नवयोनिर्नव चक्राणि दधिरे नवैव योगा नव योगिन्यस्य,
नवीनां चक्रा अधिनाथा स्योना नवभद्रा महीनाम॥

(त्रिपुरोनिषद/2)

आगम शास्त्र की इष्टि में शिव और शक्ति ही सृष्टि का मूल आनंद है। शिव शक्ति का एकीभूत बिन्दु ही सृष्टि का मूल कारण है। यह बिन्दु नव व्युहात्मक है। शिव के भी नौ व्यूह है और शक्ति के नौ व्यूह हैं। शिव और शक्ति समरस होते हैं तब बिन्दु (संवित) स्वरूप को ग्रहण करते हैं। इससे ही सृष्टि का उद्भव होता है। शक्ति नव नादमयी रूप में वर्ण स्वरूप धारण कर प्रकट होती है। नव नादों का रूप है अ, क, च, ट त, प, य. श तथा क्ष। नव नादों से 360 रश्मियां प्रकट होती है। ये ही वर्ण मात्रिकाए नौ वर्गों को विभक्त होकर 36 तथ्यों को व्यक्त करती है । अ वर्ग समस्त विश्व की बीजभूत कला का व्यंजक है। क वर्ग पंच– ''महाभूतों को, च वर्ग पंचतन्मात्राओं को ट वर्ग पंच कर्मेन्द्रियों को'' 'त' वर्ग पंच ज्ञानेंद्रियों को प वर्ग प्रकृति, अंहकार, बुद्धि, मन, एवं पुरुष रूप है। इसी प्रकार य वर्ग शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, एवं शक्ति के प्रतीक बीज हैं। 'क्ष' बिन्दुरूप शिव है। (परब्रह्म) है। सृष्टि की माता पराशक्ति इन्हीं नौ बिन्दुओं से बने नौ चक्रो (मंडल) के ऊपर प्रतिष्ठित रहती है। (ब्रह्म का बहिरक्रियात्मक शक्ति रूप) – इस प्रकार संक्षेप में बीजासेन अथवा बीजासनी देवी की उपासना वास्तव में वेद की पराशक्ति तथा तन्त्र की रहस्यमयी श्री विद्या के मूल रूप की उपासना का सरल लोक अनुष्ठान है। यहाँ शिव शक्ति का सामरस्य ''संवित'' ही मात्र ब्रह्मरूप कहा गया है। वह ही एक मात्र सत्ता है। शक्ति उसी का बहिर्मुखी स्वरूप जो क्रियारूप है वह ही सृष्टि करता है। उसी का दूसरा अंतर्मुखी प्रकाशात्मक एवं ज्ञानात्मक स्वरूप जिसमें समस्त सृष्टि अन्तर्लीन होती है। यह एक तत्व के दो रूप युगपद रूप से सृष्टि को धारण किए हैं। इसके अलावा किसी प्रकार की अन्य कोई भी सत्ता नहीं है।

लोक संस्कृति में यह अद्वैत ऐसा रचा बसा है कि हम इतने गम्भीर दर्शन को सहज रूप में अपनी लोकजीवन में आत्मसात कर लिया है। उस दर्शन की व्याख्या से लोक संस्कृति भले ही परिचित न हो सकी हो लेकिन अपने शास्त्रों पूर्वजों के द्वारा निहित परमपराओं को हम पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा से शिरोधार्य किए हुए हैं।

इस उपासना में ब्रह्म विद्या, सृष्टिविद्या, श्रीविद्या, अथवा परा विद्या का सम्पूर्ण ज्ञान समाया हुआ है। भारतीय मनीषा का सम्पूर्ण चिन्तन मानव जीवन को प्रेय तथा श्रेय दोनों के प्रति संतुलन बनाने के लिए उचित विचार तथा साधनाओं से परिचित कराना रहा है। ये उचित विचार और साधनाएँ ही एक संगठित समाज तथा

सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर पाती हैं। यह अद्वैत उपासना जिसे लोक में बीजासेन देवी की पूजा रूप में जाना जाता है। यह समाज की वर्ण व्यवस्था के चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य तथा शूद्र जो उस विराट पुरुष के अंग रूप माने गए हैं। इस प्रकार चारों वर्णों का महत्व एक ही अंगी के अंगो के समान माना है। किसी भी अंग के प्रति अंगी की समान संवेदना होती है। किसी भी अंग की उपेक्षा अंगी को स्वीकार्य नहीं होती। यह बीजासेन माई की उपासना भी जिसे ब्राह्मण द्वारा तथा शूद्र द्वारा समान प्रक्रिया तथा समान सामग्री के साथ परिवार-कुल का वरिष्ठ जन ही नौ बिंदुओं (बीजों) की नौ नौ खूटों पर नौ नौ प्रसाद एवं उपहार सामग्री समर्पित कर मौन तथा ध्यान स्तर पर देवी (माई) से प्रार्थना करता है।

यहाँ कोई मंत्र, स्तोत्र, भजन की आवश्यकता नहीं। अर्थात जो अनपढ़ अथवा दलित है वह और पंडित ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य भी उसी प्रकार घर का वरिष्ठ जन प्रसाद एवं उपहार सामग्री समर्पित करके मौन तथा ध्यान स्तर पर प्रार्थना करते हैं। इसमें इष्ट तथा भक्त के मध्य पूजा कराने वाला तीसरा नहीं होता। जो उपासना करने वाला है वह भी माता (बीजासेन) से प्रार्थना दवारा इह लौकिक सुख आनन्द के साथ उस उम्र के उत्तरार्ध पर माई के श्रीचरणों में शरण अथवा मोक्ष की प्रार्थना करता है।

इस प्रकार आगम-निगम तथा सम्पूर्ण शास्त्रों में सर्वोच्च साधना, उपासना, जान का इसी बीजासेन माता की उपासना में सार निहित है। इस पूजन में समाज को एक सूत्र में जोड़कर उन्हें आत्मबल आत्मज्ञान के साथ ब्रह्मसत्ता के अद्वैत रूप दर्शव तत्व से सूत्र रूप में साक्षात्कार कराना उद्देश्य रहा है। तभी तो आज हमारे प्रत्येक सामाजिक घटक में यह पूजा उपासना निरन्तर श्रद्धा सहित परम्परा रूप से होती आ रही है।

सशक्त राष्ट्र के निर्माण में समाज को एक सूत्र में बाँधने वाली इसी बीजासन माता की पूजा को मेरा हार्दिक मौन प्रणाम।

संपर्क- 57, रिवेन्यू नगर इंदौर
संपर्क: 9425383111

कला समय

अब वेबसाइट पर
देश की सर्व श्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका
'कला समय' अब वेबसाइट पर पाठकों के लिए सुलभ है।
सुधी पाठक

www.kalasamaymagazine.com

के माध्यम से
इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

सुखद सूचना !!

Page Visit counters keep track of how often a website is accessed, and usually display the number of page visits at the bottom of the homepage. We have successfully crossed 100000 page visits.

पेज विज़िट काउंटर इस बात पर नज़र रखते हैं कि किसी वेबसाइट को कितनी बार एक्सेस किया गया है, और आमतौर पर होमपेज के नीचे पेज विज़िट की संख्या प्रदर्शित करते हैं। हमने सफलतापूर्वक 100000 पेज विजिट का आंकड़ा पार कर लिया है।

आलेख

लोक संस्कृति में अद्वैत के रेखा चित्र

अनीता सक्सेना

जब हम लोक संस्कृति की बात करते हैं तो हमारा ध्यान फ़ौरन उन गाँवों और कस्बों की तरफ जाता है जहाँ भारत की आत्मा बसती है। सोहनलाल द्विवेदी जी की पंक्तियाँ जेहन में गूंजने लगती हैं 'है अपना हिंदुस्तान कहाँ, वो बसा हमारे गाँवों में'। सच में जहाँ आज भी लोक जिंदा है, लोकसंस्कृति जीवित है। मनुष्य का जन्म प्रकृति से हुआ, उसने शुरू से ही प्रकृति को देखा, वह उसके जीवन में घुलमिल गई। इसलिए प्रकृति में आस्था है मनुष्य की। वह जानता है कि आज जो जीवन है वह प्रकृति की देन ही है। वह पर्यावरण से प्रभावित होकर जहाँ जल मिला, वही बस गया। उसने अपनी परम्पराएँ बनाएँ, रीति-रिवाज बनाये इसलिए गाँवों में आज भी परम्पराएँ, संस्कृति, आस्था और विश्वास जीवित हैं। उनकी परम्पराएँ इतनी सजीव और और प्रभावशाली हैं और उन्हें व्यक्त करने का माध्यम इतना सहज-सरल है कि ये अनगढ़ रेखाएं आज भी देश की संस्कृतिक विरासत को संभाले हुए हैं। शायद इसलिए भारत को परम्पराओं का देश भी कहा जाता है।

यहाँ धर्म और प्रकृति के प्रति आस्था है लोगों की। ये आस्था जीवन को हमेशा एक उत्सव के रूप में देखती है, लोग हर त्यौहार को लोकगीतों, लोककलाओं और लोकनृत्यों में बांधकर एक उत्सव के रूप में मनाते हैं। लोगों को लोककलाओं में ही देवकृपा के अद्वैत दर्शन होते हैं। शादी-व्याह में आज भी पुरखों को आमंत्रण दिया जाता है। यह अद्वैत वेदांत सबको जोड़ने का काम करता है। इसकी सबसे बड़ी प्रासंगिकता है सबको जोड़ना और सब में एक सूत्र को देखना। सबको एक विषय की ओर उन्मुख करना जिससे सब परम सुख की ओर अग्रसर हों।

हम सभी जानते हैं कि भारत की संस्कृति अनेक जनजातियों, जातियों और ग्रामीण परिवेश में फली और फूली हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी ये कलाएँ और परम्पराएँ हस्तांतरित होती चली आ रही हैं और ज्ञान की इन परम्पराओं को वो पीढ़ी संभाले हुई है जिसने किसी विद्यालय की शिक्षा भले ही प्राप्त नहीं की है लेकिन उनका ज्ञान असीमित है। लोकोक्तियों, मुहावरों, किवदंतियों और लोककथाओं के माध्यम से वह अनेक जानकारियाँ और ज्ञान को नई पीढ़ी को प्रदान करते चलते हैं। लोक की हर बात सरल होती है क्यूँकि वह नियमों में बंधी नहीं होती, लोकगीत, लोकचित्र, लोककथाएं लोकमानस के गढ़े हुए ही होते हैं। गीत छंद माला से परे होते हैं पर गेय होते हैं, दीवार या जमीन पर बनाया जाने वाला चित्र कुछ बिन्दुओं और रेखाओं के तालमेल से बनता है और बहुत खूबसूरत होता है। इसी प्रकार लोक कथाएँ हैं जिनके अन्दर लोक का जनजीवन ही समाया हुआ है और समाई हुई है प्रकृति।

प्रकृति जिन पाँच तत्वों से बनी है वो सब हमारे पूज्य हैं। धरती की मिट्टी, पानी, वायु, अग्नि और आकाश सबकी लोग पूजा करते हैं, सबसे डरते हैं और उन्हें चित्रों में उकेरते हैं। यही लोक संस्कृति है । भारतीय कला धर्म से प्रेरित है, दैनिक जीवन के क्रिया कलापों के साथ पूजा-पाठ, उत्सव,तीज-त्यौहार, शादी विवाह का लोककलाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये चित्र दीवार, जमीन पर प्राकृतिक रंगों से उकेरे जाते हैं। हर राज्य की अपनी कला है, मैं मालवा अंचल में दीवारों और जमीन पर बनाये जाने वाले चित्रों और माँडना लोककला पर कई वर्षों से कार्य कर रही हूँ। कुछ चित्र यहाँ प्रेषित भी कर रही हूँ । कुछ दीवारों पर बने वाले चित्र हैं और कुछ ज़मीन के मांडने। माँडणा की सबसे बड़ी विशेषता है कि इन्हें बनाने में किसी स्केल, रबर या ज्यामितीय उपकरण की जरूरत नहीं पड़ती। सिर्फ कुछ बिंदुओं और रेखाओं को जोड़ने-घटाने से ये चित्र बनते जाते हैं। इन्हें बनाते समय लगता है मानों जैसे प्रकृति और मानव एक हो गए हैं। प्रकृति से मानव जुड़ता है, मानव से मानव का जुड़ाव होता है और लोक से लोक मिल एक समाज बन जाता है। वर्तमान में,प्रकृति से मानव का संवाद और मनुष्य का आपस में संवाद होना बहुत जरुरी है। आभासीय दुनिया से दूर होकर प्रकृति के सानिध्य में आना, लोक से जुड़ना और लोक के साथ मिलकर जीना यही अद्वैत वेदांत है जिसकी आज परम आवश्यकता है।

संपर्क-
बी- 143
न्यू मीनाल रेसीडेंसी,भोपाल- 462023
संपर्क: 9424402456

अनीता सक्सेना के अद्वैत रेखा चित्र वीथी

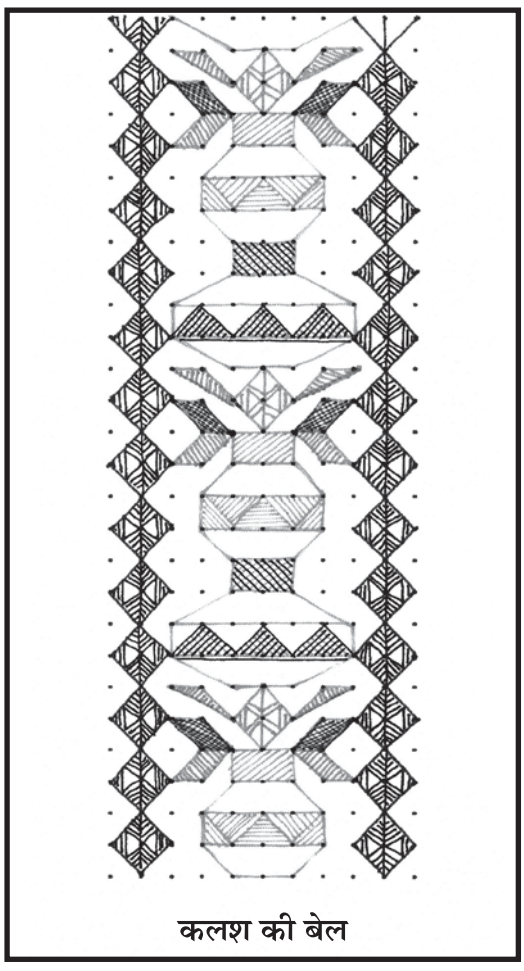

कलश की बेल

कृष्ण लीला

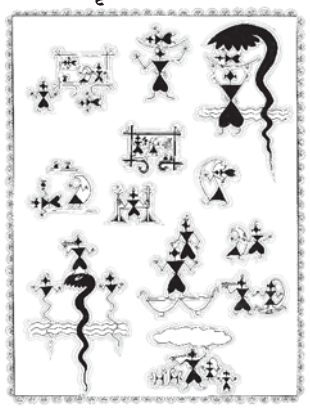

नाग पंचमी चित्र

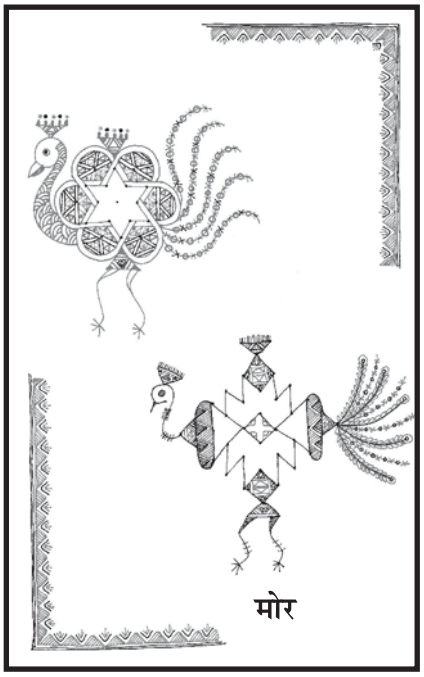

मोर

वट पूजा

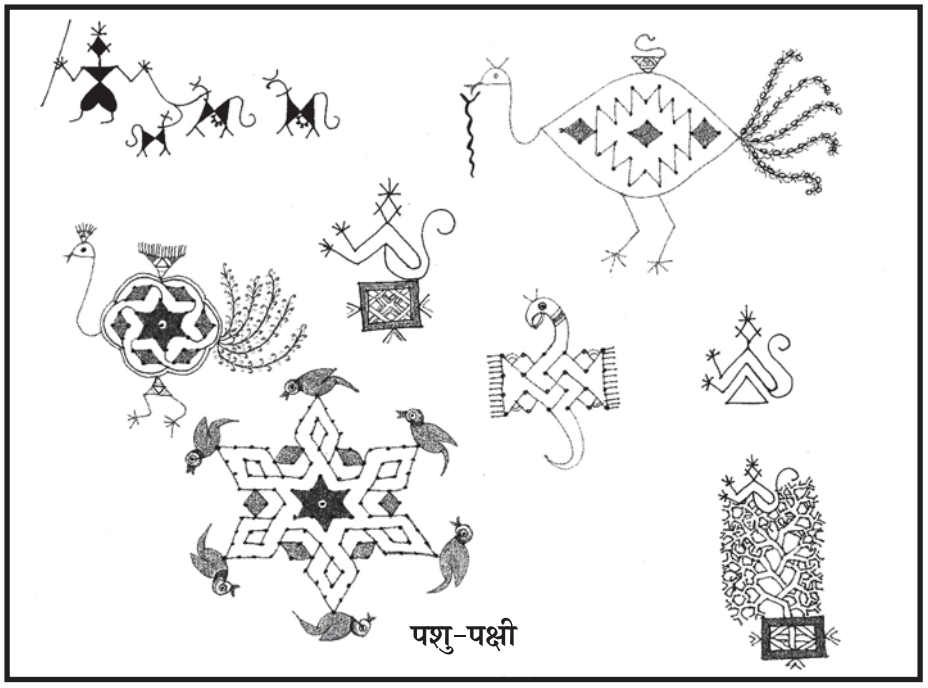

पशु-पक्षी

स्वस्तिक मांडना

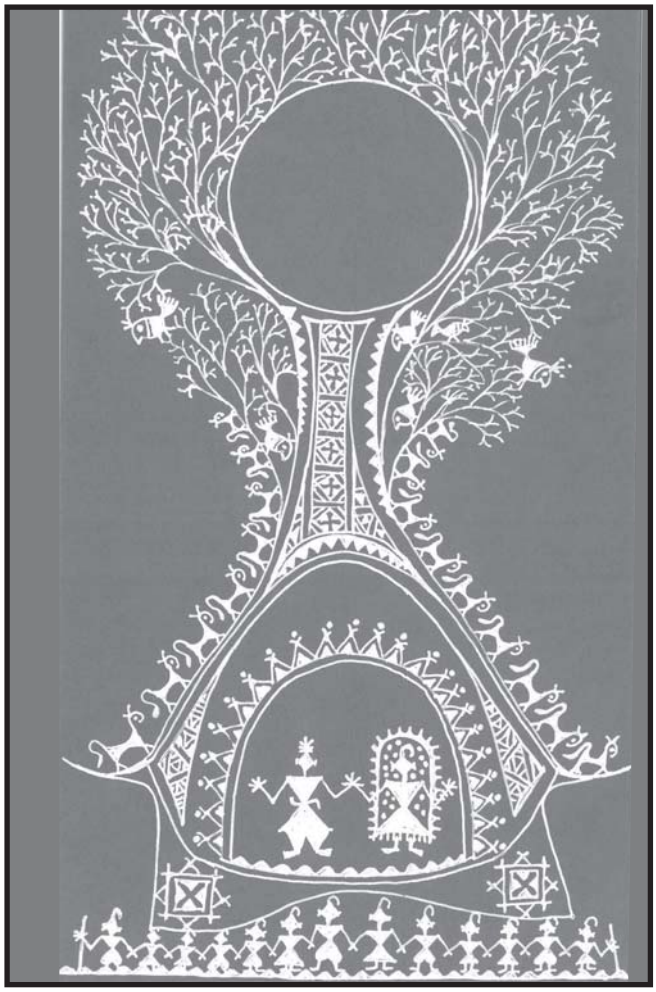

पेड़ और दाम्पत्य

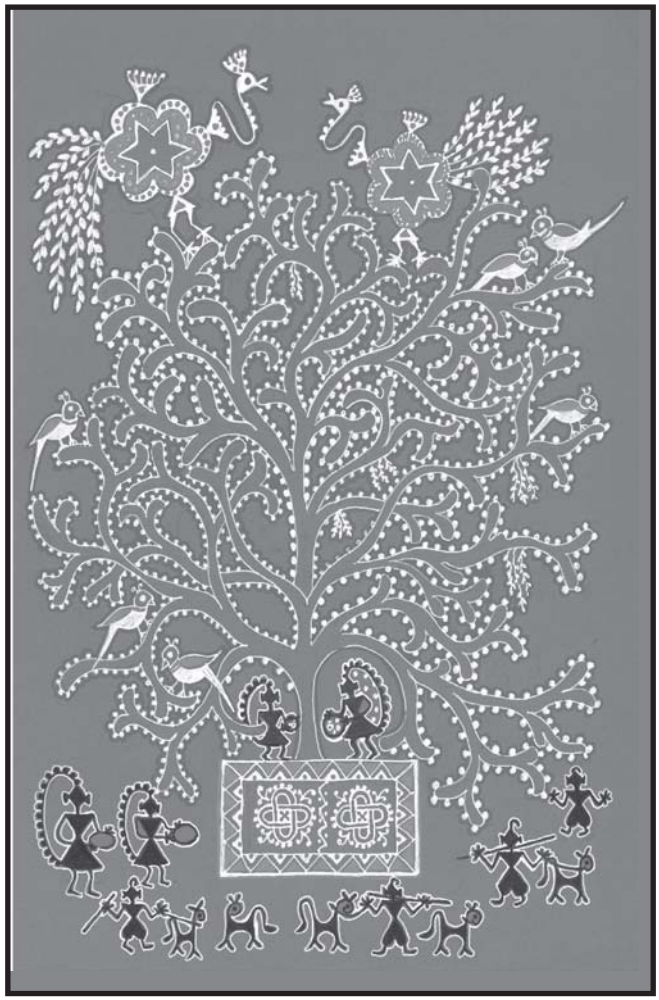

बड़ पूजा

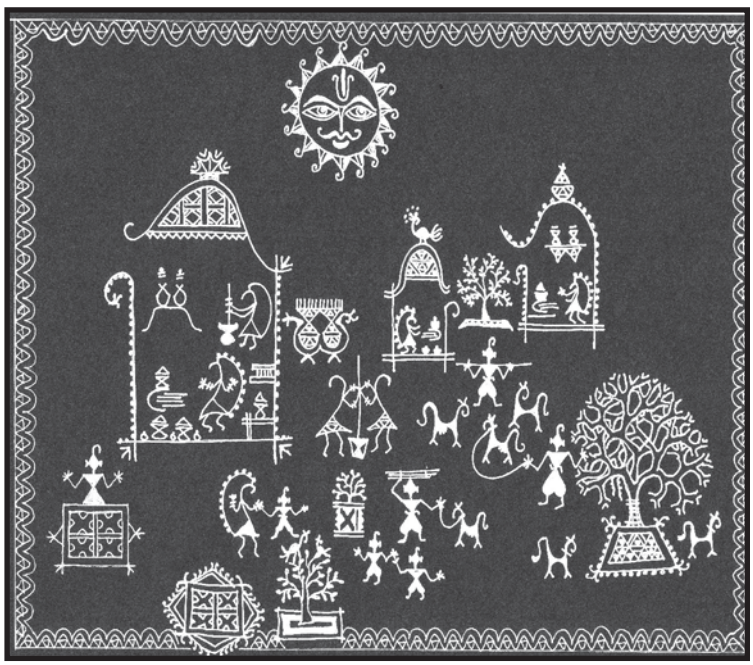

दैनिक जीवन

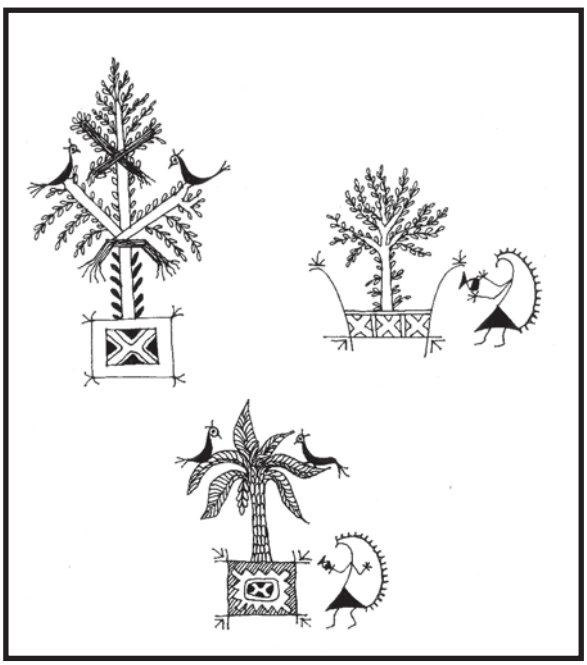

वृक्ष पूजा

आयोजन

ओंकारेश्वर मांधाता पर्वत पर ब्रह्मोत्सव

एकात्मता की मूर्ति का अनावरण एवं अद्वैत लोक का शिलान्यास

आदि गुरु शंकराचार्य अपने सपनों का एक ऐसा भारत देखना चाहते थे, जिसमें द्वैत की भावना न हो और सभी अद्वैत से जुड़ जायें उनका हर अगला चरण भारत को अद्वैत तक पहुँचाता था। आदि शंकर ने जो कुछ भी लिखा और बोला, उससे ज्ञात होता है कि वे कैसे युगीन थे और कैसे युगान्तकारी! वे सही मायने में जगद्गुरु थे। आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग के द्वारा 21 सितम्बर 2023 को प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने ओंकारेश्वर की पुण्यधरा के मांधता पर्वत पर आदि गुरु शंकराचार्य की 108 फीट ऊँची बहुधातु प्रतिमा का अनावरण किया तथा ''अद्वैत लोक'' का शिलान्यास भी संतों की उपस्थिति में परम्परागत शैली में ब्रह्मोत्सव सम्पन्न हुआ। हम कह सकते हैं कि आज प्रदेश के मुखिया का स्वप्न साकार हुआ। दुनिया

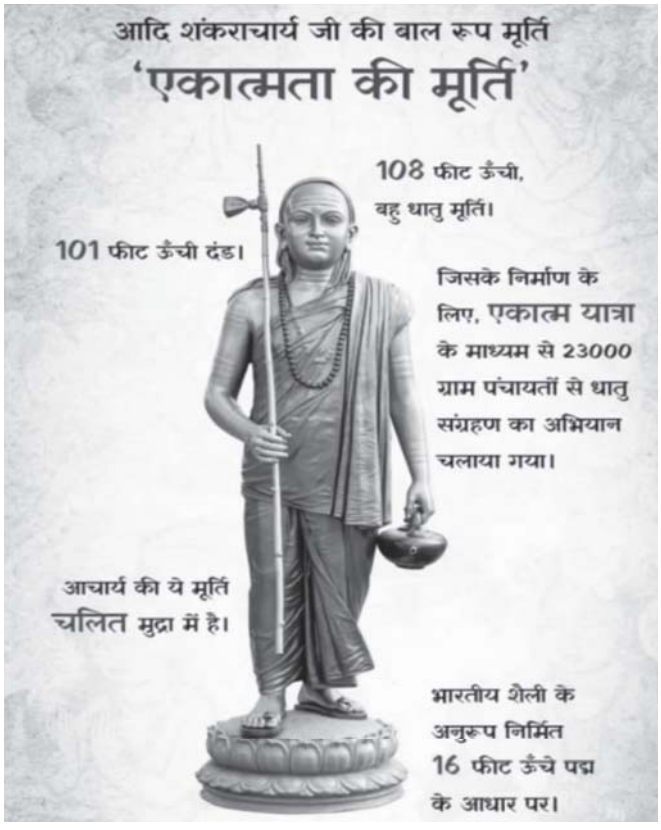

की अपने तरह की अनूठी एकमात्र चलायमान स्थिति में यह बालरूप् की दिव्य प्रतिमा ओंकारेश्वर की धर्मधरा से देश दुनिया को अद्वैत से जोड़ने की दिशा में सार्थक प्रयास मध्य प्रदेश शासन के मुख्यमंत्री श्री चौहान जी का है।

मध्य प्रदेश की एकात्म यात्रा

9 फरवरी, 2017– आदि शंकराचार्य की 108 फीट ऊँची प्रतिमा अद्वैत लोक (शंकर संग्रहालय और अंतर्राष्ट्रीय अद्वैत संस्थान) के निर्माण की घोषणा हुई।

1 मई, 2017– मध्यप्रदेश के 51 जिलों में वैशाख शुक्ल पंचमी को शंकर जयंती का उत्सव मनाया गया।

19 दिसम्बर, 2017 से 22 जनवरी, 2018– एकात्म यात्रा के माध्यम से एकात्मता की मूर्ति के निर्माण हेतु प्रदेश की 23 हजार ग्राम पंचायतों से धातु संग्रहण किया गया।

22 जनवरी, 2018– एकात्म पर्व का आयोजन किया गया।

27 जनवरी, 2018– आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास की स्थापना की गई।

8 से 10 दिसम्बर, 2019– अंतर्राष्ट्रीय अद्वैत उत्सव का आयोजन।

21 अक्टूबर, 2022– अद्वैत युवा जागरण शिविर का प्रथम दीक्षांत समारोह हुआ।

21 सितम्बर 2023- शंकरावतरणम्- एकात्मता की मूर्ति का अनावरण और अद्वैत लोक- (संग्रहालय) का शिलान्यास ब्रह्मोत्सव संतों, सन्यासियों, मनीषियों एवं विशिष्टजनों के समागम में सम्पन्न हुआ।

ओंकारेश्वर के पावन क्षेत्र में 'एकात्म धाम' के निमित्त एकात्मता की मूर्ति के अनावरण एवं अद्वैत लोक के शिलान्यास के अवसर पर सम्पूर्ण देश से पधारे साधु, सन्यासी, मनीषी, गणमान्य अतिथि एवं प्रदेश वासियों का श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री जी ने हृदय से अनन्त आभार.... प्रकट किया।

आदिगुरु शंकराचार्य ने तीन बार भारत की परिक्रमा की तथा चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की, केरल स्थित कालडी ग्राम से 8 वर्ष का बालक आचार्य शंकर ओंकारेश्वर में गुरु और ज्ञान के लिए आचार्य गोविन्द भगवत्पाद से मिले अंतिम दर्शन (समाधि स्थल) केदारनाथ में है।

आदि गुरु की प्रतिमा शिल्प विशेषता-

आदि गुरु शंकराचार्य की यह प्रतिमा एकात्मता की मूर्ति (स्टैच्यू ऑफ वननेस) 12 वर्ष के किशोर शंकर की 108 फीट ऊँची बहुधातु प्रतिमा है। जिसमें 16 फीट ऊँचे पत्थर से बना कमल का आकार है, 75 फीट ऊँचा पेडिस्टल का निर्माण है। वहीं प्रतिमा में 45 फीट ऊँचा शंकर स्तंभ पत्थर पर उकेरे गए आचार्य शंकर की जीवन यात्रा को दर्शाता है। इस मूर्ति के निर्माण में 250 टन से 31 जी एल ग्रेड के स्टेनलेस स्टील का उपयोग हुआ है। साथ ही 100 टन मिश्र धातु कांस्य में 88 टन ताँबा, 4 टन जस्ता और 8 टन टिन का मिश्रण है। इस प्रतिमा में कॉन्क्रीट के पेडिस्टल को 500 वर्षों का जीवन दर्शाने के उद्देश्य से निर्मित किया गया है। इस मूर्ति में 12 वर्षीय किशोर आचार्य शंकर की भाव-भंगिमाएँ जीवंत रूप् में दिखाई पड़ेगी, जो जन-मानस में एकात्म भाव का संचार कर जीवन को सकारात्मक ऊर्जा से भर देगी। ये अनुपम केंद्र विश्व के नक्शे पर भी अमिट हस्ताक्षर की तरह दर्ज होगा। 'एकात्म धाम' (अद्वैत लोक) में प्रशिक्षण एवं सूचना केन्द्र अभय घाट, सन्यास और गुफा मंदिर सहित 35 हजार पेड़ों का वन विहार होगा। अन्नपूर्णा मंदिर, पंचायत मंदिर के साथ ओम स्तंभ कला प्रदर्शनी जैसी अद्भुत रचनाओं का विस्तार किया जाएगा। एक संग्रहालय में 3डी होलोग्राम प्रोजेक्शन गैलरी, कलाकृतियाँ, स्क्रीन थियटर और अद्वैत नर्मदा विहार नाम से वर्चुअल नाम की सवारी होगी। इसमें लोग आचार्य शंकर की महान शिक्षाओं का ऑडियो-विजुअल यात्रा के जरिए आनंद ले सकेंगे। आचार्य शंकर के ओंकारेश्वर से ही अखण्ड भारत में वेदांत के लोकव्यापीकरण के लिए प्रस्थान किया यही वजह है कि आचार्य शंकर की यह अद्भुत दिव्य प्रतिमा मांधाता पर्वत (ओंकारेश्वर पर्वत) से गुरु आचार्य गोविन्द भगवताचार्य की अनुमति से ही दाया पैर चलायमान मुद्रा में प्रतिमा स्थित है।

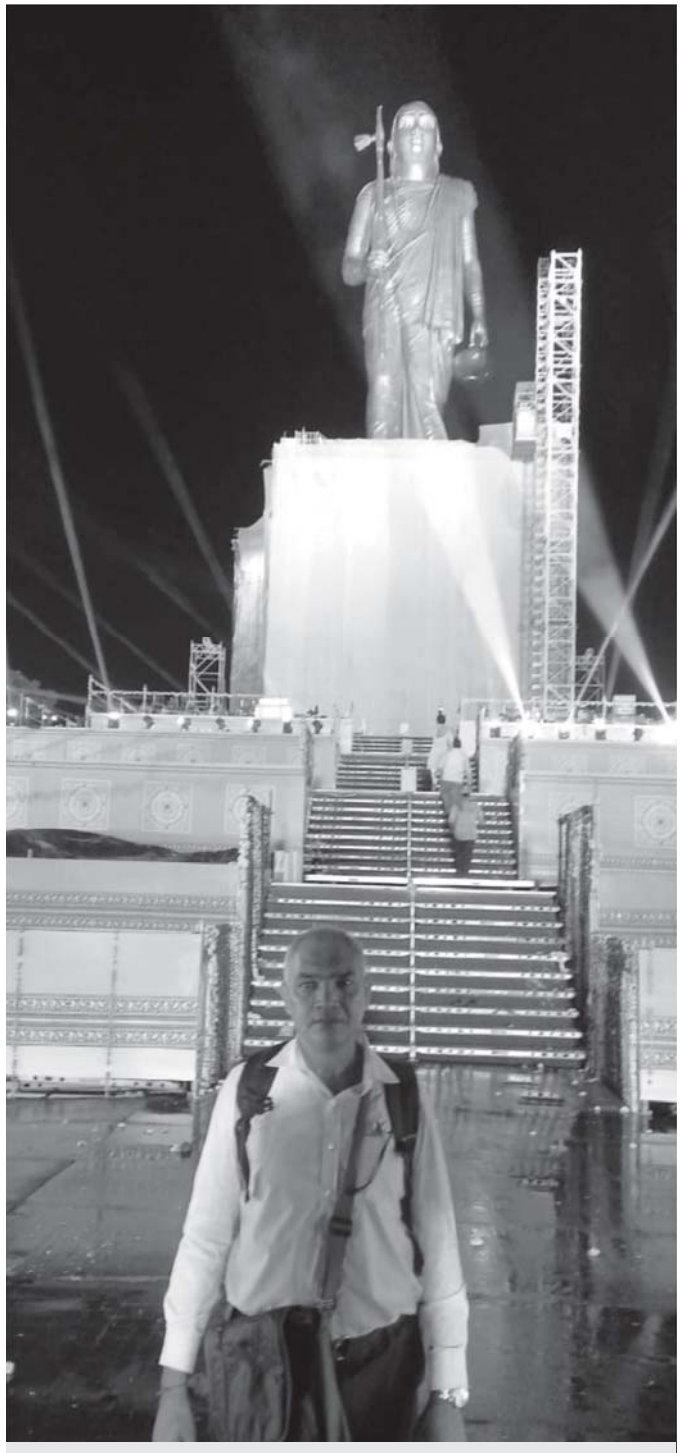

ओंकारेश्वर में आदि शंकाराचार्य प्रतिमा के अनावरण के अवसर पर कला समय पत्रिका के संपादक भँवरलाल श्रीवास

एकात्मधाम वीथिका में आवरण एवं शिलान्यास की प्रमुख झलकियाँ दृष्टव्य हैं-

एकात्म धाम ओंकारेश्वर की छाया वीथिका

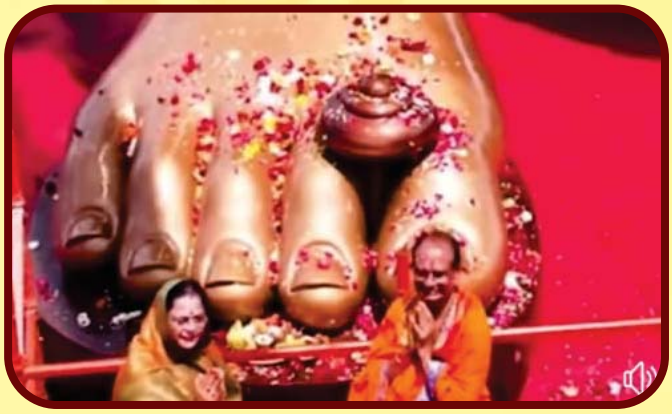

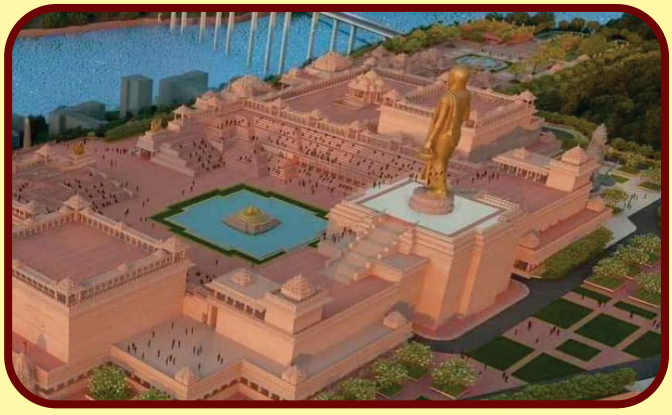

एकात्म धाम ओंकारेश्वर की छाया वीथिका

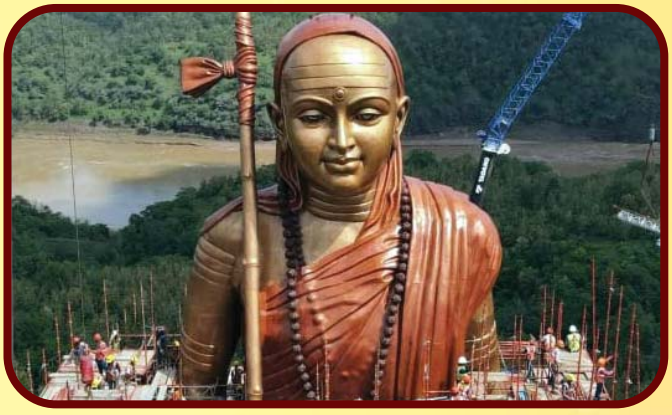

एकात्म धाम ओंकारेश्वर की छाया वीथिका

एकात्म धाम ओंकारेश्वर की छाया वीथिका

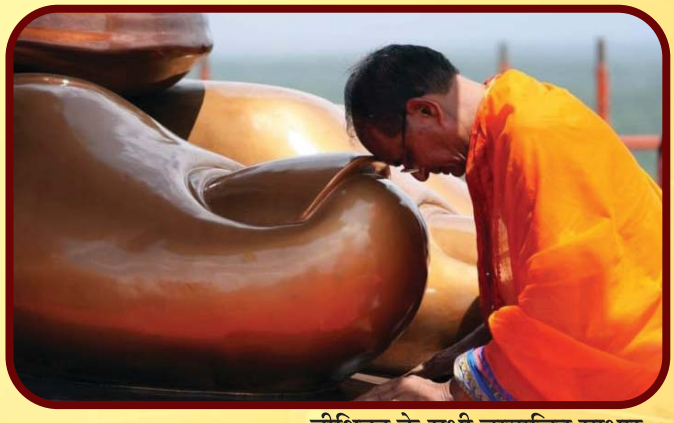

वीथिका के सभी छायाचित्र साभार

आलेख

ब्रज लोक-संस्कृति में अद्वैत

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

भारतवर्ष प्रारंभ से ही एक धर्मप्राण देश रहा है। सत्य की धुरी पर टिकी इसकी सनातन संस्कृति सदा-सर्वदा विश्व-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत रही है। उसकी यह सनातन भावना आज भी यथावत् है और सदैव रहेगी; क्योंकि सत्य कभी मरता नहीं है। सत्य की धुरी पर टिकी सनातन संस्कृति को कुछ समय के लिए क्षति तो पहुंचाई जा सकती है किंतु उसे समूल नष्ट कभी भी नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि इसकी संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने के कुत्सित प्रयास सहस्त्रों वर्षों से विदेशी आक्रांताओं और विधर्मियों द्वारा होते रहे हैं। अनेकानेक बार उसे क्षति भी पहुंचाई गई किंतु वे उसे समूल नष्ट नहीं कर सके। कारण, जो सत्य है, वही चिर स्थिर रहता है। इसीलिए इसे सनातन कहा गया है अर्थात् जिसका न आदि हो और न अंत। असत्य का आवरण तो एक-न-एक दिन उघड़कर सबके सामने आ ही जाता है। फिर वह चाहे किसी व्यक्ति का हो अथवा किसी राष्ट्र का। उसके उघड़े बिना निर्वाह ही नहीं होता -

''उघरहिं अंत न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू।।''

फिर भला भारत की अस्मिता के साथ कोई लाख खिलवाड़ क्यों न कर ले, उसके अस्तित्व को मिटा नहीं सकता।

भारतवर्ष की इस अति पुण्य-भूमि में भी ब्रज-क्षेत्र का तो कहना ही क्या! इसका तो कण-कण षोडश कलावतार आनंदकंद भगवान् श्रीकृष्ण की आविर्भाव स्थली और क्रीड़ा-भूमि होने के कारण और उनकी परम् आराध्या श्री राधा रानी एवं उनकी सखियों के साथ उनके नित्य-रास और महारास की भूमि होने के कारण सदैव ही रसाप्लावित रहता है। यहां की संस्कृति ने न केवल संपूर्ण भारतवर्ष को वरन् समस्त विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया है। यह तो रस की भूमि है। प्रेम की भूमि है। तीन लोक से न्यारी इस ब्रज-भूमि की रज में लोट लगाकर तो मुक्ति भी मुक्त हो जाती है। यथा -

''ब्रज रज उड़ि मस्तक लगै,
मुक्ति मुक्त ह्वै जाइ।।''

ब्रज-संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी पैठ कर चुकी हैं कि यहां के संगीत, काव्य-साहित्य, चित्र, मूर्ति और स्थापत्य जैसी ललित कलाओं सहित अन्य भी विविध कलाओं ने न केवल भारतवर्ष वरन् सम्पूर्ण विश्व को अपनी ओर आकृष्ट कर रखा है। ब्रज-संस्कृति से प्रेरित हो असंख्य विदेशी धर्मार्थियों और शोधार्थियों के अनवरत ब्रज में आगमन को देखकर कोई भी सहज ही इस बात की पुष्टि कर सकता है।

दरअसल ब्रज-क्षेत्र में भारत और विश्व के कोने-कोने से संतों, धर्माचार्यों, विविध सम्प्रदायाचार्यों, कलाकारों, पुरातत्त्वविदों, इतिहासकारों, भू-वैज्ञानिकों और विद्वानों का आगमन केवल इस क्षेत्र की महत्ता से परिचित होकर ही हुआ है। अनेकानेक विद्वानों ने तो यहां दीर्घावधि तक निवास कर यहां की संस्कृति का न केवल अध्ययन किया है बल्कि वे भौतिक अथवा आध्यात्मिक रूप से ब्रज के ही होकर रह गए। इन बाहरी लोगों को यहां इतना अपनापन मिला कि यहां के लोगों ने भी उनकी भाषा, बोली, संस्कृति, कला आदि को अपने अंक में समेट लिया। उदाहरण के तौर पर गुजराती समाज भगवान श्री कृष्ण और उनकी पटरानी श्री यमुना जी का परम् भक्त होता है। अत: वर्ष में एकाध बार तो हर गुजराती ब्रज में आ ही जाता है। यहां के चतुर्वेदी समाज के लोग उनके पंडे होते हैं। मथुरा के किसी भी चतुर्वेदी को आप गुजराती भाषा को मातृ-भाषा की तरह बोलते और पढ़ते हुए आसानी से देख सकते हैं। यहां की संस्कृति की यही अद्भुत विशेषता है कि उसमें किसी के प्रति भी कोई परायेपन का भाव कभी नहीं रहा। सबको साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति है उसकी। जैसे ब्रज के जन-जन के प्राणाधार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परमावतार होते हुए भी हर सत्कार्य का श्रेय सभी ब्रजवासियों को दे देते थे और उनको इस बात का आभास भी नहीं होने देते थे कि वे स्वयं ही सब लीला कर रहे हैं; ठीक वैसे ही ब्रजवासी भी बाहर से पधारने वाले हर व्यक्ति की सहायता हेतु सदा तत्पर रहते हैं। कोई उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करे, ऐसा वे सोचते

भी नहीं। तो ऐसी है ब्रज-संस्कृति या कृष्ण-संस्कृति।

यदि गंभीरतापूर्वक सही-सही आंकलन किया जाए तो अद्वैत की जैसी भावना ब्रज की लोक-संस्कृति में परिलक्षित होती है, उसका अन्यत्र मिलना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

जहां तक अद्वैत भावना की बात है, उसका प्रतिपादन तो सरल है किंतु उसकी स्थापना उतनी ही कठिन। आदि शंकराचार्य ने अनेक प्रमाणों द्वारा अद्वैत का प्रतिपादन किया। हमारे उपनिषदों का तात्पर्य ही अद्वैत की स्थापना करना है। अद्वैत एक तत्व है। उपनिषदों का ज्ञान कर मनुष्य अपने वास्तविक रूप को पहचान सकता है। लोक में ब्रह्म, जीव, जगत, तत्व में भी मृग-मरीचिका का भ्रम होना स्वाभाविक है। इस भ्रम-जाल से मनुष्य को निकालना ही अद्वैत दर्शन का कार्य है। अद्वैत का निरूपण तो शंकराचार्य से पूर्व भी था किंतु शंकराचार्य ने विभिन्न द्वैतों में भी अद्वैत के मार्ग को खोज निकाला। द्वैत की स्थिति दुविधा उत्पन्न करती है जबकि अद्वैत की स्थिति में आते ही हमारे अंदर के समस्त भय दूर हो जाते हैं। हम स्वयं ही ब्रह्म स्वरूपमय हो जाते हैं।

आदि शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना कर अद्वैत दर्शन को स्थापित किया। विविध संप्रदायों का कार्य अपनी-अपनी पूजा-पद्धति आदि के अनुसार व्यवहार करने का है। इन सबके मध्य टकराव की स्थितियां भी बनती रहती हैं किंतु आश्चर्य की बात यह है कि उनके विभिन्न देवतागण पारस्परिक प्रेम के बंधन में ही बंधे दिखाई देते हैं। हर कोई देवता किसी दूसरे को पूजता दिखता है। शंकर की पूजा राम करते हैं तो राम शंकर की पूजा करते दिखाई देते हैं। एक सूत्र में सबको पिरोने का भाव ही अद्वैत भाव है। एक माला में एक सौ आठ दाने होते हैं लेकिन सभी एक सूत्र में बंधे होने के कारण माला एक ही कहलाती है। वास्तव में देखा जाए तो शंकराचार्य भारत के अतीत ही नहीं, भविष्य भी हैं।

भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक में रची-बसी है। इसकी विशेषता प्रकृति के हर उपादान में ईश्वर का दर्शन करने की है, जबकि पाश्चात्य संस्कृति में लोक को तिरस्कृत भाव से देखा जाता है। प्रकृति की हर वस्तु -जीव-जंतु, पेड़-पौधे आदि- को भी व्यक्तिशीलता प्रदान करना यहां की संस्कृति की अनूठी विशेषता है। हमारे आदिवासी और जन-जातीय समाज ने लोक में अद्वैत को अध्ययन से नहीं, अनुभव से स्थापित किया। भारत में कहीं की भी लोक-संस्कृति को देख लें, अद्वैत दर्शन लोक-जीवन की चेतना के केंद्र में बैठा मिलेगा। आम अनपढ़ और अनगढ़ इंसान अद्वैत को जानता तक नहीं है, लेकिन जीता है।

वेद, ज्ञान के सर्वोत्तम स्रोत हैं, किंतु समझने में कठिन होने के कारण ही हमारे ऋषियों ने वेदों के ज्ञान को रसमय बनाते हुए रामायण और महाभारत आदि ग्रंथों की रचना की और अत्यंत ही सरल और सहज माध्यम से गूढ़ ज्ञान को घर-घर पहुंचा दिया।

लोक-गीतों को यदि मैं लोक-संस्कृति का दर्पण कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोक-गीत मानव (विशेषकर नारी) कंठ से सहज नि:सृत वे हृदयोद्गार होते हैं जिनमें सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, प्यार-रार, तकरार और मनुहार, रूठना और मचलना तथा अंत में मान जाने जैसी सभी क्रियाएं सहज ही देखने को मिल जाती हैं। लोक गीतों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के षोडश संस्कारों का संपूर्ण कोश छिपा हुआ है। इन गीतों में धर्म, न्याय, दर्शन, अध्यात्म, कृषि-कर्म, उत्सव और त्यौहार, खेत-खलिहान, ऋतु संबंधी, विविध रीति-रिवाजों आदि की संपूर्ण जानकारी सहज ही उपलब्ध हो जाती है। ऐसा विचित्र है लोक गीतों का संसार।

वैश्विक एकीकरण के जैसे तत्व इन गीतों में मिलते हैं, वैसे तो नागर-साहित्य में भी देखने को नहीं मिल सकते। अद्वैत भाव की पराकाष्ठा तो देखिए कि यहां मनुष्यों द्वारा ईश्वर या देवी-देवताओं और मनुष्यों को ही नहीं पूजा जाता अपितु त्रिचर (जलचर, थलचर, नभचर) प्राणियों सहित वृक्षों, कुओं, गंगा-यमुनादि नदियों और घूरे तक की पूजा की जाती है। ब्रज लोक के देवी-देवताओं के नाम भी इतने विचित्र और अटपटे हैं।

कि आज की पीढ़ी तो इनसे कतई अनभिज्ञ है।

अऊत-पिरेत, बूढ़े बाबू, जखैया, विरमदेव, नगरसेन, सीयल मैया, मनसा मैया, भै-मैया, खेरे वाली देवी मैया आदि ऐसे नाम हैं जिनसे आज की पीढ़ी तो कतई अनभिज्ञ है। कहने का आशय इतना ही है कि सभी प्राणियों में ईश्वर का वास मानने की भावना निहित है ब्रज के इन लोक गीतों में। अपने और पराए के भेद की भावना से दूर रहकर नि:स्पृह भाव से सबको सम्मान देना, सबकी समय-समय पर पूजा आदि कर सबका मान करना ही यहां की संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। यह अद्वैत नहीं तो और क्या है?

- लेखक/संपादक/संगीतज्ञ/कवि हैं।
डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं शोध-संस्थान
'संगीत-सदन', 94, महाविद्या कॉलोनी, द्वितीय चरण,
मथुरा-281 003 (उ.प्र.) मो. 98972 47880

■

आलेख

वेदान्त का अद्वैत और उसका व्यावहारिक स्वरूप

किरण आर्या

द्विधा इतं द्वीतम्, तस्य भाव: द्वैतम्, न द्वैतम् अद्वैतम्। द्विधाभाव को न प्राप्त होना, अर्थात् एक हो जाना ही अद्वैत है। अलौकिक दृष्टि से वह एकत्वभाव आत्मा परमात्मा का एक हो जाना है तथा लौकिक दृष्टि से सबमें एकत्व का दर्शन करना , किसी को अपने से पृथक् न समझना, सबके प्रति समभाव समदृष्टि रखना ही अद्वैत है।

भारतीय परम्परा में आध्यात्मिक जीवन का बहुत महत्त्व रहा है। भारत के ऋषि मुनि आचार्य सद्गृहस्थ सदा इस दिशा में निष्ठावान् रहे हैं। आध्यात्मिक चिन्तन में साहित्य के नाम पर उपनिषदों के अनन्तर दर्शन का ही स्थान है। दर्शनों में अद्वैतभाव को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करने वाला दर्शन वेदान्त है। यह भारतीय दर्शन के मन्दिर का स्वर्णकलश है दर्शनाकाश का देदीप्यमान सूर्य है। अनेक दृष्टियों से वेदान्त दर्शन अन्य दर्शनों की अपेक्षा विभिन्न विलक्षणता वाला इसलिये है कि वह किसी भारतीय अथवा विदेशी धर्म को दूसरे का धर्म नहीं कहता। उसकी दृष्टि में मनुष्यमात्र एक ही ब्रह्म का अंश होने के कारण वह सबको आत्ममय देखता है और किसी से विरोध नहीं करता है। इसी कारण थोड़े थोड़े सिद्धान्तेतर से बने वेदान्त के ही अवान्तर सम्प्रदाय– शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत वेदान्त तथा स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त आदि हैं जो अद्वैत पक्ष को अपनी अपनी वैचारिक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय वाङ्मय परम्परा के जो भी शास्त्र हैं वे न केवल भारतीय परम्परा को सुरक्षित व संरक्षित करने के लिये हैं अपितु उनका प्रमुख उद्देश्य मानवमात्र को उचित राह दिखाना है, उन्हें धार्मिकता की ओर सुदृढ़ करना है, उन्हें लोक से परलोक तक की यात्रा कराना है, तथा असीम सुख की प्राप्ति कराना है। उसी परम्परा में जब हम दर्शन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि दर्शन भी हमें हमारी संस्कृति से जोड़ते हैं जीवन से जोड़ते हें, हमारे जीवन के लक्ष्य से हमें अवगत कराते हैं। शास्त्रानुसार लोक संसरित होता है और लोक के व्यवहारानुसार शास्त्र अपने को संरक्षित करता है। अत: शास्त्रीय प्रत्येक पक्ष जब लौकिक हो जाता है लोक संस्कृति में परिवर्तित हो जाता है तो वह स्थायित्व प्राप्त कर लेता है और पारम्परिक बन जाता है। वही परम्परा अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का काम करती है।

लोक संस्कृति में अद्वैत विषय पर जब हम विचार करते हैं तो हमारे सामने वेदान्त दर्शन का शास्त्रीय एवं दार्शनिक स्वरूप सहसा समक्ष आ जाता है और अद्वैत पक्ष उस विचार को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ देता है। तब सद्य: ही हम शंकराचार्य जी का मानसिक दर्शन करने लगते हैं, उनके वेदान्त के अद्वैत पक्ष की ओर हमारी दृष्टि जाने लगती है। अद्वैत वेदान्त के अन्तर्गत आद्य शंकराचार्य का मत है कि इस जगत् में नेत्रों से दृश्यमान कुछ भी सत्य नहीं । इस समस्त जगत् प्रपंच में यदि कुछ सत्य है तो वह एकमात्र ब्रह्म की एकमात्र चैतन्य सत्ता है, जीव पृथक् नहीं, वह ब्रह्म ही है इसलिये वे कहते हैं – **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर:। अद्वैत में भेद कैसा ?** अनादि अविद्या की गाढ़ निद्रा में चिरकाल से सोया जीव जब तत्त्वमसि आदि वाक्यज्ञान से जागता है तब उसे देह इन्द्रिय बुद्धि की उपाधि से परे अद्वैत आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है।

इसी सिद्धान्त से मिलता जुलता अन्य वेदान्तियों का मत भी हमारे अभिमुख होता है, यथा–

विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक रामानुजाचार्य का कथन है कि ब्रह्म के अतिरिक्त जीव एवं जड़ जगत् अर्थात् चित् एवं अचित् भी नित्य और स्वतन्त्र तत्त्व हैं। यह सत्य है कि यह भी ब्रह्म के अंश हैं और ब्रह्म की विशेषता स्वरूप हैं जो प्रलय के समय तो ब्रह्म के अन्दर सूक्ष्मरूपेण रहते हैं किन्तु विश्व की उत्पत्ति के समय स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं इसी कारण इसका नाम विशिष्टाद्वैत है।

शुद्धाद्वैत के प्रतिपादक वल्लभाचार्य माया को पूर्णत: अस्वीकार करते हैं और एकमात्र ब्रह्म को ही शुद्ध तत्त्व मानते हैं उनके मत में जीव और जगत् का प्रादुर्भाव ब्रह्म से ही होता है। अपनी इच्छानुसार ही ब्रह्म गुणों सहित ईश्वर के रूप में प्रकट होता है। और इन्हीं गुणों से जीव और जगत् का सृजन करता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सबमें ईश्वर और ईश्वर में सब कुछ आदि मानने के लिये वेदान्त नहीं हैं अपितु जीवन में प्रयोग

करने के लिये है। लाइफ ऑफ विवेकानन्द पृ. 219 पर रोमयां रोलां, विवेकानन्द का व्याख्यान उद्धृत करते हुये लिखते हैं कि वेदान्त का ज्ञान दीर्घकाल से गुफाओं एवं वनों में छिपा रहा है। यह भार मेरे ऊपर पड़ा है कि मैं उसे उसके अज्ञातवास से निकालूं एवं उसे पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में पहुचाऊं। विवेकानन्द के अनुसार त्रिकाल बाधित होने के कारण ब्रह्म परम सत्य है, पर जगत् ब्रह्म के समान निरपेक्ष सत्य नहीं है। कारण कि उसकी सत्ता तीनों कालों में अखण्डित नहीं रहती। अत: जगत् मिथ्या न होकर सत्य तो है पर स्वतन्त्र रूप से परम सत्य नहीं है। ब्रह्म पर आधारित होने से ही उसे सत्य माना जा सकता है। उनकी दृष्टि में माया शब्द का अर्थ जगत् पूर्ण भ्रम निरूपित करना नहीं, अपितु यह है कि जगत् अन्तर्विरोधों से युक्त है और इसी सीमा तक उसे अयथार्थ अथवा मिथ्या कहा जा सकता है। विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त कर्मवाद का समर्थक है। वे प्रेक्टिकल वेदान्त भाग–1 में कहते हैं – वेदान्त हमसे यह नहीं कहता कि हम अपने को असहाय मानकर अत्याचारी के सामने घुटने टेक दें। वह कहता है अपना मस्तक ऊंचा करो। तुमसे से हर व्यक्ति के भीतर एक ईश्वर विद्यमान है। इस प्रकार विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त शंकर के अद्वैत वेदान्त का बुद्धिगम्य, वैज्ञानिक, प्रेरणाप्रद और कर्मवादी स्वरूप है। वेदान्त का धर्म विलक्षणरूपेण विश्व धर्म है। कारण यह है कि मूलत: किसी एक व्यक्ति द्वारा संचालित नहीं है। किसी धर्म के विश्वधर्म होने का लक्षण यह है कि उसे अवैयक्तिक होना चाहिये। जो धर्म किसी व्यक्ति द्वारा चलाया हुआ होता है वह विश्वधर्म के लक्षणों से समन्वित नहीं हो सकता। जो धर्म किसी व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित होता है उसके समर्थक या अनुयायी उसके प्रवर्तक के व्यक्तित्व से बद्ध होकर , उसी को सर्वोपरि मानते हैं तथा किसी धर्म का आदर नहीं करते। ईसाई , इस्लाम बौद्ध आदि इसीप्रकार के धर्म हैं जो अपनी संकीर्णता के दायरे में बंधें रहकर युगानुकूल सिद्धान्तों को स्वीकार न करके बाबावाक्यं प्रमाणं का राग अलापते हैं जबकि हमारे प्रातिभचक्षु ऋषियों ने अतिप्राचीन काल में ही अपने चिन्तन वैराट्य का परिचय देते हुये यह घोषणा कर दी थी – **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**'1। अर्थात् सत्य एक ही है ज्ञानीजन उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

वेदान्त के प्रमुख आचार्य बादरायण व्यास माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने उसे एक स्वतन्त्र दर्शन के रूप में गढ़कर व्यवस्थित ढंग से सजाया। वास्तव में वेदान्त तो आदिकाल से चला आ रहा है। वेदों उपनिषदों में अनेक स्थलों पर वेदान्त के सिद्धान्तों का दर्शन किया जा सकता है। ऋग्वेद की यह ऋचा वेदान्त की आधार मानी जाती है।–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्।'2

इसी तथ्य को प्रकट करती ऋग्वेद की ही एक अन्य ऋचा द्रष्टव्य है –

हंस: शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसद्वयोमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।।'3

अर्थात् यह हंस रूप आत्मा ही सूर्य स्वरूप होकर द्युलोक में वास करता हैं समस्त प्राणियों के निवास का साधन बनकर वायु रूप होकर अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करता है। अग्नि के रूप में ही वेदी में स्थित होता है सोमरस के रूप में कलश में आपूरित किया जाता है। वही आत्मा मनुष्यों देवों एवं पक्षियों में विद्यमान है उसी का निवास जलचरों वृक्षों और पर्वतादि में है। वस्तुत: वही आत्मतत्व, ऋतस्वरूप परमात्मतत्व है। ऋग्वेद के ही एक अन्य मन्त्र में ऋषि वामदेव विश्व की विभिन्न विभूतियों को अपना ही स्वरूप बताते हुये वेदान्त के अद्वैत तत्व का निरूपण करते हैं–

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्र: ।
अहं कुत्समार्जनेयं न्यृब्जेऽहं कविरुशना पष्यता मा।।'4

वेदों में वर्णित वेदान्त ज्ञान धारा उपनिषदों में भी प्रवाहित हुई । श्वेताश्वतर उपनिषद् में परमात्मा जीव और प्रकृति को एकमेव ब्रह्म ही निरूपित किया गया हैं इसके अतिरिक्त इसी उपनिषद् में अन्यत्र तथा कठोपनिषद् में भी परमात्मा को इन आंखों द्वारा न देखे जाने एवं व्यक्ति के हृदय में निवास करने वाला निरूपित किया गया है–

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चैननम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।।'5

कठोपनिषद् की एक अन्य श्रुति में परमात्मा को समस्त जीवों में निवास करने वाला बताकर उनके जीवों के सुख दु:ख से अलिप्त रहने वाला बताया गया है।–

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषै: ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदु:खेन बाह्य: ।।'6

इसप्रकार वेदान्तदर्शन का आदि स्रोत वेद है। जहां से नि:सृत होकर उसकी ज्ञानधारा उपनिषदों , गीता, रामायण, आदि समस्त आर्श ग्रन्थों में प्रवाहित हुई है। वेदान्त दर्शन वैयक्तिक और एकदेशीय नहीं है। वह समस्त धर्मों के सारतत्व को अपने समेटे हुये है एवं उन्हें अपने निकट ही उचित आसन पर स्थान देता है। उसमें संसार के सभी धर्मों तथा दार्शनिक मतों का समावेश हो जाता है। पाश्चात्य देशों के प्लेटो, स्पिनोजा , काण्ट, हेगल, इमर्सन एवं स्पेन्सर आदि विद्वानों के दार्शनिक सिद्धान्तों का समर्थन वेदान्त द्वारा करना शक्य है। इन्हीं सब विलक्षणताओं के कारण वेदान्त दर्शन जगत् में सिरमौर माना जाता है।

वेदान्त के सभी सम्प्रदाय स्वयं को उपनिषद् पर आधारित मानते हैं तथा उपनिषद् को वेदान्त का मूलप्रस्थान मानते हैं। किन्तु

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त ही वस्तुत: औपनिषदिक दर्शन है। शंकराचार्य ने युक्तियुक्त रूप से प्रतिपादित किया है कि अद्वैत ही उपनिषदों का दर्शन है और अद्वैत द्वारा ही श्रुतियों की एकवाक्यता सिद्ध की जा सकती है।

इसप्रकार वेदान्त ऐसा शास्त्र है जिसका अनुगमन करके विश्व का कोई भी व्यक्ति सबमें अपना आत्मदर्शन करते हुये सबके साथ मैत्री पूर्वक और स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हुये न केवल अपने इहलौकिक जीवन को आनन्दपूर्ण बना सकता है वरन् पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तिम चरण मोक्ष को भी प्राप्त करके जीवन को धन्य बना सकता है। अन्तत: मुण्डकोपनिषद् के अनुसार यही कहा जा सकता है कि जो वेदान्त ज्ञान द्वारा परमेश्वर को जान चुके हैं और संन्यास तथा योग के द्वारा शुद्ध अन्त:करणवाले हो चुके हैं ऐसे साधक शरीर त्यागने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और परम अमृतत्व का अनुभव करके मुक्तात्मा बन जाते हैं–

वेदान्तविज्ञानसुनिष्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।'7

वेदान्त विषयक इन सारे मतों एवं वैचारिक पक्षों के अध्ययन के बाद एक बात निकलकर यथामुख होती है कि ईश्वर और जीव में अभिन्न सम्बन्ध है । ईष्वर को हम अपने से पृथक् नहीं कह सकते। यह जीव उसी का अंश है क्योंकि यजुर्वेद कहता है – **ईशावास्यमिदं सवर्म्**'8 यह सारा संसार इश्वर से आच्छादित है संसार के प्रत्येक कण कण में ईश्वर का वास है। तदतिरिक्त इस संसार में कुछ भी नहीं है। । अर्थात् इस संसार में द्वैत नहीं है दो अस्तित्व नहीं हैं अपितु एक ही परमात्मा सत्य रूप से प्रतिष्ठित है और वही अनेक रूपों में सृष्टि में विद्यमान है जो कि केवल उसकी माया है, सत्य सनातन केवल एक है।

यही अद्वैत भाव जब लोक में आता है तो हमारे अन्दर से किसी भी प्रकार का भेदभाव मिट जाता है। हमें प्रत्येक व्यक्ति में केवल वही सत्य दिखाई देता है। हम शरीर से तो अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु आत्मतत्व से केवल और केवल एक ही होते हैं–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।'9

यजुर्वेद कहता है जब हम सभी प्राणियों में उसी आत्मा के दर्शन करते हैं और सभी प्राणियों को उसी आत्मतत्व में निहित मानते हैं तो तब हम किसी से घृणा नहीं कर सकते। अद्वैत की कितनी सुन्दर बात यहां कही गयी है। यही भाव हमारी प्राचीन संस्कृति में झलकता है। प्राचीन काल में कोई जाति पाति नहीं थी सब **संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्**'10 (सबकी गति समान हो, सबकी वाणी समान हो सबके मन समान हों) के आचरण से युक्त थें किसी के मन में किसी के प्रति कोई अलगाव नहीं था, सबके प्रति समान भाव से प्रेम करना उनके सामान्य व्यवहार में था, यहां तक मानवेतर प्राणियों से भी उतना ही स्नेह सबको होता था। पशु पक्षी निर्द्वन्द्व होकर विचरण करते थें अरण्य में नि:शंक मनुष्यों का वास होता था और ग्रामों में निडर वन्य प्राणियों का । इसका साक्षात् उदाहरण हम कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में देखते हैं जहां लौकिक अद्वैत संस्कृति का चित्र शकुन्तला के नाम से ही चित्रित होने लगता है। जो शकुन्तला पक्षियों और वन्य जीवों के द्वारा पालित पोषित हो। उन्हीं के साथ वार्तालाप करती मनोरंजन करती अपना जीवन जी रही हो, कि जिसके श्वसुरालय जाने पर उन पशु पक्षियों में खाना पीना छोड़ दिया। अद्वैत का इतना मनोरम स्वरूप और कहां मिलेगा? दुष्यन्तपुत्र भरत का शेर के दांत गिनना, सुदक्षिणा का नन्दिनी की मातृवत् सेवा करना, यक्ष का मेघ में भी स्वात्मवत् दर्षन कर उससे प्रिया को सन्देश भिजवाना, उत्तररामचरित में राम के कष्ट को देखकर पत्थरों का भी रो पड़ना आदि आदि बातें अतिशयोक्ति हो सकतीं हैं, नियतिकृतनियमरहित हो सकती हैं, यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते (कवि को जैसा अच्छा लगता है वैसा कहने में वह स्वतन्त्र है) हो सकती हैं, पर कही न कहीं यह कवि की अद्वैत भावना ही है कि वह मानुषिक भावपक्ष को सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में अनुभव करना चाहता है। वह अपने से पृथक् कुछ भी नहीं समझना चाहता । वस्तुत: यही हमारी अद्वैत संस्कृति रही है जो मध्य काल में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से द्वैत में बदली, हम आपस में झगड़ने लगे, अपने पराया का भेद करने लगे, जाति तक का बटवारा कर लिया, फिर आरक्षण के आड़ में कतिपय मानवीय द्वैतों में फंस गये। मानवीय द्वैत हमें आध्यात्मिक अद्वैत से जुड़ने नहीं देगा। हम स्वयं को ईश्वर का अंश कहकर स्वयं में अद्वैत देख सकते हैं किन्तु जब तक प्रत्येक प्राणी में उसी तत्व का दर्शन नहीं करेंगे तब तक हम अद्वैत के चरम सोपान पर नहीं पहुँच पायेंगे । यही विचारधारा, चिन्तन सभी अद्वैतवादियों का है और वास्तव में यही लौकिक अद्वैत संस्कृति है जो हमारी विरासत है। उसे हमें सुरक्षित रखना है और व्यावहारिक बनाये रखना है।

सन्दर्भ सूची–

1 ऋग्वेद 1.164.46
2 ऋग्वेद 1.164.46
3 ऋग्वेद 4.40.6
4 ऋग्वेद 4.26.1
5 श्वेताश्वतरोपनिषद्4.20। कठोपनिषद्3.2.9
6 कठोपनिषद् 2.2.11
7 मुण्डकोपनिषद् 3.2.6
8 यजुर्वेद 40.1
9 यजुर्वेद 40.6
10 ऋग्वेद 10

■

आलेख

(बुंदेलखंड के विशेष सन्दर्भ में)

पर्वों -उत्सवों मे लोक आस्था और अद्वैत दर्शन

डॉ. कुंकुम गुप्ता

भारत उत्सवधर्मी देश है यहाँ पूरे वर्ष त्यौहारों की श्रृंखला निरंतर चलती रहती है। कई बार तो महीने में चार-पांच त्यौहार आ जाते हैं। पर्व मनाने के पीछे लोक आस्थाएं जुड़ी रहती है। यह आस्था ग्रामीण क्षेत्र में और अधिक गहरी होती है इसका कारण है कि लोक जीवन प्रकृति के निकट अधिक रहता है। प्रकृति के प्रदेय को स्वीकारना गांव में रहने वाले लोग बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। उनके मन में नदियों के प्रति आस्था रहती है क्योंकि वह जल देती है जो जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। खेती करने वाले कृषक को मिट्टी, खेत, पेड़ - पौधों से लगाव रहता है और उनकी पूजा भी करते हैं कोई भी शुभ काम होता है तो मिट्टी के गणेश बनाना, शादी विवाह में मटियाना लाने से शुभ कामों में शुरुआत होती है, मिट्टी से ही खेती जुड़ी रहती है। यह शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना है और पांचों तत्वों के महत्व को स्वीकारने का उद्देश्य यही है कि जिन पंच तत्वों से मिलकर ये जीवन मिला है अंत में उसी मिट्टी में मिलना है, तेरा तुझको अर्पण का भाव भी व्यक्ति के मन में रहता हैं।

बुंदेलखंड के विशेष संदर्भ में कुछ त्योहारों की जानकारी देना समीचीन होगा। चैत्र माह के त्यौहारों की गणना की जाए तो वह बहुत अधिक है। चैत्र मास में नवदुर्गा , सम्वत्सर पर जवारे रखना बुन्देलखंड का मुख्य उत्सव है। गणगौर, शीतला अष्टमी, जगन्नाथ की पूजा चैती पूर्णिमा, हनुमान जयंती, वैशाख में आसमाई की पूजा होती है जिसमें चार कोड़ियाँ पूजन के लिए रखी जाती हैं और बैसाखी अमावस्या किसानों का त्यौहार मनाया जाता है अक्षय तृतीया का त्यौहार भी वैशाख में होता है जिसमें गुड्डे - गुड़ियों की पूजा होती है और मिट्टी के करवा भरे जाते हैं। बट सावित्री व्रत की पूजा होती है तो उसमें सुहागन स्त्रियों पर वृक्ष के नीचे महिलाएं पूजन करती है आषाढ़ मास में देवशयनी एकादशी होती है। आषाढ़ में पूर्णिमा होती है गुरु पूर्णिमा और कुलघुसू पूने भी होती है यह घर की बहुओं की पूजा का दिन है। वरिष्ठ महिलाएं हल्दी की बहू बनाकर उनका पूजन करती हैं आरती उतारती हैं यह त्यौहार बुंदेली जीवन में महिलाओं के सम्मान और पारिवारिक सद्भाव का प्रतीक माना जाता हैं। सावन मास में हरियाली अमावस्या होती है जिसमें झूला झूलते हैं,राधा कृष्ण भाव से नर-नारी भक्ति भाव से पूजन करते हैं और स्वयं उसी भाव में जीते हैं,प्रकृति के साथ समरसता का आनंद लेते हैं। रक्षाबंधन भाई बहन का त्यौहार होता है जिसमें बहिने आपने भाइयों की कलाई पर राखी बांधती हैं और भाई बहिन की रक्षा करने का भाव व्यक्त करता है। सावन की पंचमी को नाग पंचमी की पूजा की जाती है भादों में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर भगवान कृष्ण के जन्म का उत्सव मनाया जाता हैं। हल छठ का पर्व मनाते हैं, इसमें गाय का दूध तथा हल की जुती वस्तुओं का निषेध रहता है। और हरतालिका तीज आती है जो सौभाग्यशाली महिलाएं भगवान शिव और पार्वती की पूजा करती हैं गणेश चतुर्थी,डोल ग्यारस अनंत चौदस भादों के महीने में बहुत त्यौहार पड़ते हैं। क्वार में महालक्ष्मी पूजन होता है, मिट्टी के हाथी की पूजा घर घर सौभाग्यशाली नारियां करती है शारदीय नवदुर्गा की पूजा होती है। कार्तिक में धनतेरस और नरक चौदस, छोटी दीपावली बड़ी दीपावली आती हैं जिसमें सुरांती लिखते हैं जो लोक आस्था का ही स्वरूप हैं। दीपावली की रात में लक्ष्मी पूजन होता है जिसमें खील बताशे का प्रसाद लक्ष्मी जी को लगाया जाता है जो आम जन के लिए भी सुलभ होता है। बुन्देलखंड में पर्व उत्सव त्यौहार के अवसर पर पूजन के समय अद्वैत भाव प्रमुख रहता है। ग्रामीण अंचलों में ग्राम देवता हनुमान और गणेश जी की किसी सार्वजनिक स्थान पर की प्रतिमा स्थापित करके सेंदुर का लेप कर स्थापित किया जाता है जहां सर्वसाधारण द्वारा पूजा की जाती है। गाँव के बाहर अखाड़ों में जहां कुश्तियां होती हैं एक लाल रंग के झंडे को हनुमान जी की ध्वजा के प्रतीक रुप में ऊंचाई पर लगा देते हैं। लोक विश्वास है कि इससे दंगल के प्रतिद्वंद्वियों में हनुमान की सी शक्ति प्राप्त होती है, दंगल में विजयी होता है। हनुमान मंदिरों में बन्दर

को गुड़ चना इस भाव से खिलाना कि हनुमान जी को भोग लगा रहे हैं। लोकदेवी देवता में ठाकुर बाबा, घटौरिया बब्बा प्रमुख हैं।

लोक आस्था में मानते हैं कि भगवान भाव को प्रमुखता देते है धन को नहीं। रात्रि में पटाखे चलाते हैं गोवर्धन पूजा, भाई दूज और देव उठनी एकादशी होती है तो शुभ कार्य जैसे शादी ब्याह आदि की शुरुआत होती है। नए जो फल आते हैं उनको भी पूजन में रखते है सीताफल, गन्ने, बेर, गेंहूँ की बालें आदि। विवाह पंचमी, मकर संक्रांति,बसंत पंचमी और उसके बाद फागुन का महीने में होली का पर्व आता है इसमें होलिका दहन होता है जो बुराइयों का दहन और स्नेह का पर्व है। सोमवार को यदि अमावस्या पड़ती है तो सोमवती अमावस्या का बहुत महत्व है बुंदेली संस्कृति अपने इन्ही त्योहारों के कारण अपनी विशेष पहचान बनाए हुए हैं।

लोक आस्था लोक देवताओं के प्रति होती है, जो लोगों को अपनेपन की अनुभूति कराती है और जड़ों से जोड़ने का आग्रह करती है कुछ परिवार जीवनयापन या नौकरी के कारण बाहर रहते हैं लेकिन वर्ष में एक बार शादी विवाह के अवसर पर अपने कुल देवता को पूजने के लिए जरूर आते हैं। अपने पूर्वजों और कुल देवता के सम्मुख अपनी आस्था प्रगट करते हैं। क्षेत्र विशेष के आधार पर नाम या पूजन विधि में अंतर रहता है लेकिन मूल भाव एक ही रहता है।

अद्वैत दर्शन एकाकार करना सिखाता हैं। अद्वैत वेदांत की एक शाखा है। इसमें ''**ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या**'' का उद्घोष है। अहं ब्रह्मास्मि का सूत्र वाक्य इसका मूल प्राण है।

लोक जीवन के अध्येता कपिल तिवारी जी ने कहा है, ''भारत की चेतना में लोक का विशेष प्रभाव है द्य लोक के माध्यम से एकत्व की भावना विकसित होती है।''

यही एकत्व की भावना अद्वैत दर्शन से व्यक्ति को जोड़ती है आत्मा परमात्मा एक ही है यही अद्वैत का सार है।

आज शहरों में आस्था का प्रभाव कुछ कम हो चला है इसका कारण व्यस्त दिनचर्या है। कुंभ भी भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न पर्व है। कुंभ का अर्थ है घड़ा और हिंदू संस्कृति में कलश का बहुत महत्व है। कुंभ प्रकृति और मानवता का मिलन है पांच तत्वों से बना यह शरीर है इसीलिए हम इसके महत्व को समझते हैं। कुंभ मेला अलग-अलग स्थान पर आयोजित किया जाता है उज्जैन, इलाहाबाद, नासिक और हरिद्वार लेकिन इलाहाबाद में 144 वर्षों बाद महाकुंभ होता है जिसको वैश्विक स्तर भी स्वीकृति मिलती है कुछ आस्थावादी विदेशी लोगों को भारतीय संस्कृति में रुचि रहती है और कुंभ में स्नान करके अपने को धन्य मानते हैं। भारतीय मानस की आस्था में अद्वैत दर्शन है जिसे शंकराचार्य ने प्रतिपादित किया था। अद्वैत भाव से लोक संस्कृति का अनुयायी नदी ,वृक्ष,प्रतिमा सभी जड़ पदार्थों को मस्तक नहीं झुकाता वरन् उनमें विराजमान ईश्वर की सत्ता को सिर झुकाता है। परब्रह्म सत्ता सबमें विद्यमान है। संसार में जो कुछ भी हमें दिखाई देता है सब एक नियामक सत्ता, ईश्वरीय शक्ति से संचालित है। जिसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में ''**सियाराम मय सब जग जानी, करहुं प्रणाम जोर जुग पानी।**'' कहकर सिद्ध किया है।

संपर्क- 2/9 रंथम्भोर काम्प्लेक्स,
जोन -2 एम. पी. नगर, भोपाल - 11
मो.9425606033

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए संजीवनी होगा।

आलेख

अद्वैत और लोक संस्कृति

डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव

भारत में वैदिक ज्ञान की जड़े बहुत गहरी हैं। यह जनमानस की चेतना में स्थित हो, उसके रक्त में प्रवाहमान है। एक तरफ जहाँ विश्व की कई सभ्यताएँ नष्ट हो गईं वहीं भारत की ज्ञान परम्परा अक्षुण्ण रही।

भारत के लोकजीवन की चेतना के केन्द्र में अद्वैत है। अद्वैत ही उसका जीवन है। आम लोग अद्वैत को जानते नहीं बल्कि जीते हैं। जिस तरह से सूर्य का प्रकाश फैलता है वैसे ही वैदिक ज्ञान परम्परा के प्रकाश में भारत में जीवन दृष्टि विकसित हुई। भारत की दो ज्ञान परम्परायें, श्रुति और श्रमण हैं। श्रुति ज्ञान परम्परा एक वैदिक उन्मेष है और आनंद-उत्सव से जुड़ी हुई है, जबकि श्रमण परम्परा दुख और अवसाद से संबंद्ध है। श्रमण परम्परा एशियाई देशों में तो खूब फली-फूली, परन्तु भारत में अपनी जड़ें नहीं फैला पाई। श्रुति के शासन में ही ज्ञान के कई अनुशासन विकसित हुए जो वैदिक परम्परा का अनुगमन करते हैं। ऋषियों ने वैदिक ज्ञान को ही रसपूर्ण बनाकर 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे लौकिक साहित्य की रचना की। भारत का लोकजीवन षट्-मातृकाओं - धरती, प्रकृति, स्त्री, नदी, गाय और भाषा का समन्वय है।

धरती को भारतीय मनीषा में माता कहा गया है।

''**माता भूमि पुत्रोहं पृथिव्याः**'' अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

''Earth is my mother I am her son''

''**आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।**'' (यजु. 22/22)

इस मन्त्र में एक आदर्श राष्ट्र का वर्णन है। हमारा राष्ट्र कैसा हो ?

''प्रभु! राष्ट्र में कुशल हों। ब्राह्मण ब्रह्म वर्चस् सिखलाने वाले हों। क्षत्रिय शूरवीर और दुष्टों से राष्ट्र को बचाने वाले हों। तीव्र गति वाले घोड़े हों। बैल समर्थ और बलशाली हों। गौ माताएं हृष्ट-पुष्ट हों। दूध-दही की नाली बहें। नारियाँ ऐसी हों कि राष्ट्र को उनपर नाज रहे। शूरवीर-जयशील संतति हो। उन्नत सभ्य स्वराज रहे। न अतिवृष्टि ना अनावृष्टि हो। अन्न पके हों और औषधियाँ फलदायी हों। प्रभो आपकी कृपादृष्टि से , झम झम मेघ बरसें। योगक्षेम हो सिद्ध हमारा। सुकर्तव्य पर हमें चलें। राष्ट्र के प्रति प्रेम हमारा नित्य बढ़ता रहे। हे प्रभु ! तुम विमल मधुर अमृत बरसाओ।''

आदि काल से ही पृथ्वी को मातृभूमि की संज्ञा दी गई है... भारतीय अनुभूति में पृथ्वी आदरणीय बताई गई है। इसीलिए पृथ्वी को माता कहा गया। महाभारत के यक्ष प्रश्नों में इस अनुभूति का खुलासा होता है। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था कि आकाश से भी ऊँचा क्या है ? पृथ्वी से भी भारी क्या है ?

युधिष्ठिर ने यक्ष को बताया कि पिता आकाश से ऊँचा है और माता पृथ्वी से भी भारी है। हम उनके अंश हैं।

यही नहीं इसका साक्ष्य वेदों (अथर्ववेद और यजुर्वेद) में भी मिलता हैं। यही नहीं सिंधु घाटी सभ्यता जो 3300-1700 ई.पू. की मानी जाती है, विश्व की प्राचीन नदी घाटी सभ्यताओं में से एक प्रमुख सभ्यता थी। सिंधु सभ्यता के लोग भी धरती को उर्वरता की देवी मानते थे और पूजा करते थे।

वेदों का उद्घोष : अथर्ववेद में कहा गया है कि ''माता **भूमि', पुत्रो अहं पृथिव्याः**'' अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

यजुर्वेद में भी कहा गया है ''**नमो मात्रे पृथिव्ये, नमो मात्रे पृथिव्याः**'' अर्थात् माता पृथ्वी (मातृभूमि) को नमस्कार है, मातृभूमि को नमस्कार है।

वाल्मीकि रामायण में आदिकवि वाल्मीकि लिखते हैं ''**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**'' यानी जननी और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर है।

लोक सहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी

रचना लोक करता है। लोक-साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, वर्ग, समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार- ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।'' (लोक साहित्य विज्ञान, डॉ ? सत्येन्द्र, पृष्ठ-03)

साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है। अत: जनसाहित्य (लोकसाहित्य) का आदर्श विशिष्ट साहित्य से पृथक् होता है। किसी देश अथवा क्षेत्र का लोकसाहित्य वहाँ की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है जो साधारण जनस्वभाव के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की सभी प्रकार की भावनाएँ बिना किसी कृत्रिमता के समाई रहती हैं। अत: यदि कहीं की समूची संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोकसाहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा। यह लिपिबद्ध बहुत कम और मौखिक अधिक होता है। वैसे हिंदी लोकसाहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास इधर कुछ वर्षों से किया जा रहा है और अनेक ग्रंथ भी संपादित रूप में सामने आए हैं किंतु अब भी मौखिक लोकसाहित्य बहुत बड़ी मात्रा में असंगृहीत है।

लोक जीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोकगीतों व लोक-कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक-साहित्य में लोक-मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती-गुनगुनाती है। लोक-साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य है। उत्तर प्रदेश-बिहार के लोक जीवन में रचा-बसा लोकगीत (कजरी) यहाँ द्रष्टव्य है-

''झीर-झीर बुनिया रे... झीर झीर बुनिया....
कहवा के सिया दुलहिनिया...
पड़ेला झीर-झीर बुनिया...''

पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में हमेशा लोक के प्रति नकारात्मक रही है जबकि भारतीय दर्शन में हमारे यहाँ प्रकृति भी ईश्वरीय देन है। यहाँ लोक, द्वैत और गुरु के बीच द्वंद्व नहीं है। उनके बीच सतत् स्पंदन दृष्टिगत हुआ है। अद्वैत के चलते ही आदिवासियों ने पेड़, पौधों को व्यक्तिशीलता प्रदान किया। वस्तुनिष्ठ संसार से संबंध स्थापित किया। इस बात के प्रमाण हमारे लोकगीतों और लोक आख्यानों में मिलते हैं-

नई डाळी पैय्यां जामी, देवतों की डाळी
हेरी लेवा देखी ले नई डाळी पैय्यां जामी
नई डाळी पैय्यां जामी, क्वी चौंरी चिण्याला
नई डाळी पैय्यां जामी, क्वी दूद चरियाळा
नई डाळी पैय्यां जामी, द्यू करा धुपाणो
नई डाळी पैय्यां जामी, देवतों का सत्तन
नई डाळी पैय्यां जामी, कै देब शोभलो
नई डाळी पैय्यां जामी, छेतरपाल शोभलो...

(उत्तराखंड का एक लोकगीत)

इस लोकगीत का आशय यह है कि पंय्या का छोटा सा नया पेड़ उग आया है। इसके दर्शन कर लो, यह देवताओं का पेड़ है। कोई इसकी चहारदीवारी बनाओ, कोई इसे दूध से सींचो और कोई दिया बाती धूप आदि से इसकी पूजा करो। देवताओं के पुण्य से पंय्या का नया पेड़ उगा है। यह पेड़ तो क्षेत्रपाल देवता को शोभयमान होगा।

उत्तराखण्ड के जनमानस में यह लोक मान्यता व्याप्त है कि हिमालय में खिलने वाला रैमाशी का फूल भगवान शिव को अत्यंत प्रिय होता है। यही मान्यता कुंज, ब्रह्मकमल, बुंराश व अन्य फूलों के लिए भी है।

गढ़वाल के एक लोकगीत में कहा गया है- 'राजों का बग्वान यो फूलो के को'। अलकनंदा के तट पर खिले एक अलौकिक व रहस्यमय पुष्प के प्रति लोग कौतूहल व्यक्त कर रहे हैं कि यह फूल किस देवता का होगा।

''तुमरि डेळयों रौ बसंत फूलों का बग्वान।
हैंसदा खेलदा फुलदा फलदा जी जगी रयांन।।''

(यानी तुम्हारी देहरियाँ हमेशा बसन्त के फूलों का बगीचा बनी रहें और तुम हमेशा फलते-फूलते, जीवित और जागृत रहो।)

फूलों के प्रति देवत्व की इसी उद्दात भावना के प्रतिफल में उत्तराखण्ड के पर्वतीय इलाकों में फूलों का त्यौहार फूलदेई अथवा फुलसंग्राद बड़े ही उत्साह से मनाया जाता है। दरअसल फूलदेई नये वर्ष के आगमन पर खुशी प्रकट करने का त्यौहार है जो बसन्त ऋतु के मौसम में चैत्र संक्रान्ति को मनाया जाता है।

भारत के हर कोने में वृक्षों की पूजा की जाती है। पीपल, बट, नीम, गुलर आदि वृक्षों में देवताओं का वास माना जाता है। उत्तरी भारत में बट और पीपलको ब्रह्म बाबा के रूप में पूजा जाता है और मनौतियाँ माँगी जाती है।

इसी प्रकार नदियों को भी देवत्व प्रदान करते हुए उन्हें माता

के रूप में याद किया गया है और उन्हें मोक्षदायिनी कहा गया है। मैथिल-कोकिल रससिद्धकवि विद्यापति माता गंगा की स्तुति करते हुए कहते हैं -

बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे।
छोड़इत निकट नयन बह नीरे।।
कर जोरी बिनमों बिमल तरंगे।
पुनि दरसन होए पुनमति गंगे।।
एक अपराध छेमब मोर जानी।
परसल माय पाय तुअ पानी।।
कि करब जप-तप जोग-धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने।।
भनई विद्यापति समदों तोही।
अन्तकाल जनु बिसरहु मोही।।

पर्वत और पठार भी देवताओं के निवास-स्थल के रूप में लोक में स्वीकृत हैं। पर्वत राज हिमालय को तो देवाताओं का प्रिय निवास माना गया है ।कैलास को तो भगवान् शिव का धाम ही माना जाता है।

कैलाश पर्वत पर बाज रहे घुंघरु,
नाच रहे भोला बजा रहे डमरु.....

पर्वत पर नाचने को ब्रह्मा जी आए,
ब्रह्मा जी आए संग ब्रह्माणी को लाए,
उनके भी पैरों में बाज रहे घुंघरु,
नाच रहे भोला बजा रहे डमरु....

पर्वत पर नाचने को विष्णु जी आए,
विष्णु जी आए संग लक्ष्मी जी को लाए,
उनके भी पैरों में बाज रहे घुंघरु,
नाच रहे भोला बजा रहे डमरु.....

पर्वत पर नाचने को रामा जी आए,
राम जी आए संग में सीताजी को लाए,
उनके भी पैरों में बाज रहे घुंघरु,
नाच रहे भोला बजा रहे डमरु.....

पर्वत पर नाचने को कान्हा जी आए,
कान्हा जी आए संग में राधा जी को लाए,
उनके भी पैरों में बाज रहे घुंघरु,
नाच रहे भोला बजा रहे डमरु.....

पर्वत पर नाचने को सभी संत आए,
सभी संत संग में भक्तों को लाए,
उनके पैरों में बाज रहे घुंघरु,
नाच रहे भोला बजा रहे डमरु.....

पश्चिमी विचारकों का जिक्र आता है तो यह बात उल्लेखनीय है कि उन्होंने प्रकृति को 'कमोडिटी' माना है। हमारे लोक जीवन में प्रकृति को पूजा गया और लोक ने उसके साथ संबंध स्थापित किया और समान का भाव पैदा किया। भारत में लोक आख्यानों में स्पष्ट रूप से यह बात देखने को मिलती है। हमारा लोक जीवन अद्वैत से ओतप्रोत रहा है। अद्वैत को उस लोकजीवन ने जिया है। लोक के पास अद्वैत अध्ययन से नहीं उसके अनुभव से आया है।

भारत की संस्कृति में अद्वैत रचा बसा है और वन समाजों में भी इसके पदचिह्न स्पष्ट नजर आते हैं।

मनुष्य उत्सव प्रिय होते हैं। भारत में उत्सवों की भरमार है। जहाँ द्वैत होता है वहाँ अद्वैत से उत्सव हो जाता है। ''उत् (आनन्दस्य) सव:(प्रसव:) स: उत्सव:'' ऐसे ही जहाँ अद्वैत का उत्सव होता है वहाँ आनंद का प्रसव होता है। अद्वैत के अनुशीलन के दौरान एक प्रश्न आता है कि ''कस्मात विभेभि ?'' आत्मा ने सोचा ''मैं किससे डरूँ, मेरे अतिरिक्त कोई है ही नहीं।'' किसी भी स्थिति में जब हमें अद्वैत की अनुभूति होती है, वहाँ भय समाप्त हो जाता है। आदि शंकराचार्य ने विभिन्न द्वैतों में अद्वैत को खोजा यह भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। ''सर्वे वेदा यत्रैंक भवन्ति'' अर्थात् जहाँ सारे वेद एक होते हैं, वह अद्वैत है। ज्ञानात्मक अद्वैत की स्थापना शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना कर की। चारों मठ भारतीय लोक-संस्कृति को मजबूत करने में अपनी महती भूमिका निभाते हैं।

भारत में चार प्रमुख दिग्बिन्दु पर एक-एक:-

श्रृंगेरी शारदा पीठ - आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित यह पहला मठ था। यह भारत के दक्षिणी भाग में तुंगा के किनारे स्थित है। सुरेश्वर को इस मठ का प्रमुख बनाया गया क्योंकि शंकराचार्य अन्य मठों की स्थापना के लिए आगे यहीं से बढ़े। श्रृंगेरी शारदा पीठ 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) की वकालत करता है और यजुर्वेद के आधार पर बनाया गया था।

द्वारका पीठ - द्वारका पीठ भारत के पश्चिमी भाग में स्थित

है। हस्तमालकाचार्य के नाम से विख्यात हस्त मलका को इस मठ का प्रमुख बनाया गया था। द्वारका पीठ 'तत्त्वमसी' (तत् त्वम् असि) की वकालत करती है और सामवेद के आधार पर बनाई गई थी।

ज्योतिर्मठ पीठ- यह मठ भारत के उत्तरी भाग में स्थित है। तोतकाचार्य को इस मठ का प्रमुख बनाया गया था जो 'अयात्मा ब्रह्म' (यह आत्मा ब्रह्म है) की वकालत करता है। ज्योतिर्मठ पीठ का गठन अथर्ववेद के आधार पर किया गया था।

गोवर्धन पीठ - गोवर्धन मठ भारत के पूर्वी भाग में स्थित है। मठ प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर का एक हिस्सा है। पद्मपद को इस मठ का प्रमुख बनाया गया था जो 'प्रज्ञानां ब्रह्म' (चेतना ही ब्रह्म है) की वकालत करता है। इसकी रचना ऋग्वेद के आधार पर हुई थी।

जीव जो भी है उसका ब्रह्म के साथ अद्वैत है। सम्प्रदाय भले ही अलग-अलग हो और उनका एक-दूसरे के साथ संघर्ष हो परन्तु उनके देवता एक-दूसरे से प्रेम करते हैं।

लौकिक भ्रम को दूर करना ही दर्शन का कार्य है। जैसे लोक में मृगमारिचिका भ्रम होता है वैसा ही भ्रम ब्रह्म, जीव, जगत, तत्व में भी होता है। इस भ्रम को दूर करना ही दर्शन का कार्य है तभी अद्वैत का प्रतिपादन होता है।

''कविः करोति काव्यानि अर्थं जानाति पण्डितः'' अर्थात् कवि केवल काव्य करते हैं किन्तु उसका अर्थ विद्वान करते हैं।

आदि शंकराचार्य के पूर्व भी अद्वैत का निरूपण था। शंकराचार्य लिखते हैं कि ''अस्य अनर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्व विद्याप्रतिपत्तमे सर्वे वेदा आरभ्यन्ते।'' इस वाक्य में आत्मैकत्व शब्द ही अद्वैत का निरूपण करता है। ''आत्मैकत्व'' अर्थात् चैतन्य स्वरूप आत्मा एक है। उपनिषद् इसलिए पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि उससे व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयास करता है।

शंकराचार्य ने स्वतन्त्र अद्वैत का उल्लेख नहीं किया है। अद्वैत एक तत्व है। लोक की दृष्टि में जो एकता दर्शन हम करते हैं, जो व्यवहार के लिए उपयुक्त है वही अद्वैत है। आनन्दमय ब्रह्म का प्रतीक है। एक आत्मा है, वह ईश्वर का प्रतीक है, वह अनेकानेक जीवों में है। आनन्दमय को समझने वाला व्यक्ति ब्रह्म हो जाता है।

लेखक- असि. प्रो. (हिंदी)
भवंस मेहता महाविद्यालय, भरवारी,
कौशाम्बी- 212201 (उत्तर प्रदेश)
मो. 7972465770, 7767031429

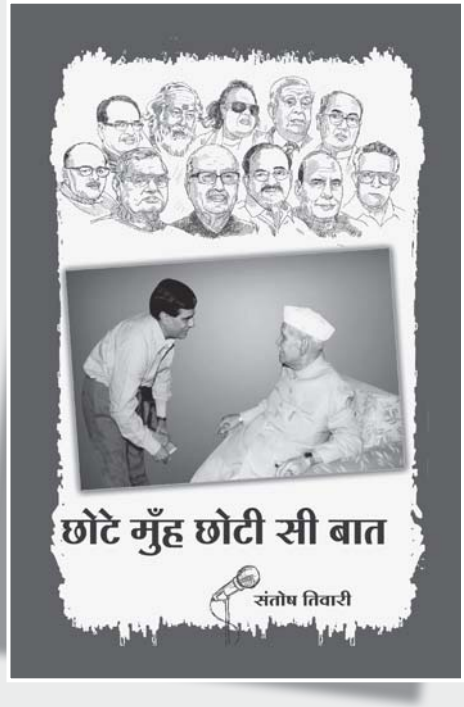

वरिष्ठ उद्घोषक संतोष तिवारी की कथेतर गद्य की अप्रतिम कृति...

छोटे मुँह छोटी सी बात

कला समय प्रकाशन
भोपाल (म. प्र.)

आलेख

अद्वैत सिद्धांत और लोक संस्कृतिः ललित कला में आध्यात्मिकता का सामाजिक प्रभाव

डॉ. राजकुमार पांडेय

लोक संस्कृति और अद्वैत वेदांत दोनों ही भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के महत्वपूर्ण पहलु हैं। ये दो विभिन्न क्षेत्रों में सदियों से विकसित हुए हैं और भारतीय मानवता की विचारधारा, आदर्श और विकास को प्रभावित किया है। लोक संस्कृति जिसे जनजाति संस्कृति भी कहा जाता है, विभिन्न समुदायों की सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिष्ठान करती है। यह संस्कृति जीवन के विभिन्न पहलुओं को समर्थन देती है, जैसे कि वाणिज्यिकता, कृषि, संगीत, नृत्य, कला, शिक्षा आदि। इसका मूल उद्देश्य ग्रामीण और आदिवासी समुदायों के जीवन को सशक्त बनाना और सामाजिक समानता को प्रोत्साहित करना है। अद्वैत वेदांत जिसे शंकराचार्य ने प्रमुखतः विकसित किया। भारतीय धार्मिकता की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इसके अनुसार, ब्रह्म एकमात्र असली वास्तविकता है और जगत में द्वैत भ्रम केवल माया है। यह सिद्धांत आत्जज्ञान, स्वानुभूति और दिव्यता की प्राप्ति की ओर मार्गदर्शन करता है।

लोक संस्कृति और अद्वैत वेदांत के बीच एक मिलनसर सम्बन्ध है, जो सामाजिक समानता, विविधता और आदर्शों की महत्वपूर्ण बातें साझा करता है। दोनों ही धाराएं व्यक्ति को आत्म-समर्पण और समाज सेवा की दिशा में प्रेरित करती हैं। समानता की दृष्टि से लोक संस्कृति सभी वर्गों के लोगों को एक साथ आने का अवसर प्रदान करती है, जबकि अद्वैत वेदांत द्वारा सिखाया जाता है कि सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा का अवलोकन करना चाहिए। आदि गुरु शंकराचार्य ने अपने अद्वैत सिद्धांत के माध्यम से वेदांत के मूल सिद्धांतों तों को प्रतिपादित किया, जिनमें ब्रह्म की अद्वितीयता और जगत् की माया की पराधीनता मुख्य है। उनके द्वार प्रस्तुत किए गए ये सिद्धांत मानव जीवन के मार्गदर्शन के लिए आदर्शमय थे। ब्रह्म की अद्वितीयता- शंकराचार्य ने ब्रह्म की अद्वितीयता की महत्वपूर्णता को बताया। उनके अनुसार, ब्रह्म एकमात्र असली और अद्वितीय सत्य है, जिससे जीव, जगत् और ईश्वर की अस्तित्व की सच्चाई उत्पन्न होती है। जगत् में माया का सिद्धांत- शंकराचार्य ने माया की महत्वपूर्णता को भी बताया, जिससे जगत् की वास्तविकता वैभव और अस्तित्व की पराधीनता को समझाया गया। वे मानते थे कि जगत् केवल एक मिथ्या दिखावा है, जिसका असली सत्य ब्रह्म है। आत्मा की अद्वितीयता-उन्होंने आत्मा की अद्वितीयता को भी प्रोत्साहन किया। वे मानते थे कि आत्मा अद्वितीय ब्रह्म का ही अंश है और इसकी पहचान से ही मुक्ति प्राप्ति संभव होती है। मार्गदर्शन के साधनाएं-उन्होंने साधना के लिए चार उपायों की प्रस्तावना की विवेक (वास्तविक और मिथ्या की पहचान), वैराग्य (मन की मायावी वसनाओं से मुक्ति), शम (मन की शांति) और दम (आत्म नियंत्रण)। मोक्ष की प्राप्ति-शंकराचार्य ने मोक्ष की प्राप्ति के लिए ब्रह्मज्ञान का महत्व बताया। उनके अनुसार, आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्ति से ही मुक्ति संभव होती है, जिससे व्यक्ति ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त करता है।

आदि गुर शंकराचार्य के आध्यात्मिक विचार लोक संस्कृति के रूप में एक निरंतर चिंतन की शैली को प्रकट करते हैं जो मनुष्यों के आंतरिक अद्वितीयता और ब्रह्म की वास्तविकता के प्रति उनकी धार्मिक भावनाओं का प्रतिष्ठान करती है। उनके आध्यात्मिक विचार लोक संस्कृति को एक मार्गदर्शिका के रूप में प्रदर्शित करते हैं, जो मानव जीवन को

उच्चतम आदर्शों और आत्मा के प्रति उन्नति की दिशा में प्रेरित करता है। शंकराचार्य ने ब्रह्म की अद्वितीयता और जगत् में माया की पराधीनता के सिद्धांत के माध्यम से लोक संस्कृति के विकास को – एक नई दिशा दी। उनका मानना था कि लोगों को अपने आदर्शों, विचारों और कृतित्व में आत्म–समर्पण करने की आवश्यकता है, ताकि वे सच्चे आत्म–ज्ञान की प्राप्ति कर सकें। उनके आध्यात्मिक विचार ने लोक संस्कृति को आदर्शों और मूल्यों की महत्वपूर्णता को समझाया और मानव जीवन को साधना और स्वाध्याय के माध्यम से उद्दीपन किया। उन्होंने जीवन की अर्थपूर्णता और आध्यात्मिकता के संबंध में लोगों को प्रेरित किया, जिससे वे अपने अंतरात्मा की खोज में लग सकें। इन आध्यात्मिक विचारों के माध्यम से आदि गुरु शंकराचार्य ने लोक संस्कृति को एक ऊँचे स्तर पर उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए प्रेरित किया और उन्हें सच्चे स्वयं के प्रति जागरूक किया। उनके आध्यात्मिक विचार ने लोक संस्कृति को एक साधनात्मक और मानवता को समर्पित दिशा में मार्गदर्शन किया, जिससे समाज का समृद्धि, सामंजस्य और आदर्श समृद्धि हो सके।

लोक संस्कृति एक सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रवृत्ति को दर्शाती है जो किसी विशिष्ट क्षेत्र, समुदाय या सामुदायिक समूह के लोगों की जीवनशैली, संवेदना और सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिष्ठान करती है। यह संस्कृति लोगों के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाली भावनाओं, आदर्शों, और संविदानों का प्रतिनिधित्व करती है। लोक संस्कृति में शामिल होने वाले तत्वों में भाषा, साहित्य, कला, संगीत, नृत्य, राजनीति, धार्मिकता, आदि शामिल हो सकते हैं। यह संस्कृति जीवन की विभिन्न पहलुओं को समर्थन देती है और एक सामाजिक समूह के अंतर्निहित आदर्शों, मूल्यों और अरूपों की पहचान कराती है।

लोक संस्कृति विविधता को प्रोत्साहित करने की क्षमता रखती है, क्योंकि यह अलग–अलग समुदायों और परंपराओं के विशिष्ट अंशों को सम्मिलित करती है। यह एक समाज की सांस्कृतिक पहचान की मान्यता करती है और उसके सदस्यों को एक–दूसरे के साथ संवाद करने और आपसी सहमति पर पहुंचने की क्षमता प्रदान करती है। लोक संस्कृति एक समाज की अद्वितीयता, समृद्धि और सामाजिक साहित्यिक एवं कला की विविधता को दर्शाती है। यह एक समाज के लोगों की भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार रूचिकर रूप में विकसित होती है

और उनकी पहचान में मदद करती है। आदि गुरु शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत ने मानवता को आत्म–समर्पण, आदर्श जीवन, और असलीता की प्रतिष्ठा की दिशा में मार्गदर्शन किया। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार आज भी धार्मिकता, दार्शनिकता, और मानवता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार लोक संस्कृति और अद्वैत वेदांत दोनों ही भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को परिपूर्ण करते हैं और एक समृद्ध, समरस और उत्कृष्ट समाज की नींव रखते हैं। यह दोनों ही धाराएं मानवता की महत्वपूर्ण मूल्यों को प्रोत्साहित करती हैं और उसे उच्चतम आदर्शों की ओर अग्रसर करती हैं।

ललित कलाएं विशेष रूप से भारतीय कला और संस्कृति की महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और ये अद्वैत सिद्धांत के विचारों को अपने आकृति, रंग, गीत, और नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। यह आध्यात्मिकता और आदर्शों के साथ साथ एकता और अद्वितीयता की भावनाओं को भी प्रकट करती हैं। अद्वैत सिद्धांत के विचार ललित कलाओं में निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत हो सकते हैं– रंग और रूपों का एकता –ललित कलाओं में रंग, रूप और आकृतियों की एकता का प्रतीक होते हैं। यह अद्वैत सिद्धांत की भावना को प्रकट करता है कि सभी वस्तुएं एक ही आदर्श से उत्पन्न होती हैं और उनका मूल सामान्य होता है। गीत और ध्वनि का 'मिलन– गीत और संगीत भी अद्वैत सिद्धांत के विचारों को प्रकट करते हैं। यह दिखाता है कि विभिन्न ध्वनियों और स्वरों का एक मिलन होता है जैसे कि ब्रह्म की एकता में सामाजिक विविधता है। नृत्य की अद्वितीयता– नृत्य ललित कलाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और यह आद्यतन और आनंद की भावनाओं को प्रकट करता है। नृत्य के माध्यम से भी यह दिखाया जा सकता है कि सभी व्यक्तियों की आत्मा में अद्वितीयता होती है। मानव–शरीर का प्रतिष्ठान– ललित कलाओं में मानव–शरीर का विविधता और सौंदर्य का प्रतिष्ठान होता है। यह दिखाता है कि हर व्यक्ति की अद्वितीयता और आदर्श भी उनके शारीर

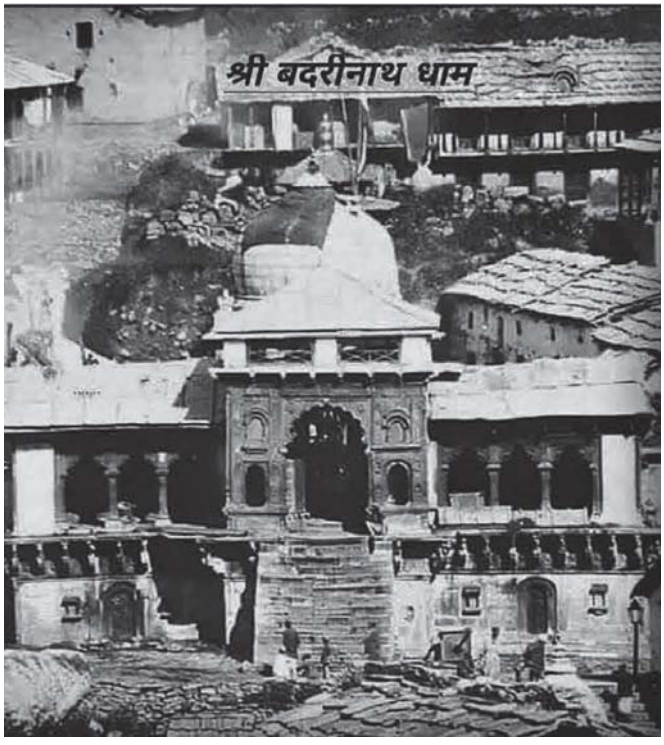

में होते हैं, जिन्हें स्वागत किया जाना चाहिए। ललित कलाएं अद्वैत सिद्धांत के अनुसार एक अद्वितीय, विविधता से भरपूर और सच्चे स्वरूप को प्रकट करने का माध्यम होती हैं। ये कलाएं लोगों को उनकी असीमत आदर्शों की ओर प्रेरित करती हैं और उन्हें आत्म-साक्षात्कार की दिशा में मार्गदर्शन करती हैं।

लोक संस्कृति, अद्वैत और ललित कला तीनों ही महत्वपूर्ण विषय हैं, जो भारतीय सांस्कृतिक विरासत के अद्वितीय पहलु हैं। ये तीनों विषय साथ-साथ एक संबंध बनाते हैं और मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को समर्थन देते हैं। लोक संस्कृति- सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रवृत्ति है, जो किसी समुदाय या सामाजिक समूह के आदर्शों, विशिष्टताओं और जीवनशैली का प्रतिष्ठान करती है। यह संस्कृति समाज के सदस्यों के अंतर्निहित धरोहर, मूल्यों, आदर्शों और सांस्कृतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। अद्वैत सिद्धांत- एक दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति है, जो भारतीय वेदांत शात्र पर आधारित है। इसका मुख्य सिद्धांत है कि ब्रह्म (अद्वितीय ब्रह्म) असली और अद्वितीय सत्य है और जगत् में माया की पराधीनता होती है। अद्वैत सिद्धांत के अनुसार, आत्मा और ब्रह्म में कोई भिन्नता नहीं है और सभी जीव ब्रह्म के अद्वितीय अंश हैं। ललित कलाएँ-भारतीय संस्कृति के एक महत्वपूर्ण हिस्से हैं जो कला, संगीत, नृत्य, चित्रकला, शास्त्रीय संगीत और साहित्य में दिखाई देती हैं। ये कलाएँ भारतीय धार्मिकता, सांस्कृतिक आदर्शों और आत्म-विकास के प्रतीक होती हैं और आत्मा की उच्चतम अद्वितीयता को दर्शाती हैं। इन तीनों महत्वपूर्ण विषयों का संयोजन भारतीय संस्कृति की गहराईयों में ज्ञान की भावना को उत्तेजित करता है। अद्वैत सिद्धांत के माध्यम से लोग अपने आत्मा की खोज में प्रेरित होते हैं, जो उन्हें आत्म-समर्पण और आदर्श जीवन की दिशा में मार्गदर्शन करता है। ललित कलाएँ इस आध्यात्मिक दृष्टि को सहायक रूप में प्रस्तुत करती हैं और लोगों को आत्मा के साथ एकता की प्राप्ति के मार्ग में मदद करती हैं।

लेखक- सहायक आचार्य,
ललित कला विभाग,
देवभूमि उत्तराखंड विश्वविद्यालय, देहरादून.
9454224200

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

- संपादक

मीरा की भक्ति में दांपत्य का अलौकिक स्वरूप

डॉ. विदुषी शर्मा

मीराबाई अपने आप में एक संपूर्ण ग्रंथ है जो समग्रता लिए हुए है प्रेम की, करुणा की, समर्पण की, वैराग्य की, भक्ति की, चेतना की, दर्शन की, एकांत की, त्याग की, आत्म सम्मान की, समाजोत्थान की, आत्मोत्थान की, आत्म परंपरा की, निर्लिप्तता की, विश्वास की, तेजस्विता की, निरंतरता की, स्थितप्रज्ञता की, समता की और अनंत की। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है?

मीरा बाई का चरित्र ऐसा है कि जिसके जीवन के हर मोड़ पर, जीवन के हर पहलू पर शोध की अनेकानेक संभावनाएं प्रस्तुत है। उनका संपूर्ण चरित्र ऐसा है जो इतने वैविध्य से परिपूर्ण है, इतनी विशेषताओं से पूर्ण है कि यह समकालीन ना होकर, तत्कालिक ना होकर सर्वकालिक है Timeless है। यानि इनकी चारित्रिक विशेषताएं उस काल में भी उतनी ही प्रासंगिक थी जितनी आज के युग में कही जा सकती हैं । बल्कि यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आज के युग में मीराबाई को सब समझना, समझाना अधिक महत्वपूर्ण है। संगोष्ठी के सभी उपविषय एक दूसरे से संबंधित हैं और अन्योन्याश्रित भी। यह मीराबाई के चरित्र के विभिन्न बिंदु कहे जा सकते हैं जिनका कि जिक्र किए बिना किसी एक विषय पर शोध पूर्ण हो ही नहीं सकता। इसलिए हम भी प्रस्तुत विषय पर अपना शोध (प्रयास) प्रस्तुत करते हैं क्योंकि पूर्णता केवल ईश्वर में व्याप्त है। हम तो केवल पूर्णता को प्राप्त करने की ओर निरंतर अग्रसर हैं और कलयुग में इतना ही काफी भी है।

मीरा बाई और कृष्ण

मीराबाई के चरित्र को कुछ पन्नों पर उतार पाना संभव नहीं है क्योंकि वह दिव्यात्मा थी जो पूर्व जन्म के प्रेम को लेकर उत्पन्न हुई। इस जन्म में भी केवल प्रेममयी जीवन जिया तथा अंत मे एक दिव्य ज्योति बनकर अपने आराध्य देव में ही समा गई। उनकी देह भी इस लोक पर दिखाई नहीं दी। वे एक ज्योति स्वरूप बनकर देखते ही देखते भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति के साथ ही एकाकार हो गई। ऐसी दिव्य विभूति, पवित्र आत्मा के बारे में लिखना अपने आप में एक कठिन कृत्य है फिर भी हम प्रयास करेंगे।

परिचय-

मीरा बाई के प्रारंभिक जीवन में ही ''आलौकिक दांम्पत्य जीवन'' की नींव।

मीराबाई का जन्म एक संपन्न परिवार में 1573 ईस्वी में चौकड़ी नामक गांव में हुआ था। बचपन से ही शांत स्वभाव की मीरा ने एक दिन एक बारात को देख रही थी कि अपनी मां से पूछने लगी कि- ''माँ ये बारात क्या होती है? ये जो घोड़ी पर बैठा है वो कौन है? ये कहां जा रहे हैं? दुल्हन कौन होती है? विवाह क्या होता है''? आदि आदि। तब उनकी माँ ने उन्हें समझाया कि सभी का विवाह होता है, एक दिन तुम्हारा भी होगा, तुम्हारा भी दूल्हा आएगा, मेरा भी विवाह हुआ था, ऐसे सभी का होता है। इतने पर नन्ही मीरा हठ कर बैठी कि माँ मेरा तो अभी विवाह करो। ''हट पगली; ऐसे थोड़ी न होता है विवाह। उसके लिए उचित समय और दूल्हा भी तो जरूरी है''।

''तो मां मेरा दूल्हा कहां है, ला दो न मेरा दूल्हा, मुझे नहीं पता, मुझे अभी चाहिए मेरा दूल्हा''। मीरा ने कहा । इतना कहकर वह बहुत समझाने पर भी नहीं मानी तो मां ने समझाया कि- ''बेटा दूल्हा समय आने पर ही आता है, उसी के साथ कन्या का विवाह होता है फिर उसके बाद सारी उम्र उसी के साथ रहना होता है,उसी की बन के रहना होता है, सभी नाते रिश्ते पीछे छूट जाते हैं, एक यही रिश्ता, पति पत्नी का रिश्ता ही रह जाता है, यही धर्म बन जाता है, सभी स्त्रियों को यही धर्म निभाना पड़ता है, इसी

'तथाकथित' दूल्हे के साथ ही जन्म – मरण का रिश्ता निभाना पड़ता है, यानी पति की मृत्यु के बाद 'सती' होना पड़ता है''। (ज्ञातव्य है कि जब भारत में सती प्रथा का चलन था।)

तुलसीदास जी ने भी कहा है–

सादर सास पति पद पूजा
नारी धर्म कछु और न दूजा।

इन उदाहरणों को देकर मां ने तत्कालिक स्त्री के जीवन की मर्यादाएं बताई, उसकी व्यवस्थाएं, उसकी विडम्बनाएं,उसकी पराधीनताएं, उसकी विवशताएँ इत्यादि सभी का उल्लेख संक्षिप्त रूप में कर दिया। फिर इस पर भी छोटी बालिका मीराबाई के बार–बार हठ (बाल हठ के बारे में हम सब जानते हैं) ''मेरा दूल्हा अभी ला कर दो, मुझे अभी देखना है, मुझे अभी चाहिए अपना दूल्हा'' तो माँ ने श्री कृष्ण जी की मूर्ति को उसके हाथ में थमा कर कहा ''यह रहा तुम्हारा दूल्हा। बस; अब ठीक है''।

माँ ने सोचा कि बच्ची है बहल जाएगी, अभी कुछ ही समय में भूल जाएगी। परंतु मीरा बाई के कोमल हृदय पर तो यही छाप पड़ गई कि–

''अब यही मेरा दूल्हा है, यही मेरा सर्वस्व है, मुझे इसी के साथ जीना है, इसी के साथ मरना है। माँ के कहे अनुसार मन, वचन कर्म से मुझे इसी के साथ जीवन यापन करना है और मन मस्तिष्क में कभी भी किसी और पर पुरूष का ख्याल भी आने नही देना है''।

मीराबाई की मां ने परोक्ष रूप में स्त्रीजाति की स्थितियों का वर्णन किया कि हमारे समाज में नारी का अपना स्वतंत्र कोई अस्तित्व है ही नहीं। वह सदैव पराधीन ही रहती हैं। पहले अपने माता–पिता के और फिर अपने पति के आधीन।उसकी स्वतंत्रता (वैचारिक, मानसिक, शारीरिक) उसकी इच्छाएं, उसकी विशेषताएं,उसकी प्रतिभाएं आदि कोई मायने नहीं रखती। पति कैसा भी हो उसे सारी जिंदगी उसी के साथ जीवन यापन करना ही होगा। इसके अतिरिक्त उसके पास कोई विकल्प है ही नहीं, और यदि पति की मृत्यु पहले हो जाती है तो ''सती'' होना ही होगा यानी ना तो जीते जी और ना ही जीवन के बाद उसकी इच्छा का कोई महत्व है। यह स्थिति सभी नारियों की थी चाहे वह उच्च कुल की हों, मध्य कुल की या फिर निम्न कुल की। (बल्कि उनकी स्थिति तो और भी बदतर थी) यानी मीराबाई की मां ने परोक्ष रूप से ही सही अपने माध्यम से नारी जाति की स्थिति का, नारी जीवन की यथार्थता का चित्रण किया है। तो इसी घटना से हुआ मीराबाई के दाम्पत्य जीवन का शुभारंभ।

दांपत्य के आधारों का मीराबाई द्वारा पूर्णता निर्वहन––

हमारे सत्य सनातन धर्म में ''विवाह'' एक नैतिक कर्तव्य है तथा गृहस्थ आश्रम एक अनिवार्य कर्म। इसी के साथ यह पितृ ऋण से मुक्त होने का एकमात्र उपाय भी माना गया है। अर्धनारीश्वर इस बात का प्रमाण है कि दांपत्य जीवन कितना आवश्यक है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त 10/85 अथर्ववेद में 14/1, 7/37 तथा 7/38 सूक्त में पाणिग्रहण संस्कार, मनुस्मृति इत्यादि कई महत्वपूर्ण ग्रंथों में दांपत्य जीवन का विस्तार से वर्णन मिलता है। श्री राम जी और सीता जी तथा श्री विष्णु भगवान और लक्ष्मी जी आदर्श दंपत्ति माने गए हैं क्योंकि इन्होंने दांपत्य जीवन के आधारभूत 7 सोपानों का पूर्ण निर्वाह किया था। विवाह के लिए आवश्यक 7 फेरों की तरह ही इन 7 सोपानों को ही वर्तमान में भी दांपत्य जीवन का आधार माना गया है। अनादि काल से ही सफल दांपत्य का आधार यह 7 सूत्र माने जाते रहे हैं। यह हैं –

1. **संयम।**
2. **संतुष्टि।**
3. **संतान।**
4. **संवेदनशीलता।**
5. **संकल्प।**
6. **सक्षमता (शारीरिक और मानसिक)।**
7. **समर्पण**

इनके अलावा दांपत्य जीवन का कोई आधार है ही नहीं और मीराबाई ने इन सभी आधारों का पूर्ण जीवन, बड़ी तन्मयता से निर्वाह किया। वे इस क्षेत्र में अपवाद भी कही जा सकती हैं कि उनका पति साकार रूप में न होकर निर्गुण, निराकार, सर्वशक्तिमान, परब्रह्म है जो कि वास्तविकता है। परंतु वे इसे सगुण–साकार मानती हैं तथा पूर्ण प्रेम के रंग में रंगी हैं। अब हम इन सभी सात दाम्पत्य आधारों का मीराबाई के चरित्र के साथ क्रमश: समायोजन करते हुए पृथक – पृथक वर्णन करते हैं।

1. संयम

संयम दाम्पत्य जीवन का प्रथम सोपान या चरण है। अपनी भावनाओं का, अपनी इच्छाओं का, अपनी सम्वेदनाओं का संयम। यहां पर मीराबाई पूर्णता संयमित रहते हुए भी अपने आप में ही विचरण करती है। यानी वे संयमित तो हैं, अनुशासित भी है, परंतु वह किसी भी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करती। वह स्वच्छंद घूमती हैं, भजन गाती हैं, साधु संतों के साथ रहती हैं, यानी संयमित होकर भी अपनी इच्छाओं का, अपनी भक्ति

का, अपने प्रेम का दमन नही करती । परंतु यह भी सत्य है कि वे इसका प्रदर्शन भी नही करना चाहती बल्कि ये तो स्वयं ही प्रदर्शित हो जाता है क्योंकि वह इस लोक दिखावे से बहुत ऊपर उठ चुकी थी। इसी भक्ति के चलते वह वृंदावन तथा द्वारिका भी गई। इसी दौरान उन्होंने तुलसीदास जी को एक पत्र भी लिखा जो इस प्रकार था --

स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण दूषन- हरन गोसाई।
बारहिं बार प्रनाम करहूँ अब हरहूँ सोक- समुदाई।।
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु- सग अरु भजन करत माहिं देत कलेस महाई।।
मेरे माता- पिता के समहौ, हरिभक्तन्ह सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई।।

मीराबाई के पत्र का जबाव तुलसी दास ने इस प्रकार दिया –

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो नर तजिए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेहा।।
नाते सबै राम के मनियत सुह्मद सुसंख्य जहाँ लौ।
अंजन कहा आँखि जो फूटे, बहुतक कहो कहां लौ।।

मीराबाई के संपूर्ण चरित्र में ही अलौकिकता दर्शनीय है। इस प्रकार वे इस प्रथम सोपान के निर्वाह पर खरी उतरती हैं।

2. संतुष्टि

हम सांसारिक लोग केवल दैहिक,शारीरिक संतुष्टि को ही महत्व देते हैं। परंतु मीरा बाई अपने दाम्पत्य जीवन में अपवाद स्वरुप ही कही जा सकती हैं क्योंकि उनका विवाह तो उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज जी से हुआ था । परंतु उन्होंने उसे पति माना ही नहीं और जब लोगों ने कहा कि तेरा पति ही तेरा परमेश्वर है तो मीराबाई ने कहा कि ''हां आपने सही कहा कि परमेश्वर ही मेरा पति है''।

उदयपुर के महाराणा से उनका विधिवत विवाह हुआ था। परंतु उन्होंने गृहस्थ जीवन को कभी अपनाया ही नहीं। उनका मानना था कि संसार में श्री कृष्ण के अलावा कोई अन्य पुरुष है ही नहीं ।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई,
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।

सगुण भक्ति धारा की कवयित्री होने के नाते वे कृष्ण भक्ति में इतनी तल्लीन रहती थी कि उन्हें इसी में ही हर प्रकार की संतुष्टि मिल जाती थी। वे इस संसार की, इस शरीर की संतुष्टि से ऊपर उठ चुकी थी ।इस प्रकार आलौकिक दाम्पत्य का दूसरा आधार भी सिद्ध हो जाता है।

3. संतान

दांपत्य तथा सृष्टि का नियम है संतान प्राप्ति, संतानोत्पत्ति। परंतु पूर्व में भी हमने कहा क्योंकि मीरा का गृहस्थ, दांपत्य जीवन केवल कल्पना, स्वप्न तथा अलौकिकता पर आधारित था, इसलिए संतानोत्पत्ति संभव ही नहीं थी। लेकिन उन्होंने उत्पन्न किया निष्काम प्रेम, अटूट भक्ति, निर्लिप्तता, निर्विकार स्वरूप, कृष्ण से एकाकार होने का एकमात्र उपाय, केवल अटूट भक्ति और पूर्ण समर्पण । दीवानगी की हद तक प्रेम का एक सजीव उदाहरण–

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति, साँवरि, सुरति नैना बने विसाल।।
अधर सुधारस मुरली बाजति, उर बैजंती माल।
क्षुद्र घंटिका कटि- तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।

इस प्रकार मीरा बाई ने संतान को उत्पन्न न करके उस ईश्वर की सभी ''संतानो'' के लिए मुक्ति और मोक्ष का प्रामाणिक रास्ता बताया। इस प्रकार दिव्य दाम्पत्य का तीसरा सोपान भी मीरा बाई द्वारा पार कर लिया जाता है।

4. संवेदनशीलता

मीराबाई के चरित्र में जो कोई भी विशेषता है वह उच्च कोटि की है और अपने आप में एक मिसाल है। उनमें इतनी अधिक संवेदनशीलता है कि अपनी सुध-बुध खो कर भी दीवानों की तरह अपने आराध्य देव, अपने प्रियतम, अपने पतिदेव को चाहना और यह जानते हुए कि वह साकार रूप में इस जीवन में कभी नहीं मिल पाएंगे तो भी श्री कृष्ण के प्रति उनकी संवेदनशीलता में एक क्षण भी कोई कमी नहीं आती है। वह साधु संतों से भी मिलती हैं परंतु उनका मन केवल श्री कृष्ण जी के चरणों में ही रमा है। वह साधु संगति को, भजन कीर्तन को, अपने आराध्य तक पहुंचने का सुगम और सरल मार्ग समझती हैं /बताती हैं। उनकी संवेदनशीलता का चरम यह है कि वह यह मानती हैं कि श्री कृष्ण के अलावा कोई अन्य पुरुष इस धरती पर है ही नहीं और वही मेरे पति हैं, यानि मनसा, वाचा, कर्मणा के आधार पर पूर्ण एकाधिकार। इस प्रकार मीरा बाई द्वारा आलौकिक दाम्पत्य चौथा सोपान भी सफलता पूर्वक पार कर लिया गया है।

5. संकल्प

दांपत्य जीवन का पाँचवा आधार है 'संकल्प' यानि अपने जीवन साथी के साथ पूर्ण जीवन का निर्वाह करने का संकल्प। परिस्थितियां चाहे अनुकूल हों या प्रतिकूल। यह संकल्प अडिग

रहना चाहिए चाहे वो स्त्री हो या पुरूष। मीराबाई पर भी कितनी ही मुसीबत आई, उन्हें जहर दिया गया, इतनी शान और शौकत भरी जिंदगी से दूर कर दिया गया, घर से निकाल दिया गया, कांटों के बिस्तर पर सुलाया गया, किं बहुना कितने ही शारीरिक और मानसिक कष्ट पहुंचाए गए तब भी मीराबाई ने अपना संकल्प दृढ़ रखा कि मैं तो केवल ''हरिप्रिया'' ही बन कर रहूंगी ।स्वयं मीराबाई के ही शब्दों में–

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
सांप पिटारा राणा भेज्यो,मीरा हाथ दियो जाय।।
न्हाय धोय जब देखण लागी,सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या,अमृत दीन्ह बनाय।।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो गई अमर अंचाय।

उनके पति की मृत्यु के बाद सभी ने उन्हें वैधव्य धारण करने के लिए कहा और ''सती'' होने के लिए प्रेरित किया तो उन्होंने जवाब दिया कि–

''मेरे पति को कभी मृत्यु प्राप्त हो ही नहीं सकती ।वो तो अजर और अमर हैं। इसलिए मैं आजीवन सदा सुहागन ही रहूंगी तथा अपना हार श्रृंगार ऐसे ही कायम रखूंगी''।

यह है आस्था का अटूट बंधन, अटूट संकल्प जो हमें परोक्ष रूप से प्रभु भक्ति की शक्ति, विश्वास की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर करता है। मीरा ने अपने जीवन का आदर्श स्वयं जीकर लोगों को बताया न कि केवल उपदेश के द्वारा ।उनका यही गुण उन्हें दूसरों से भिन्न करता है। इस प्रकार दैविक दांपत्य का पांचवां सोपान भी मीरा बाई द्वारा बड़ी दिव्यता से पार कर लिया जाता है।

6. सक्षमता

हम लौकिक जीव, सांसारिक लोग 'सक्षमता' के पर्याय के रूप में केवल शरीर को ही प्रथमिकता देते हैं। हम लोग युवावस्था में विवाह के बंधन को मान्यता प्रदान करते हैं,और इसी नियम का निर्वाह भी करते हैं, क्योंकि सांसारिक धर्म में प्रवृत्त होने के लिए, संतानोत्पत्ति के लिए, गृहस्थ धर्म निभाने के लिए, अपने परिवार के उचित पालन–पोषण के लिए, शारीरिक व मानसिक शक्ति दोनों ही अनिवार्य है। युवावस्था में यह दोनों अपने आप चरम पर होती है। (हाँलाकि मानसिक शक्ति, समय और अनुभव के साथ–साथ अधिक परिपक्व, गंभीर एवं प्रबल होती जाती है, परंतु दांपत्य निर्वाह हेतु मानसिक क्षमता की जितनी पर्याप्त आवश्यकता होती है, वह युवावस्था में ही प्राप्त हो जाती है।)

मीरा बाई के पति साकार रूप में नहीं हैं (जिनकों वे अपना पति मानती हैं अर्थात श्रीकृष्ण जी)। अत: वे इस सांसारिक धर्म में प्रवृत्त हुई ही नहीं। उनका प्रेम, उनकी भक्ति, उनका समर्पण, उनका कैवल्य, इस देह से कहीं अधिक है। वो आत्मिक बंधन में बंधी हुई हैं तथा अपने शरीर से केवल नित्यकर्म का ही कार्य करवाती हैं। वह एक दिव्यात्मा थी जो संसार को एक दिशा, एक उदाहरण प्रदान करने के लिए आई थी कि देखो प्रेम और प्रेम विवाह ऐसे भी होते हैं जिसमें आकर्षण भी है, बंधन भी परंतु शरीर है ही नहीं,यानी आत्मा और परमात्मा का एकाकार हो जाना। वह एक ज्योति ही थी जो अनंत ज्योति में ही समा गई और संसार को एक मिसाल देकर चली गई।

इस तरह मीरा बाई दिव्य दांपत्य के छठे सोपान को भी सफलता पूर्वक प्राप्त कर लेती हैं।

7. समर्पण

दांपत्य जीवन का अंतिम आधार है समर्पण। पूर्ण समर्पण का पर्याय ही यदि मीराबाई को माना जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इससे अधिक समर्पण कहां होगा ? लोकलाज की परवाह किए, संसारिक बंधनो को स्वीकार किए बिना, इस संसार में रहते हुए भी उस अदृश्य ''दिव्यता'' का सहारा लेकर, केवल और केवल उसी की होकर पूर्ण समर्पित जीवन जिया और अंत में अपने आराध्य, अपने पति में ही समर्पित हो गई, उन्हीं में ही समां गई ।इस से अधिक समर्पण भाव कहां देखने को मिल सकता है जिसमें शारीरिक संतुष्टि का भाव ही उत्पन्न नहीं है। वे केवल प्रेम तथा भक्ति में ही संतुष्ट हैं, प्रसन्न हैं। मीराबाई ने किसी अन्य का साथ पूरी जिंदगी लिया ही नहीं। केवल श्रीकृष्ण का ही साथ लिया, उसी के हाथ पूरा जीवन सौंप दिया। यह हम सभी सांसारिक जीवों के लिए यानी गृहस्थी लोगों तथा भक्तों के लिए एक संदेश है कि जब प्रेम, भक्ति और समर्पण करो तो ऐसा करो कि किसी अन्य की आवश्यकता ही ना हो। एक बार उस प्रभु को अपना बना लो तो जीवन भर उसे ना छोड़ो। वास्तव में यह सभी बातें सत्य होते हुए भी, स्वीकार्य होते हुए भी हम सबको सांसारिक बंधनों को आदर करना ही पड़ता है, नियमों का पालन, मर्यादाओं का पालन ना चाहते हुए भी करना ही पड़ता है। परंतु मीराबाई इन सबसे अलग एक मिसाल हैं और उनका जीवन सभी के लिए चाहे वह भक्त हों, संसारिक जीव हों, सभी के लिए अनुकरणीय है,अभिनन्दनीय है।

इस प्रकार हमने देखा की किस तरह से मीरा बाई की भक्ति

में दाम्पत्य का आलौकिक स्वरूप दिखाई देता है। केवल आवश्यकता है तो उस दिव्यता को देख सकने की, महसूस कर सकने की और उसका आनंद लेने की तथा इसी के साथ – साथ उससे अभिप्रेरित होने की और यदि संभव हो तो उसका अनुकरण करने की।

निष्कर्ष :

वास्तव में देखा जाए तो मीराबाई का संपूर्ण जीवन, उनका चरित्र, उनकी भक्ति, उनका काव्य (जो की कवयित्री ना होते हुए भी उन्होंने रचा जिसमें प्रमुख हैं– बरसी का मायरा, गीत गोविंद टीका, राग गोविंद, राग सोरठ के पद

जो सगुण भक्ति धारा के स्तंभ माने जा सकते हैं एवं भक्तिकाल के कवियों में प्रमुख स्थान पाती हैं मीराबाई) उनका दर्शन, उनका चिंतन उनका वैराग्य, उनकी विरह, उनका प्रेम, उनका आकर्षण, उनका दांपत्य, उनका समर्पण, और सबसे महत्वपूर्ण उनका अनन्त में ही अंत यानि उसी में ही सशरीर समा जाना। यह सभी कुछ उच्च कोटि का है।

हमने यहां केवल एक उपविषय पर उनके जीवन का एक पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परंतु यदि सभी उपविषयों (29) को लेकर भी लिखा जाए तो उनका चरित्र उन सभी में भी नहीं समा पाएगा । ऐसा ही अद्वितीय है मीराबाई का जीवन दर्शन, उनकी भक्ति में दांपत्य का आलौकिक स्वरूप ।

ग्रंथानुक्रमणिका

1. विवाह की संसिद्धि।
2. मीराबाई का कृष्ण काव्य माधुर्य– मुंशी देवी प्रसाद।
3. संत मीराबाई और उनकी पदावली– बलदेव वंशी।
4. भक्तिमतीन मीराबाई जीवन और काव्य– लाल बहादुर।
5. नवभारत टाइम्स (स्पीइकिंग ट्री)।
6. संत प्रवचन (अवधेशानंद गिरी)।
7. ओशोधारा।
8. कल्याण (गीताप्रेस गोरखपुर)।
9. मीरा के पद।
10. इंटरनेट साइट।

लेखिका–
(गोल्डन बुक, हार्वर्ड बुक, किंग्स बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर)
अकादमिक काउंसलर, IGNOU
शोध निर्देशक, JJT University
OSD, NIOS(नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओपन स्कूलिंग)
मो. 9811702001
ईमेल –drvidushisharma9300@gmail.com

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क– ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक–पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/– अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

आलेख

लोक संगीत में अद्वैत

डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य

लोक संस्कृति में 'लोक' और 'संस्कृति' दोनों महत्वपूर्ण हैं। लोक जितना व्यापक है उतनी ही व्यापक संस्कृति है। लोक का अर्थ देखने से है। मनुष्य जितनी दूर तक बाहर और अपने भीतर देख सकता है, वह 'लोक' है। यह देखना भी ऐस्त-वैस्त नहीं हैं, समस्त व्यष्टि और समष्टि को देखना है। जड़-चेतन, सारा चराचर जगत जहाँ-जहाँ तक समाया है, यानी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड लोक के भीतर समाहित है। वेद-व्यास ने लोक के यथार्थ रूप से देखने वाले व्यक्ति को व्यक्ति माना है।

''प्रत्यदर्शी लोकनां सर्वदर्शी भुवेन्नर''

जो लोक को स्वयं अपनी आँखों से देखता है, वहीं लोक व्यक्ति को समझ सकता है। तीन लोक आकाश, पृथ्वी और पाताल लोक की कल्पना, अनेक मिथ-कथाओं में मिलती है। सात लोक चौदह भुवन का उल्लेख अनेक बार कथाओं में आता हैं। पृथ्वी को 'पृथ्वी लोक' की संज्ञा दी जाती है। लोक का रूढ़ अर्थ संसार हैं लेकिन यह अर्थ लोक को बहुत संकुचित कर देता है, जबकि लोक का अर्थ बहुत विशाल है। लोक समूचे जीव, प्रकृति, जीवन, स्वर्ग-नर्क, कल्पना-यथार्थ का नाम है। लोक सृष्टि के अंदर और बाहर फैला है। लोक सब जगह है। मनुष्य के आस-पास लोक ही होता है।

लोक और परम्परा तथा लोक संस्कृति, भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। लोक परम्परा के गीत, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र और शिल्प परम्परा घनिष्ठता से जुड़े हैं। लोक-आस्था, लोक-मूल्यों, अनुष्ठानों धार्मिक, अध्यात्मिक पद्धतियों, लोक देवताओं, प्रकृति तथा पर्व-त्यौहारों के अवसर को समारोहित करने वाले कला संसार से भारतीय 'एकता' का रहस्य और सुदृढ़ सूत्र जो रहने और जीने की शताधिक विविधताओं में प्रकट होता है।

मनुष्य और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रहा है, यानी ये दोनों एकात्मक भाव के प्रतिक हैं, इसलिए हमारी भारतीय लोक संस्कृति, में लोक-संगीत का अत्यन्त महत्व है। शास्त्रीय दृष्टि से 'संगीत', विजय मे 'सं' यानी संरचना, नृत्य, मुद्रा, 'गीत' से गीत तथा 'त' में ताल समाहित हैं, यानी 'संगीत' शब्द में गायन, वादन, नृत्य तीनों का समावेश हैं।

लोक गीतों का इतिहास उतना ही प्राचीन है। जितना मानव का इस धरा पर अवतरण। लोक गीत अपने मूल रूप में आदि-मानव का उल्लासमय संगीत है। समस्त जन-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएं पद्य-बद्ध होकर व्यक्त हुयी हैं, उन्हीं को 'लोकगीत' नाम दिया गया है। आश्चर्य जनक किन्तु सुखद है कि, मानव-हृदय में उठने वाली मूल भावनाएं समान ही होती हैं, और वहीं भाव जब गीत के माध्यम से सुखरित होते है, तो वह लोक जीवन का अभिन्न अंग बन बन जाता है।

लोक गीतों में मनुष्य के जीवन-मरण, मंगनी, विवाह, जनेउ, मुण्डन, पर्व-त्यौहार, हर्ष-उल्लास, हास-परिहास, सुख-दु:ख, अचार-विचार, लोक-व्यवहार, प्रथाए, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, धर्म-कर्म, अध्यात्म, अतीत और वर्तमान के सारे संस्कार, सहज रूप से मिलते हैं।

लोक गीतों में अद्‌भुत जीवन्तता है। जीवन की समस्त रागात्मक प्रवृत्तियों का सांगोपांग चित्रण लोकगीतों में हुआ है। यह भी कम आश्चर्य नहीं है कि बार-बार गाये जाने पर भी इन गीतों की ताजगी में कोई फर्क नहीं पड़ता। लोकगीत शब्द और स्वर के दोहराव से संचालित होते हैं। दोहराव लोकगीतों का गुण है, उसकी शक्ति हैं, जिसके कारण नयी पीढ़ी सरलता से स्मृति-कोश में गीत ग्रहण करने में सक्षम होती है। पीढ़ि दर पीढ़ी गाये जाने वाले ये लोकगीत मानस में निरन्तर हर्षोल्लास का मन्त्र फूंकते रहते हैं।

लोक गीत मन की सहज और सुन्दर अभिव्यक्ति है। लोक गीत लोक मानस की धड़कन और अनुगूंज है। लोकगीतों में उस लोकांचल की संस्कृति के दर्शन होते हैं जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विविध अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीतों की सत्ता को हम स्वीकार करते हैं। लोक गीतों की संजीवनी ने ही भीषण विभीषिकाओं से संत्रस्त नारी जीवन पर विषाद और अवसाद का ग्रहण नहीं लगने दिया। लोकगीतों का मनोविज्ञान यहीं है कि, हंसते-गाते, जीवन को भरपूर जिया जाये संवेदन, सहानुभूति, एवं समरस्ता की अन्त धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित होती रहें और

विषम से विषय परिस्थितियों में भी भाव सुरभि अबाधित न हो। लोक वाचिव परम्परा में पर्व और और संस्कार से संबंधित गीत जितने अधिक मात्रा और व्यापक रूप में गाये जाते हैं, उतने कोई भी अन्य गीत नहीं गाये जाते हैं, लोक साहित्य भण्डार में लोक गीतों की संख्या अनगिनत है। मौखिक और मौलिक रूप से गाये जाने वाले असंख्य लोकगीत गीतों का स्थान वाचिक परम्परा में सर्वोच्च और महत्वपूर्ण है। लोकगीत लोक संस्कृति के समग्र संवाहक है। लोक गीत किसी जाति समूह और देश की लोक संस्कृति के परिचय होते है, उनमें जीवन का प्रत्येक धड़कन का एहसास देखा जा सकता है।

लोक में गीत के माध्यम से हृदय की बात की बात कहने की परिभाषा में सबसे अधिक प्रिय और संप्रेणीय रही है, इसलिए गद्य की बजाय पद्य को जन-समुदाय ने हर समय में अपनाया है।, इसलिए लोक गीत मनुष्य के हृदय में सबसे अधिक नजदीक पड़ता है। लोक समूहों में भी हृदय की अनुभूतियों को गीत-संगीत के मध्यम से अभिव्यक्त,करने की अनुभूतियों को गीत-संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करने की परम्परा उनके विकास के प्रारंभिक स्तरों में पाई जाती है।

लोकगीत जीवन का स्फुट काव्य है। लोकगीत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होते। लोकगीत समूहगत रचनाशीलता का परिणाम है। लोकगीतों में रचयिता और रचनाकाल की कोई गणना नही होती। कितने ही अनाम रचयिताओं ने अपने नाम और काल दोनों को विगलित कर दिया है। इसलिए लोक गीत कालजयी हो गए। लोकगीत में सबसे महत्वपूर्ण जीवन की मूल सत्यानुभूति की अभिव्यक्ति का सहज साक्षात्कार होता हैं। जीवन को अखंडित रूप से देखने की दृष्टि लोकगीतों में जबरदस्त होती है। दो पंक्ति के गीत को चाहे कितनी देर गाया जा सकता है। एक छोटे से गीत, कविता शैली और भाव का उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है। किसी-किसी लोकगीत में कोरे शब्दों का दुहराव मात्र हो सकता है। गीत का आशय शब्दों की योगता से है। फिर भी लोकगीतों में काव्य गुणों को पूर्णत: नकारा नहीं जा सकता, तीव्र अनुभूति के कारण उनमें काव्य गुण प्राकृतिक रूप से आ जाते हैं, और यहीं लोकगीतों की प्रमुख विशेषता है।

लोक साहित्य की परम्परा और उसकी प्राचीनता के विषय में यदि ऐसा कहा जाये कि, यह इतनी पुरानी है, जितनी पुरानी यह मनुष्य जाति है तो, कोई अतिश्योक्ति नहीं हो सकती।

अत: अपनी विभिन्न विशेषताओं के फलस्वरूप लोक साहित्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जन संस्कृति का जैसा सच्चा, सजीव एवं निर्मल चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध हो सका है, वैसे अन्यत्र भला कब संभव है। लोक साहित्य में, लोक गीत सफल काव्य की जननी हैं।

लोकगीतों की अपनी निजी विशेषताएँ रहीं हैं, इसलिए लोक साहित्य के विद्वानों ने कहा है कि- लोकगीत मावन का उल्लासमय संगीत है। लोकगीत की सृष्टि साहित्य की सृष्टि से भी यहाँ तक कि वर्णमाला से की सृष्टि से पहले की है, यह अश्रुति का एक अभिन्न अंग है। लोकगीतों के विषय में श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि- मेरी राय में ग्राम गीत, किसी पुरूष या स्त्री विशेष की रचना नहीं है, बल्कि स्वयं प्रकृति का गान है। यह गान प्रकृति ने हृदय में बैठकर किया है, इसमें मतिष्क का मेल नहीं, इन गीतों द्वारा एक समाज की सरस्वती बोलती है। जिस तरह वेद अपौरुषेय माने जाते है, उसी तरह ग्राम गीत भी अपौरूषेय हैं।''

भारतीय लोक-समाज ने जहाँ एक ओर नृत्य की संरचनाएँ पशु-पक्षियों से प्राप्त की है, तो वादन के स्वर पेड़-पौधों, नदी के कलरव से, पशु-पक्षिओं के स्वरों से प्राप्त किए हैं। और वाद्यों में साक्षात् प्रभु का निवास माना हैं।

एक बुन्देली लोकगीत में कहा गया है कि, ''टिमकी में गणेश टिमकी में गणेश, ढ़ोलक में बैठी माँ शारदा''

एक दूसरे बुन्देली लोकगीत में माँ नर्मदा का अद्‌भुत वर्णन किया है।

''नर्मदा तो ऐसे बहे रे,
ऐसी बहे रे,
जैसे दूध की धार हो''।
''नर्मदा तो ऐसी मिली रे,
ऐसी मिली रे,
जैसे मताई और बाप हो''।।

इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि भारतीय लोकगीत हमारी लोक-संस्कृति की अक्षुण्ण धरोहर और अद्वैत -वाद की अमूल्य धरोहर है। लोकगीत गायन की यह परम्परा अति प्राचीन और समृद्ध है। इस भूमण्डलीयकरण की दौड़ में लोक समाज की यह वाचिक परम्परा में आज भी जो बचा है, कहीं वह विलुप्त न हो जाए, इसलिए इन विधाओं के संरक्षण, संवर्धन और प्रोत्साहन के लिए, ईमानदारी के साथ सार्थक प्रयास होना ही चाहिए। मानव मूल्यों के पुनर्स्थापन के लिये यह जरूरी है कि हम अपनी इस श्रेष्ठ धरोहर को न केवल संजोकर रखे बल्कि उसे अपने भीतर जीवन्त बनाये रखें।

आई-3, राजवेद कॉलोनी, नयापुरा,
कोलार रोड भोपाल - 462042 (म.प्र.)
मो.- 9893180731

■

आलेख

कहीं गोद और कंधे को तरस न जाए सारंगी

डॉ. राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

अपने सुरों के माधुर्य से श्रोताओं को बरबस रस में सराबोर कर देने वाली सारंगी, सप्त सुरों की सतरंगी छटा से महफ़िल को लूट लेने वाली सारंगी, शास्त्रीय हो या उप-शास्त्रीय संगीत, भाव या सुगम संगीत हो अथवा लोक-संगीत, सभी गायन-शैलियों के साथ घुल-मिलकर संगति देने में सर्वाधिक सक्षम वाद्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त और सबकी चहेती सारंगी के अस्तित्व पर आज संकट के बदल मंडराते दिखलाई दे रहे हैं। इसके प्रति उदासीनता का भाव इस कदर पनप गया है कि इसके दिग्गज कलाकारों की भी नई पीढ़ियों का रुझान अब इसके साथ नहीं दिख रहा। न कोई इसे सीखना चाहता है और न अपनाना चाहता है। छोटी-सी ग्रीवा (गर्दन) वाली और प्यार के साथ गोद में खड़ी कर कंधे का सहारा देते हुए कमान (गज़) से बजाई जाने वाली, सौ रंगों वाली सारंगी, क्या निकट भविष्य में ही पराई होकर प्यार भरी गोद और कंधे के सहारे के लिए छटपटा जाएगी ? तेज़ी के साथ सारंगी नवाज़ों की पीढ़ी का रुझान कम होते देख तो यही लग रहा है। संगीत-समारोहों के आयोजकों की उपेक्षा और आम लोगों की रुचि में परिवर्तन सहित अनेक ऐसे कारण हैं जिनको देखकर लगता है कि ऐसा होने की बहुत संभावनाएं बनती जा रही हैं। इसके लिए सारंगी वादकों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार भी कम उत्तरदायी नहीं है। जिन कलाकारों ने इस वाद्य की कमान अब तक बड़े जतन के साथ साध रखी थी, उन्हीं के वंशजों द्वारा अब इसकी घोर उपेक्षा संभवतया इसीलिए होने लगी है। कारण एक ही है कि उनको अब इसमें न तो अपना भविष्य ही सुरक्षित दिख रहा और न वैसा यश, जैसा कि अन्य गायकों अथवा वादकों को मिल जाता है। सारंगी जैसे श्रमसाध्य वाद्य के प्रति इस तरह का उपेक्षित व्यवहार कोई नई बात नहीं है। संगत की अनुगामिनी रही और नाचने-गाने वाली वेश्याओं (कोठेवालियों) के यहां एक कोने में बंदिनी की भांति क़ैद रही सारंगी लंबे समय से पूर्वाग्रहग्रस्त और परमुखापेक्षी रही है। इसके प्रति इस सौतेले व्यवहार के कारण ही सारंगी वादकों के साथ भी वैसा ही उपेक्षित व्यवहार होने लगा।

तेरहवीं शती में विशुद्ध रूप से संगीत पर रचित प्रथम ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' के प्रकीर्णाध्याय में आचार्य शारंगदेव द्वारा उल्लिखित वाद्य सारंगयालापिनी, जिसे हम सारंगी के नाम से जानते हैं, रावण अस्त्र या रावण हस्त वीणा का ही परमार्जित रूप है। अपनी चित्ताकर्षक ध्वनि के कारण शास्त्रीय, उप-शास्त्रीय, भाव और लोक गायन की संगत से लेकर तबला-पखावज आदि अवनद्ध वाद्यों के एकल (सोलो) वादन में लहरा (नगमा) देने हेतु सर्वाधिक अनुकूल वाद्य के रूप में सारंगी की उपादेयता किसी से छुपी नहीं है। यही नहीं, लम्बे अरसे से यह वाद्य एक ओर राज-दरबारों से लेकर कोठों पर होने वाले मुजरों की शान रहा है तो दूसरी ओर योगियों और फकीरों ने भी इसे दिलो जान से अपनाया है। लोक कलाकारों ने और देवी या जाहरपीर आदि के जागरण करने वाले कलाकारों

ने भी इसको प्राणपण से अपनाया है; साथ ही अपनी आजीविका का माध्यम भी बनाया है। त्रिविध संगीत को अपने अंक में समेट लेने वाले रासलीला संगीत का तो सारंगी सर्वप्रमुख वाद्य रहा है। भक्तिकालीन कवियों और संगीतज्ञों ने भी इस वाद्य की महिमा का यथेष्ट उल्लेख किया है। अष्टछापी काव्य में प्रयुक्त लगभग 200 से अधिक वाद्य-यंत्रों में भी सारंगी का समावेश देखने को मिलता है। यथा- **''रुंज, मुरज, आवज, सारंगी, यंत्र, किन्नरी साजे''**

-परमानंद दास

शास्त्रीय ख्याल एवं ठुमरी गायन के साथ विशेष रूप से प्रचार में आने के बाद स्वतंत्र वादन एवं जुगलबंदी में भी सारंगी ने अपना जादू लंबे समय तक बरकरार रखा, किंतु पाश्चात्य वाद्यों की धमक और अधिक श्रम से बचते रहने की दुष्प्रवृत्ति आज इस वाद्य को उप-शास्त्रीय, भाव तथा लोक संगीत तक से विमुख करती जा रही है। यह वाद्य अब शनैः शनैः लुप्त होने के कगार पर आ पहुंचा है। आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा भी प्रारंभ से ही इस वाद्य की और इसके वादक कलाकारों की उपेक्षा होती रही है। सरकारी स्तर पर भी इसे बचाए जाने हेतु कोई विशेष ठोस प्रयास नहीं किए जाते। गाहे-ब-गाहे कोई सरकारी अथवा गैर सरकारी या असरकारी संस्था सेमिनार आदि करके पल्ला झाड़ ले, वह बात अलग है। बाक़ी जैसे प्रयास होने चाहिए, होते नहीं दिखते।

सारंगी के प्रकार:

प्राय: सारंगी के दो प्रकार देखने में आते हैं –

1– तरबदार सारंगी और

2– बिना तरब की सारंगी

तरबदार सारंगी वह होती है जिसका प्रयोग शास्त्रीय और उप–शास्त्रीय संगीतज्ञों को करते हुए देखा जाता है। यह एकल वादन और संगति दोनों के लिए ही अत्यधिक उपयुक्त वाद्य है। सारंगी का यह रूप प्राचीन साधारण सारंगी से बहुत भिन्न है। यह प्राचीन सारंगी का पूर्णत: संशोधित और परिवर्धित एवं परमर्जित रूप है। बिना तरब वाली सारंगी प्रारंभिक सारंगी के ही किसी न किसी रूप में आज भी देखी जा सकती हैं। किसी न किसी रूप में वाली बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि विविध क्षेत्रों के कलाकारों द्वारा प्रयुक्त सारंगियों के स्वरूप में कुछ न कुछ विविधता भी देखने को मिलती है। इस आधार पर सारंगी को विविध नाम भी दे दिए गए। यथा–

जोगिया सारंगी, गुजरातन सारंगी,
धानी सारंगी और सिंधी सारंगी।

उपरोक्त ये सभी प्रकार की सारंगियां आती एक ही वर्ग के वाद्यांतर्गत हैं। तत् (तार) और पशु–चर्म दोनों का प्रयोग होने के कारण इस वर्ग के वाद्य ततानद्ध वाद्य–वर्ग के अंतर्गत आते हैं। सारंगी में तो तार तक तांत के प्रयुक्त होते हैं।

सारंगी को बजाने के लिए धनुषाकार कमानी या गज़ (bow) का प्रयोग किया जाता है। यह गज लकड़ी की एक डंडी को लेकर एक नट की सहायता से घोड़े की पूंछ के बाल चढ़ाकर तैयार की जाती है। सारंगी बजाने से पूर्व गज पर चढ़े बालों पर बैरोजा (rosin) को अच्छी तरह से घिस लिया जाता है ताकि बालों का चिकनापन दूर हो सके और गज तारों से फिसले नहीं। गज को दाएं हाथ की उंगलियों से पकड़ा जाता है। इस वाद्य से स्वर उत्पत्ति के लिए बाएं हाथ की तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका उंगलियों के नाखूनों का प्रयोग किया जाता है।

सारंगी की बनावट:

सारंगी आकार में लगभग 61 सेंटीमीटर लंबाई की होती है। इसे बनाने के लिए साल अथवा पनस जैसी ठोस लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसमें तानपुरा और सितार की भांति तुंबा नहीं होता, बल्कि उसके स्थान पर पेट बना हुआ रहता है। यह नीचे से चपटा तथा ऊपर से डमरू के आकार जैसा होता है। पेट को लकड़ी को खोदकर बनाया जाता है एवं उसके मुख को चमड़े से मढ़ दिया जाता है। इस हिस्से को मंधान कहते हैं। इसके ऊपर वाले या मध्य भाग को 'छाती' कहते हैं। मंधान के ऊपर लगभग मध्य में एक घुड़च (bridge) लगाई जाती है। इसी घुड़ाच के ऊपर होकर तार जाते हैं जिन्हें सिरे पर लगी खूंटियों में कस दिया जाता है। ये तार तांत के बने होते हैं। इन्हें स, प., स. स्वरों में मिलाया जाता है। नीचे की ओर तरब के तार लगे होते हैं जिन्हें वादक राग की प्रकृति के अनुसार मिला लेते हैं।

संरक्षण के उपाय:

सारंगी जैसे विलुप्ति के कगार पर पहुंच रहे वाद्य के संरक्षण हेतु आवश्यक है कि –

- सरकारी स्तर पर इस अति श्रमसाध्य वाद्य के समुचित प्रचार–प्रसार एवं संरक्षण–संवर्धनार्थ बाल, किशोर एवं युवावस्था के छात्र–छात्राओं में इसके प्रति रुझान पैदा करना।
- गुरु–शिष्य परंपरा के अनुसार योग्य गुरुओं एवं उस्तादों के ऊपर उनके प्रशिक्षण की जिम्मेदारी सौंपना।
- गुरुओं और उस्तादों को सरकारी स्तर पर उचित मानदेय की व्यवस्था करना।
- प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों को मासिक छात्र–वृत्तियां प्रदान करना, ताकि वे निश्चिंत होकर अपनी साधना में संलग्न रह सकें।
- प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों को सरकारी आश्वासन भी मिले कि केवल सारंगी बजाने के बाद भी वे उचित मान–सम्मान, पद, प्रतिष्ठा और पैसा प्राप्त कर सकते हैं। उनका भविष्य भी उज्ज्वल है।
- प्रशिक्षण प्राप्त छात्रों को समय–समय पर मंचीय प्रस्तुतियों के अवसर भी प्रदान कराए जाएं, ताकि उनको सुनने वालों का भी एक वर्ग पैदा हो।
- आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसी सरकारी संस्थाओं को निर्देशित किया जाए कि जिस प्रकार से मुख्य गायक, वादक या नर्तक को इज़्ज़त के साथ पेश किया जाता है, वैसी ही नहीं तो उनसे थोड़ी कम इज़्ज़त संगति करने वाले कलाकारों को भी मिले। प्राय: देखा जाता है कि आमंत्रण–पत्रों पर भी न तो संगतिकारों के नाम और चित्र ढंग से छापे जाते और न उनका मंच पर ठीक तरह से परिचय दिया जाता है। कहीं–कहीं तो अंत तक संगतिकरों के नाम भी नहीं बताए जाते। इससे उनके मन में क्षोभ तो उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

यदि इन कलाकारों को भी यथोचित मान–सम्मान और पैसा मिलेगा तो न केवल उनकी अगली पीढियां अपनी धरोहर को बचाने में लग जाएंगी वरन् समाज से भी नए–नए कलाकार मिल सकेंगे। आशा करता हूं कि केंद्र सहित सभी प्रदेश सरकारें भी इस ओर ध्यान देंगी। सारंगी जैसे मुर्दे में भी जान फूंक देने वाले वाद्य का संरक्षण हर सूरत में होना ही चाहिए।

– लेखक : संगीतज्ञ/कवि/लेखक/संपादक (संगीत सरिता)
संस्थापक: डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं शोध–संस्थान
संगीत – सदन, महाविद्या कॉलोनी, फेज – 2, मथुरा (उ.प्र.) 281 003
मो. 98972 47880 (व्हाट्सएप), 88514 02815 (जियो)

■

कला में कुछ नया करते कलाकार

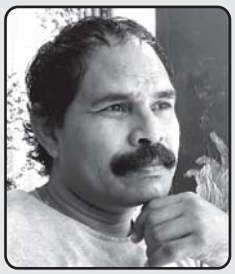

चेतन औदिच्य

कलाकार हो अथवा दर्शक; उसकी आंखों में किसी नए की तलाश रहती है। ऐसा नया, जो उसके मन को भाए। आह्लादित करे। तमाम तरह की कलाओं में हजारों वर्षों से नया-नया रचा जा रहा है। जादू ऐसा है कि हजार-हजार भंगिमाओं के बावजूद कलाएं सदैव नए-नए स्वरूप में आती ही जा रही हैं। धरती के हर छोर पर नया करने की कोशिश जारी है। संगीत, काव्य, नाटक, चित्र, मूर्ति कोई भी रूप हो, सभी में नया किया जा रहा है। नयापन दर्शक को रोमांचित करता है। भाव जगाता है। उल्लास लाता है। राग उत्पन्न करता है। यह नयापन ही है जो निर्जीव वस्तु को प्राणवान कर देता है। इसी नये को लेकर आज के तीन समकालीन कलाकारों पर थोड़ी-सी बात यहां की गई है।

कलाकार डॉ कृष्णा महावर
अपनी कृति के साथ

डॉ. कृष्णा महावर

महान् कलाकार लियानार्डो दा विंची को दुनिया का हर कलाप्रेमी बहुत प्यार से याद करता है। मैं जब प्रथम वर्ष का छात्र था। मेरे कला गुरु डॉ ओमदत्त उपाध्याय जी ने विंची का जीवन हमारे सामने रखा तो मुझे याद है कि कई दिनों तक मैं विंची की प्रतिभा पर मुग्ध रहा था। आज भी उस महान् कलाकार की बात चलती है तो उतना ही मुग्ध होता हूं। विंची ने जो कुछ रचा वह सब रेनेसां काल में मील का पत्थर साबित हुआ। सब नया था। राजस्थान विश्वविद्यालय के कला विभाग में अध्यापन कराने वाली कलाकार डॉ कृष्णा महावर कला में लगातार नया करने की कोशिश करती रही हैं। विंची के 15 अप्रैल को मनाए जाने वाले 'विश्व कला दिवस' के अवसर पर भी उन्होंने नया रचा। अनेक कलाओं को एक साथ पिरोते हुए उन्होंने कला की अभिनव अभिव्यक्ति उपस्थित की।

डॉ कृष्णा महावर द्वारा परिकल्पित और निर्मित यह एक लाइव आर्ट परफोर्मेंस थी। जिसे 'एनकाउंटर आर्ट इन अ डिफरेंट वे' कहा गया।

यह परफॉर्मेंस अमूर्त शैली में प्रस्तुत की गई थी जिसमें शारीरिक भंगिमाओं का सजीव प्रदर्शन किया गया। दृश्य इस तरह से रहे ... ज़मीन पर एक बहुत बड़ा कैनवस बिछाया गया है जो किनारे से होता हुआ 8 फीट ऊंची दीवार तक चढ़ा है। कैनवस का यह फलक ही चित्रकारी का स्थल है, अभिनय का मंच है और स्वरों का अवकाश है। यहीं पर कुमार गंधर्व का गान बजता है, गगन में आवाज हो रही है झीनी झीनी... कलाकार आती हैं बड़े से कैनवास पर बड़े-से ब्रश से स्याह आकृतियां रचती हैं। और पढ़ती है ऊंचे स्वरों में कोई कविता। संगीत की लहरियां बदलाव लेती हैं, नई स्वर लहरियों के साथ कैनवस पर विद्यार्थियों की क़तार आती है। क़तार अनिबद्ध कदमताल में अपने चेहरे पर शिरस्त्राण की भांति दुनिया के बड़े कलाकारों का मास्क लगाएं है। यह कदमताल गहरी व्यंजना लिए है। और अमूर्त दृश्यात्मकता का जीवंत आलोक भी। पार्श्व से आते शब्द अर्थातीत हैं। ठीक इसके साथ संगीत अपनी नई करवट लेता है। चित्र-सूत्र की कारिका गाई जाती है। कलाकार विद्यार्थी बिछे हुए कैनवस पर चित्र उकेरते हैं। उनकी देह की लयात्मकता गहरा प्रभाव छोड़ती है... सीन पुनः बदलता है। कुर्सी पर बैठे कलाकारों के सिरों पर किताबें रखी है... हाथों में कलमें है... कलमें हवा में लहराती है, अदृश्य आकाश में चित्र बनाए जा रहे हैं... इस तरह अनेक अभिव्यक्तियां एक के बाद एक के क्रम में आती जाती है। अंततः बिछा हुआ कैनवस और कैनवस पर भंगिमा-रत कलाकार रंगों से बिंध जाते हैं...।

कला की यह अद्भुत अभिव्यक्ति सिद्ध होती है। तीस मिनट की इस प्रस्तुति में कई प्रक्रियाओं से गुजरते हुए निरंतर विकसित विचारों को साकार करने की कोशिश की गई। कलात्मक

जल में तैराई गई कलाकृतियां

अवधारणाओं व कला इतिहासों पर एक पुनर्दृष्टि वहां दिखाई देती है। जिसे नवीन स्वरूप में दिखाया गया। पूरी प्रक्रिया सद्यजात विचारों के साथ इम्प्रोवाइजेशन पर आधारित रही। उनका यह कला प्रयोग अनेक दृष्टियों से विशिष्ट कहा जा सकता है। रंग, रेखा, अभिनय, विचार, कविता, संगीत आदि का संगुंफन इतना प्रभावी था कि उसके प्रेक्षक साधारणीकरण से सीधे तादात्म्य कर जाएं। यह कलाकारों का सामूहिक प्रयास था। नॉन लीनियर पद्धति में गूंथा यह परफॉर्मेंस में सम्प्रेषण की पूर्ण स्वतंत्रता थी। मन में तत्काल उपजे संवैद्यों को कलाकारों ने बिना कांट-छांट के सीधा प्रस्तुत किया। इस परफॉर्मेंस में ड्राइंग एंड पैंटिंग डिपार्टमेन्ट, यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान के विद्यार्थी शामिल रहे। जिन्होंने अथक परिश्रम और समर्पण भाब से इस प्रक्रिया को निभाया है। परफॉर्मेंस प्रक्रिया में ड्रामेटिक्स के असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ शिवा टुमु, डॉ. कपिल शर्मा

डॉ दीपिका माली का संस्थापन

और थिएटर निदेशक मूमल तंवर का विशेष योगदान रहा। उन्होंने कला विद्यार्थियों के साथ कुछ शारीरिक, वाचिक और सांगीतिक कार्यशालाएं की और नवोदित कलाकारों में आत्मविश्वास जगाया। इस तरह कला की नवीन कलेवर वाली यह प्रस्तुति चिह्नित की जाने योग्य है।

डॉ. दीपिका माली

डॉ. दीपिका माली पूरी तरह से कलाओं को समर्पित कलाकार हैं। समकालीन कला में वे लगातार नए-नए प्रयोग करती रही हैं। महाविद्यालय में कला विषय पढ़ाती हैं। चूंकी वे जिस शहर की हैं, उसे 'झीलों की नगरी' के नाम से जाना जाता है। ये है दुनिया का दूसरा सबसे खूबसूरत शहर उदयपुर। जिसकी ख्याति 'पूर्व के वेनिस' के रूप में रही है। ऐसे खूबसूरत शहर की झीलें जब सूख जाती हैं तो वे सूखी झील वहां पर रहने वाले लोगों के लिए एक जख्म की तरह लगती है। झीलों का सूखना, मनुष्य द्वारा प्रकृति के अत्यधिक दोहन फल है। मनुष्य के कारनामों ने क्लाइमेट चेंज कर दिया है। इसी की प्रतिक्रिया में कलाकार दीपिका माली एक दिन अपने विद्यार्थियों को लेकर सूखी झील के किनारे जाती हैं। और विद्यार्थियों के साथ हजारों की संख्या में कागज की नावें बनाकर झील के सुखे पेटे पर तैरा देती हैं।यह संस्थापन है। यह एक गहरा प्रतीकात्मक संबोधन है। कलाकार द्वारा समाज को सीधा संबोधिन है। उसकी भाषा दृश्यात्मक है। कला की भाषा में यह संस्थापन है। इस संस्थापन में कला अपने तल्ख तेवर के साथ समाज के सामने आती है। वह पुरजोर आवाज में चीखती है कि यह सब हमारे किए धरे के कारण ही है। कागज़ की नावों के निकट जवान पीढ़ी उदास बैठी है। यह उदासी उस आम आदमी की उदसी है जो प्रकृति

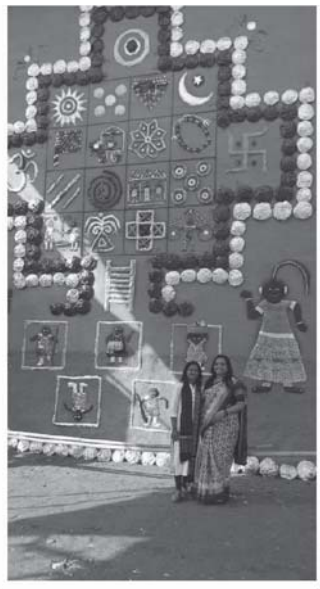

डॉ दीपिका माली की कलाकृति 'सांझी'

कलाकार नवल सिंह चौहान द्वारा चट्टान को पहनाया गया साफा

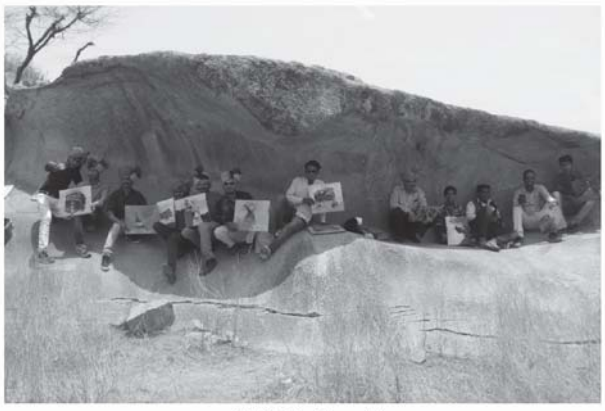

प्रकृति की गोद में प्रदर्शनी करते कलाकार

में संतुलन चाहता है।

देश के हजारों कलाकारों की तरह दीपिका माली भी कला में कुछ नया कर रही हैं। ऐसा नया जो समाज की पीड़ा को उद्घाटित करता है। प्रकृति को सहेजता है। और अपनी परंपराओं की परवाह करता है। यह नया प्रयोग गैलरियों की सजावट के लिए नहीं है। और ना ही उन नीलामी घरों के लिए है, जिसने कलाओं को विकृति करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यहां तक कि जो कलाएं आम जनजीवन का हिस्सा होती थी उन्हें भी बाजार की वस्तु बना दिया। दीपिका ऐसी ही दुनिया में रहकर लोक से जुड़ती हैं। अपने समय की विडंबनाओं को समझती हैं। तभी तो घरों से गायब हो रही सांझी कला को नई व्यंजना के साथ 625 स्क्वायर फीट के आयतन में, कच्ची दीवार पर पुनर्नवा करती हैं। बहुत बड़े आकार में यह सांझी प्राकृतिक वस्तुओं से बनाई गई थी। जिसमें गोबर प्राकृतिक फूल, हरी पत्तियां, सूख तिनके, घास के डंठल,गोंद अन्न के दाने आदि का प्रयोग किया गया है।

कलाकार की महत्ता इसी कारण है कि वह समाज की अच्छी तथा बुरी स्थितियों को अपनी अंतर्मन की आंख से देखता है और उस पर अपनी कलात्मक प्रतिक्रिया देता है। दीपिका माली ऐसा ही कुछ कर रहीं हैं।

'एनकाउंटर आर्ट इन अ डिफरेंट वे' की प्रस्तुति

नवल सिंह चौहान

नवल सिंह चौहान की प्रदर्शनी

एक समकालीन युवा कलाकार हैं नवल सिंह चौहान। वे राजस्थान के राजसमंद और पाली जिले की सीमा पर लगते, दकिया के जंगलों में अपनी 40-50 पेंटिंग्स ले जाते हैं। और सैंकड़ों की संख्या में मनरेगा के श्रमिकों को अपनी पेंटिंग्स देखने के लिए आमंत्रित करते हैं। नवल सिंह इन पेंटिंग्स को खेजड़ी के पेड़ों पर लगाते हैं। झाड़ियां पर बिछाते हैं। और अपनी अनोखी प्रदर्शनी को प्रकृति की गोद में समर्पित करते हैं। कोई तामजाम नहीं। किसी भी तरह का विशिष्ट आथित्य नहीं। सात छोटी-छोटी कन्याएं प्रदर्शनी का उद्घाटन करती हैं। प्रकृति के खुले आंगन में प्रदर्शनी खुल जाती है। प्रकृति के साथ तादात्म्य का यह प्रदर्शनी एक अनोखा कलात्मक प्रयोग साबित होती है। लोकार्पण की भावभरी युक्ति भी।

दूसरे वर्ष नवल सिंह फिर अपनी 40 - 50 नई पेंटिंग्स को लेकर कड़ियादेह बांध पर पहुंचते हैं। गांव-गुवाड़ के सामान्य लोगों को आमंत्रित किया जाता हैं। उनके हाथों में एक-एक पेंटिंग देकर,उन्हें जल पर तैराने का उपक्रम किया जाता है। पानी ,रंग और लोकजीवन का यह अनोखा संगम साबित होता है। इस दृश्य से प्रकृति की गोद में तैरती कला की जो आभा फैलती है वह अवर्णनीय है।

फिर से नये वर्ष नवल सिंह सामान्य लोगों को इकट्ठा करते हैं। सुदूर पाली जिले की सीमा पर सैंदड़ा के बीहड़ बियाबान में पहुंचते हैं। और वहां की

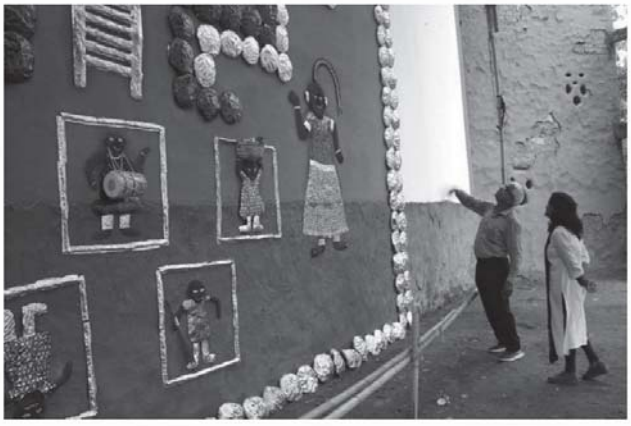

'सांझी' को निहारते कलाकार

बड़ी-बड़ी चट्टानों पर चढ़ जाते हैं। क्योंकि पहाड़ों की कटाई और प्रकृति के क्षरण से नवल सिंह गहरे मन तक दुखी होते हैं और इसी के प्रतिरोध में सेंदड़ा की बड़ी-बड़ी चट्टानों के शीर्ष पर बड़े-बड़े साफे (पगड़ी) बांधकर उन शिलाखंडों को सम्मानित करते हैं जिनको भौतिकता की दौड़ में नष्ट किया जा रहा है। यह प्रकृति और कलाकार के बीच एक अनोखे संबंध स्थापना की सिद्धी है।

स्तंभकार लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और कवि हैं।
संपर्क -49-सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर,
उदयपुर-313001 (राज.),
मो.: 9602015389

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का साधारण डाक शुल्क एवं रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 120/- प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये ..... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

जनजातीय संस्कृति में शिव-शंभू की अवधारणा

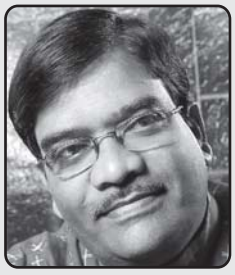

लक्ष्मीनारायण पयोधि

जनजातीय संस्कृति और धर्म-दर्शन में शिव यानी आदिदेव महादेव की अवधारणा, उनके स्वरूप और पारंपरिक मान्यताओं पर विचार करना इस विषय का उद्देश्य है।

मैं जानता हूँ कि आदिदेव शिव की अवधारणा और उनके स्वरूप की चर्चा जनजातीय मान्यताओं के आलोक में करना बहुत सरल नहीं है। यह वास्तव में अनंत को हथेली में समेटने जैसा ही प्रयास है। फिर भी, अपने जीवन के बीते वर्षों में जिस जिज्ञासा-भाव से मैं जनजातीय जीवन और संस्कृति को निकट से देखने-समझने का प्रयत्न करता रहा हूँ, उससे थोड़ा-बहुत यह तो बता ही पाऊँगा कि जनजातीय संस्कृति में महादेव की उपस्थिति किन रूपों में है।

सबसे पहले हम कोरकू जनजाति की मान्यता पर विचार करेंगे। 'कोरो' यानी मनुष्य के बहुवचन अर्थात समुच्चयवाची शब्द 'कोरकू' यानी मानव समुदाय से अभिहित यह समुदाय प्राचीन जनजातियों में से एक है। यह समुदाय 'मूला' और 'मूलाई' को अपने प्रथम पुरखे मानते हैं। मान्यता के अनुसार इनकी रचना महादेव शिव ने रावण के आग्रह पर विन्ध्य-सतपुड़ा प्रांतर में की थी। मूला-मूलाई के पुतले बनाने के लिये महादेव ने कामदूत कौए से साँवलीगढ़ और भँवरगढ़ से मिट्टी मँगायी थी। इसलिये कोरकू इन क्षेत्रों को अपनी मूल जन्मभूमि मानते हैं। एक पारंपरिक गीत है:

''आले नी साँवलीगढ़ा, कोरो डे राण्डे।''

यानी,हम साँवलीगढ़ से आये हैं। हम कोरकू हैं।

कोरकू मानते हैं कि शंकर भगवान जिस पर्वत पर खड़े हैं, वह उस धरती पर अवस्थित है,जो शेषनाग के फण पर रखी है और वह शेषनाग शंकरजी के गले में पड़े हैं। गीत है:

''धरती शेषनागे न फन लियेन टेगेन,
शेषनागो शंकर गलाहार आरूकेन...।''

भील जनजाति समूह में प्रचलित एक पारंपरिक कथा के अनुसार पृथ्वी पर वनस्पतियों की उत्पत्ति शिवशंभू की जटाओं से हुई है। इसलिये भील वृक्षों में ही ईश्वर का वास मानकर उनकी पूजा करते हैं। उनके समस्त देवी-देवता महादेव और शंभूमाता के ही रूप हैं।

कोल जनजाति के लोगों की मान्यता है कि पहचान के लिये कोल स्त्री के माथे पर पहला गोदना महादेव ने ही त्रिशूल से गोदा था। बैगा महादेव को उत्पत्तिकर्त्ता मानते हैं। कथा के अनुसार मानव-सृष्टि का आरंभ करने के लिये केंचुए के पेट से मिट्टी निकाल कर महादेव ने जो पहला पुतला बनाया,वह बैगा था। उसे महादेव ने कुल्हाड़ी दी थी,जिसे लेकर वह जंगल चला गया। दूसरा पुतला बनाकर महादेव ने उसके हाथ में हल दे दिया था, जो खेती करने लगा,वह गोण्ड कहलाया। दोनों अपने को महादेव की संतति बताते हैं। बैगा महादेव को आदिदेव होने के कारण बूढ़ादेव कहते हैं और गोण्ड पड़ापेन।

झाबुआ ज़िले में भीलों के हरहेल बाबजी

हम यहाँ गोण्ड जनजाति की शिव संबंधी मान्यताओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

गोण्ड भारत की एक प्रमुख जनजाति है। देश के अनेक राज्यों में इस जनजाति की आबादी है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक यानी, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़,ओडिशा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना आदि राज्यों में गोण्ड जनजाति की उपस्थिति है। इतिहास में गोण्डवाना साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण कालखण्ड रहा है। गोण्डी मान्यता के अनुसार पंचद्वीपों के समूह गण्डोद्वीप (गोण्डवाना लैंड) के प्रथम अधिपति शंभूसेक (महादेव) थे, जिनकी 88 पीढ़ियों ने इस पर शासन किया। यह ईसा पूर्व 5000 वर्ष तक कुल 10,000 वर्ष का कालखण्ड माना जाता है। इसे तीन भागों

में विभक्त किया गया है: (1) शंभू-मूला काल (2) शंभू-गौरा काल और (3) शंभू-पार्वती काल।

गोण्ड पुनेम यानी जनजाति समूह यह मानता है कि ''मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो यानी शिव ने इस पंचखंड धरती की रचना की है और वही सृष्टि यानी चराचर जगत् का स्वामी है।'' गोण्डी भाषा में यह पारंपरिक स्तुति इसी दर्शन पर आधारित है : **ओ ऽऽऽ इद मावा सिरडी सिंगार संयुंग द्विपता सब पेन सर्वशक्तिमान अना सुमरन किया।**

हरहेल बाबजी (झाबुआ)

पेनतल पुरखाल्क स्यानो-बुढ़ो मुठवल्क पुयनेम, मुठवल्कुन सेलाड गौरा दाई नू मुठवाल कुपार लिंगो, जंगो माई,काली कंकाली ता मावा गोण्डीयाना सगा समाज कोयतुर खण्डाक कोयामूरी इम्मा सारुंग,एरुंग सगा समाज सयमाल अयामीका गुट्टा दीपता कोरता।

नालूंग इदात, नालूंग भिडीते पाडिंग सेरगीते सगा इर्राकी इमाट माकुन तल्लात पेर्रा आशीर्वाद सीम।

इद बती इदाल, इम्मा गुनना, नरगोदा इदाल इद /निकून बेनाते कुपार लिंगो पुनेम पडापेन सजोरपेन पूजन सुमिरन लाई शुरू आइता।

(हे चराचर जगत् के स्वामी! पंचद्वीपों के अधिपति! देवों, पुरखों, गुरु, धर्मगुरु-सबका हम स्मरण करते हैं। हे योगिराज शंभूसेक महादेव! माई गौरा सहित हे मुठवा कुपार लिंगो! कोया पुनेम (गोण्ड समुदाय) की जन्मदात्री हे जंगो माई कंकालिन! कोयमूरी द्वीप के उम्मोगुट्टाकोर,सयमाल गुट्टाकोर, अयफोकागुट्टाकोर और येरुगुट्टाकोर खण्डों के चारों वंशों के बारह सगा देवताओं, आशीष दो ! तुम सबका स्मरण कर मैं कुपारलिंगो पडापेन आदि देवताओं का आह्वान कर रहा हूँ,साक्षी बनो!)

पहांदी पारी कुपारलिंगो को गोण्ड समुदाय अपना आदि गुरु मानता है। इस समुदाय की मान्यता के अनुसार संसार में गोण्डी धर्म के प्रवर्तक हैं पहांदी पारी कुपारलिंगो। महाराष्ट्र का कछारगढ़ इनका धाम है। इनका सुमिरन इस प्रकार किया जाता है :

पडापेन मुठवा सुमरन किया सेलाड,गौरा-महादेव नीह लेका नाकुन निओड सेलक-मर्री सिया होना।

पहांदी पुंगार कुपारलिंगो निकून अमाट सेंदूर कमका पउइक अना नावा हिन्दल अना निकून अर्पण कियातोना मावी कोया कोयतूर वंशज ता मुन्ने ताक्तूताना बिनती कियाता।

इमा नावा सुमरन पडापेन मुठवा ,बिनती मावा इमाकेंजा-केंजा।

इम्मा हर्कोटा, मुर्कोटा, पुर्कोटा डा रायाता।

मुर्टोंगडोम तरिचोके आयतोडोम।

गुनना सिंधोली बिंदाली कंजाली।

इंगादा इम्मा सुलझे कीमा मावा येरकोली।

पुलशिव रायोर हिर्बानोर मर्री।

कोया पुनेम ता सीतोनी सरदा।

पहांदी पुंगार कुपार जय-जय।

इम्मा केंजा-केंजा मुन्ने मावा।

मुन्ने मावा इम्मा केंजा-केंजा।

ओड मावोड जय परसापेन, सल्लार गांगरो, लिंगो, सुयमेद वेरची।

जय सगापेन पाडिंग सेरमी सगा गोंगोनुंग, अमोट मीकुन सुमरी किया।

(हे हर्कोटा, मुर्कोटा, पुर्कोटा राज्य के अधिपति पुलशिव और माता हिर्वा के सुत कोया पुनेम के आदिगुरु पहांदी पारी कुपारलिंगो! तुम्हें सिन्दूर, हल्दी, अक्षत अर्पित कर हम नमन करते हैं। हे आदिगुरु, कोयावंशियों को सद्मार्ग पर चलने का ज्ञान दो।)

कोयतूर शिवस्वरूप लिंगोपेन को समस्त कलाओं का नायक मानते हैं। इसलिये बस्तर में घोटुलगुड़ी का अधिष्ठाता लिंगोपेन माना जाता है। घोटुल मुरिया किशोर-किशोरियों का कलाकेन्द्र है। मध्य और उत्तर बस्तर (विशेष रूप से कोण्डागाँव-नारायणपुर क्षेत्र) में गाँव के छोर पर घोटुल बने होते हैं, जहाँ युवा शाम को इकट्ठे होकर देर रात तक नृत्य-संगीत के अभ्यास सहित विभिन्न पारंपरिक क्रीड़ाओं से अपना मनोरंजन करते हैं और भोर होते है घर जाकर अपने दैनिक कार्यों में लग जाते हैं। इस गुड़ी (मंदिर) में लिंगोपेन को गुरु मानकर ही कलाओं का अभ्यास किया जाता है,क्योंकि वही इनका ज्ञाता है। मान्यता के अनुसार लिंगो का अवतरण गुफ़ा में बंद कोयतूर बंधुओं की मुक्ति के लिये लोहागढ़ में हुआ था। बारह भाई गोण्ड किसानी भूलकर आखेट में रम गये थे, इसलिये पशुपति महादेव शिव के श्राप से वे गुफ़ा में बंद हो गये थे।लिंगोपेन के रूप में धवलगिरि क्षेत्र में अवतरित होकर शिव ने ही

घोटुलगुड़ी (बस्तर) में लिंगोपेन की आराधना के लिए तैयार चेलिक-मोटियारिनें।

कोयतूरजनों को गुफ़ा से मुक्त कर उन्हें पूर्ववत कृषिकर्म में प्रवृत्त किया था।बस्तर के सेमुरगाँव में लिंगोपेन का ठान (गुड़ी) है। सोलह खण्ड धरती,नौ खण्ड आकाश, स्वर्ग और पाताल के अधिपति नादस्वरूप शिव के साकार रूप माने जाते हैं लिंगोपेन। मुठवा, रायलिंगो,पहांदी पारी कुपार लिंगो, पडापेन, आँगापेन-सब महादेव के रूप, जो कोया पुनेम के आराध्य हैं, आस्था के प्रतीक हैं।

मुठवा रायलिंगो भी कोया पुनेम यानी कोयतूर समुदाय के सामाजिक नियंता माने जाते हैं। मुठवा रायलिंगो को रावेनपेन्याल के रूप में भी पूजा जाता है।

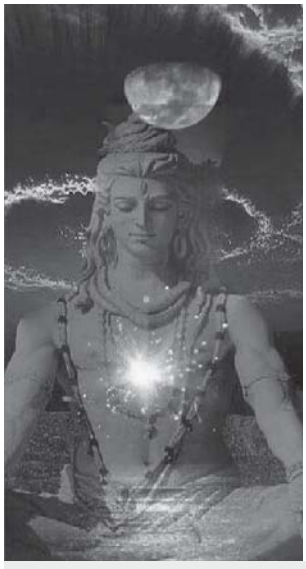

शिव-शंभू

गोण्ड यानी कोयतूर जनजाति पडापेन,यानी बड़ादेव,यानी शंभू (स्वयंभू) को सृष्टिकर्ता मानते हैं। पडापेन का वास पेनकडा (देवखला) में होता है। पडापेन को कच्चीवेन भी कहा जाता है। इस देवता का प्रतीक कच्चे लोहे से गढ़ा जाता है। गोत्रों के अनुसार छह देव और सात देव की मान्यता के आधार पर लकड़ी में लगने वाले घुँघरुओं की संख्या निर्धारित की जाती है। इनके साथ गोंगरा, पालवा, सल्ला आदि पेनकडा में रखे जाते हैं। हर गोत्र-समूह का अलग पेनकडा होता है। मान्यता के अनुसार साज अर्थात् साजावृक्ष में पडापेन का वास है। इसलिये यह वृक्ष इस जनजाति समूह की आस्था का केन्द्र है।कोयतूर समुदाय द्वारा शंभू महादेव के साथ गवरा दाई अर्थात् गौरी माता की भी पूजा की जाती है। इस जनजाति की मान्यता के अनुसार गवरी दाई सृष्टि की स्वामिनी है, इसलिये कोयतूर की अधिष्ठात्री भी।

गोण्ड जनजाति समूह में **पडापेन** यानी शिव को **बूढ़ालपेन** भी कहते हैं। रायसेन क्षेत्र में बड़े **दाऊ** कहा जाता है। यह महादेव शिव के आदिदेव या आदि पुरखा **अर्थात् आदिजन यानी** आदिवासीजन के प्रथम मूर्धन्य देवता होने का प्रमाण है। बस्तर के भोपालपटनम् क्षेत्र में भी **येरनेल्ला मुसलोडू** वहाँ के कोया, गोट्टे और दोरला समुदायों के सबसे बड़े देवता हैं। उनका स्थान संड्रूपल्ली है। मुसलोडू द्रविड़ियन शब्द है, जो स्थानीय गोण्डी और तेलुगू में **बूढ़े** के अर्थ में समान रूप से प्रयुक्त होता है। इससे यह पता चलता है कि सम्पूर्ण गोण्ड समुदाय में महादेव शिव को विभिन्न रूपों या नामों से जाना और पूजा जाता है।

गोण्ड जनजाति समूह की मान्यता के अनुसार पडापेन के छह भिन्न स्वरूप हैं,जो परसापेन, मटियापेन, गागरापेन, पालोपेन, सल्लेपेन और चंबरपेन के नाम से पूजे जाते हैं। यह मान्यता अवतारवाद तो नहीं, परंतु अद्वैतवाद की ओर ज़रूर संकेत करती है।

एलपू (देव जात्रा)

गोण्ड स्त्रियाँ शिव अर्थात पड़ापेन के प्रति आस्था व्यक्त करने के लिये प्रतीकस्वरूप मस्तक पर अर्द्धचन्द्र का चिह्न गुदवाती हैं। इस चिह्न को अत्यंत शुभ माना जाता है।

-(लेखक आदिवासी संस्कृति और भाषाओं के अध्येता,
शब्दकोशकार और प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं।)
ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स,
बागमुगलिया, भोपाल-462043
मो.8319163206

■

अमेरिकन कवयित्री एन सेक्सटन की कविताएँ

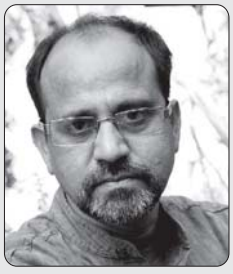

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

भाषान्तर में इस बार अमेरिकन कवयित्री एन सेक्सटन (1928-1974) की कविताओं का भावानुवाद।

रेखांकन - मनोहर काजल

शब्द

शब्दों से सावधान रहें
यहाँ तक कि चमत्कारी शब्दों से भी।
सबसे ज़्यादा काम हम इन्हीं शब्दों से लेते हैं,
कभी कभी ये कीड़ों के झुंड की तरह आते हैं
और कोई डंक नहीं पर एक चुम्बन छोड़ जाते हैं।
वे हमारी उंगलियों की तरह भले होते हैं।
वे किसी चट्टान की तरह भरोसे के लायक होते हैं।
जिस पर आप आराम से बैठ सकते हैं।
परन्तु वे डेज़ी के फूल और ज़ख्म दोनों हो सकते हैं।
फिर भी मुझे शब्दों से प्रेम है।
वे छत से निकलते हुए कबूतर हैं।
वे मेरी गोद में बैठे हुए छः पवित्र संतरे हैं।
वे दरख़्त हैं, ग्रीष्म ऋतु के पाँव हैं,
सूर्य है, आवेश से भरा उसका चेहरा है।
फिर भी वे अकसर मुझे धोखा देते हैं।
मेरे पास बहुत कुछ है जिसे मैं कहना चाहती हूँ,
न जाने कितने किस्से, बिम्ब, कहावतें, इत्यादि।
पर शब्द काफी नहीं,
गलत शब्द चूम लेते हैं मुझे।
कभी कभी मैं एक चील की तरह उड़ती हूँ
किसी नन्ही भूरी चिड़िया के पंखों के साथ।
पर मैं ध्यान रखती हूँ
और विनम्र रहती हूँ उनके प्रति।
शब्दों और अंड़ों को सावधानी के साथ बरतना चाहिए।
एक बार टूटे तो चीजों की तरह
जोड़ना असम्भव होता है।

काला जादू

एक स्त्री जो लिखती है, बहुत ज़्यादा महसूस करती है
आत्म विस्मृति और पूर्वाभास!
मानो साईकिल और बच्चे और द्वीप
पर्याप्त नहीं ; मानो विलाप करने वाले और अफ़वाहें
और साग भाजी काफी नहीं।
उसे लगता है की वह सितारों को ललकार सकती है
एक लेखक वास्तव में एक जासूस होता है
मेरी जान, मैं वही लड़की हूँ।
एक पुरुष जो लिखता है, बहुत ज़्यादा जानता है,
जैसे सम्मोहन और कामुकता!
जैसे उन्नत शिश्न, सभा सम्मेलन और उत्पाद
पर्याप्त नहीं; मानो यंत्र और युद्धपोत
और युद्ध पर्याप्त नहीं।
पुराने फर्नीचर से वह पेड़ बनाता है।
एक लेखक मूलतः धूर्त होता है।
मेरी जान, तुम वही पुरुष हो।
कभी खुद से प्रेम नहीं किया,
अपने जूतों और टोपियों से नफ़रत करते रहे,
हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं, अमूल्य, अमूल्य
हमारे हाथ हल्के नीले और नाजुक हैं
हमारी आँखें भरी हुई हैं
भयानक स्वीकारोक्तियों से।
पर जब हम विवाह करते हैं,
बच्चे छोड़ जाते हैं हमसे घृणा करते हुए।
बड़ी मात्रा में भोजन बचा है और कोई नहीं शेष
इस अतिरिक्त भोजन को खाने के लिए।

■

दोहे

सोमदत्त शर्मा के दोहे

सोमदत्त शर्मा

जन्म: 15 फरवरी 1955
जन्म स्थान अतरौली (अलीगढ़) उ.प्र.
लेखन: सन् 1975 से निरंतर विभिन्न साहित्यिक विधाओं में लेखन। प्रकाशित देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविता, गीत, गजल, व्यंग्य नाटक, बाल कथाएँ तथा लेख हिन्दी के दोहाकारों में विशिष्ट पहचान दहशत की परछाइयाँ (दोहा संग्रह) दोहे तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल विशिष्ट लेखकों पर अनेक संग्रहों में लेख।
वर्तमान पता आई-94, गोविन्द पुरम, गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 8377003475

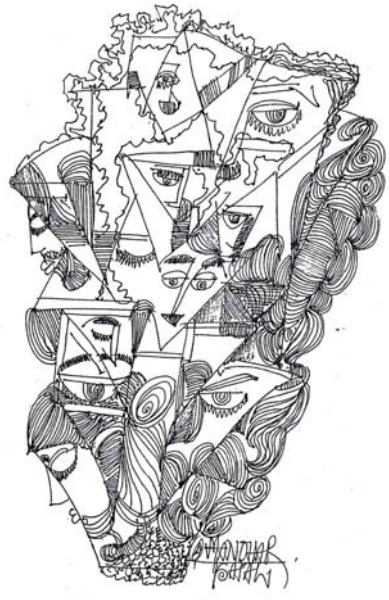

रेखांकन - मनोहर काजल

कैसी बूटी खा रहे, देश , करें क्या योग।
वृश्चिक राशी में जहाँ, जनम रहे सब लोग। ।

नया खेल ,सारे नियम, नये, खेल मैदान।
नये उपकरण खेल के, हम ही हैं इंसान ! ।

चढ़ कर उतरे, फिर चढ़े, उतरे , फिर चढ़ जाय।
मौसम सीढ़ी –सांप सा , खेले औ मुसकाय।।

हमीं खेल , हम ही नियम , हमीं खेल मैदान।
हमीं उपकरण खेल के, खेले कौन सुजान ?

हम बेचैनी और हम , खुद ही हैं बेचैन ।
एक दूसरे का हमीं, छीन रहे क्यों चैन ?।

हम जंगल, वाशिंद हम, हमीं जलायें आग।
कहाँ निकल कर जायं जो, खुद जंगल का भाग।।

आंधी हम , तूफान हम, हमीं बाढ़ का रूप।
हमीं पेड़, पौधे हमीं, इंसां छाया, धूप।।

खुराफात हर मोड़ पर, बदमाशी हर मोड़ ।
खुदा अकेला पड़ गया , दूर खड़ा वह छोड़।।

खुद बंदर सा नाचते, खुद अपने में रोग ।
ईश खड़ा पागल बना, आंख बचाते लोग। ।

भांग चढी़ हो, डस गये ,हों ,बिच्छू दस अंग।
इंसानों का क्यों हुआ , मरकट जैसा ढंग ।।

मैं काला हूँ, क्या हुआ, देखो अपनी नाक –
कटी हुई ले घूमते, किसे दिखाते धाक।।

हम विरोध में इसलिए दिखें विरोधी आज।
रोध और अवरोध को बना रहे हैं साज।।

क्या करते हो ? कुछ नहीं, खड़े करें अवरोध ?
वे सीधे से जा रहे, कुछ तो करें विरोध।।

यारी, मक्कारी जहाँ , एक अर्थ ,दो शब्द।
भ्रम होता है देख कर, क्यों चीखें नि:शब्द ?

जब तक हाथी शांत है, अंकुश है हथियार।
हो अशांत जनमन करे, नगर, गाँव पर वार, ।

रार बहुत गहरी हुई, बढी़ बहुत तकरार।
ऐसे मानव से गयी, स्वयं मनुजता हार।।

शाप मुक्ति का जप किया, फिर भी क्यों अभिशप्त ?
शीतलता की चाह में, हुए निरंतर तप्त।।

■

कविता

प्रदीप नवीन की कविताएँ

प्रदीप नवीन

जन्मः 1 जुलाई 1950, गुना (म.प्र.) वर्ष 1971 से सतत हास्य व्यंग्य, गीत, गजल, बच्चों के लेखन नाट्य गीत मनुहार गीत संकलन (1998)
किससे क्या कुछ बात कहें व्यंग्य (2012) चलो छुएँ आकाश बाल गीत/कविताएँ (2015) शब्दों की बस्ती में व्यंग्य/गीत/कविताएँ (2016) साथ नहीं देती परछाई गज़ल संग्रह (2018)
प्रवाह 1-ए, सिल्वर ऑक्स कॉलोनी, अन्नपूर्णा रोड़, इंदौर 452009 (म.प्र.)
मो. 9826439386

आद्य शंकराचार्य द्वारा रचित नर्मदाष्टकम के पद मे रेवा को अभय प्रदान करने वाली, मार्कण्डेय ऋषि को विशाल भवन प्रदान करने वाली, वसिष्ट, सिष्ट, पिपलादी तथा कर्दम आदि मुनियों का कल्याण करने वाली, ब्रह्मा, विष्णु, शिव को अपना धामरूपी कवच देने वाली, तट पर विचरण करते लाखों जीव जन्तुओं तथा सारस पक्षी को भोग प्रदान करने वाली माँ रेवा, सबको देती है कुछ न कुछ मेवा। रेवा कुवारी है, जिसे अपने बाहुपाश मे बांधने की चेष्टा करने पर वह सहस्त्रधारा के रूप मे बह निकली। कहा भी गया है ओर सत्य है कि गंगा मे स्नान से ओर रेवा के दर्शन मात्र से पुण्यलाभ प्राप्त होता है । स्वयं गंगा वर्ष मे एक बार नर्मदा मे स्नान करने आती है। केवल नर्मदा ही एसी नदी है जिसकी सतत परिक्रमा की जाती है। नर्मदा पुराण को बडे भक्तिभाव से पढा/सुना जाता है। वे शहर कितने भाग्यशाली हैं जो नर्मदा तट पर हैं। मंडला, जबलपुर , नर्मदापुरम, नेमावर, औंकारेश्वर, बडवाह, महेश्वर, अंकलेश्वर आदि।

रेवा मैया पुकारे

कल कल करती बहे नर्मदा
खुश हैं दोनों किनारे,
सुबह शाम डूबे भक्ति मे
रेवा मैया पुकारे।

1.

डुबकी या केवल दर्शन से
मिल जाता है फल,
आज भी गाने लग जाता है
सुखदायी है कल ।
जल मे झिलमिल करते हैं
नीलगगन के तारे ।
कल कल.....

2.

परिक्रमा रेवा मैया की
पैदल या फिर बस मे,
एक स्फूर्ति आ जाती है
यात्री की नस नस मे ।
रस्ते भर मे अद्भुत दिखते
बस नियति के नजारे ।
कल कल.....

3.

घाट घाट पर बसी हुई है
बस भक्तों की बस्ती,
क्या कम आंके उनकी भी है
एक अलग ही हस्ती ।
भक्तों की तो विजय सदा ही
कब किससे वे हारे ?
कल कल.....

4.

दिया है सबकुछ न छोडा है
बोलो इन नदियों ने,
इनकी महिमा सदा ही गायी
बीती सब सदियों ने ।
पढे लिखे तो सब जय बोलें
सबके वारे न्यारे ।
कल कल.....

रेखांकन - मनोहर काजल

लहरों को ही पास बुलाएं

तट पर बैठें कुछ बतियाएं
लहरों को ही पास बुलाएं।

1.

मंद बहे निर्मल सी धारा
सबको अच्छा लगे किनारा,
सदा स्व्च्छ ही बना रहे यह
नहीं है क्या कर्तव्य हमारा ?
करके गंदा पवित्रता को
किसी नदी को नहीं रूलाएं।
तट पर.....

2.

सबको कुछ देती माँ रेवां
भले ही कोई करे न सेवा
जिसका जितना भाग्य यहाँ
उसको उतना मिलता मेवा।
जिसको पानी ना स्वीकारे
ऐसी वस्तु नहीं मिलाएं।
तट पर.....

3.

नियति से मित्रता निभाना
वरना सबको है पछताना,
भले अभी हों एक जगहपर
अलग अलग सबको है जाना ।
चंदा भी तो रोज देखता
जल मे अपनी भिन्न कलाएं।
तट पर.....

4.

दूषित हो जो निर्मल पानी
सोचो कितनी होगी हानि ?
आज भले ही कितनी करलो
कल ना होगी कुछ मनमानी।
तट से टकराकर ये लहरें
बार बार सबको समझाएं।
तट पर.....

■

ग़ज़ल

सुन्दरलाल प्रजापति की ग़ज़लें

सुन्दरलाल प्रजापति

सहायक संचालक (से. नि.) कोष एवं लेखा (छ.ग.)
प्रकाशन:- गजल संग्रह (सुन्दरलाल प्रजापति की शायरी) रुचियाँ, चित्रकारी, गायन, शायरी
टी-3 फारच्यून इन्क्लेव
(अमरनाथ कालोनी के पास)
कोलार रोड भोपाल (म.प्र.)
मो. 9826586182

रेखांकन - मनोहर काजल

वफा से कर नहीं सकता कभी तोबा हमारा दिल।
वफा तो वो ही कर सकते हैं जो दिलदार होते हैं।

मोहब्बत की रवायत को नफा नुकसान क्या मालूम।
मगर दिल की दुआओं के वही हकदार होते हैं।

यह दुनिया चल रही है आज तक बस चंद लोगों से।
के जिनके पुण्य कर्मों से शहर . गुलजार होते है।

बनाकर कोई भी रिश्ता निभाना है बहुत मुश्किल।
हे लंबी लिस्ट लेकिन खास तो दो-चार होते हैं।

बहुत होती है इज्जत दोस्तों में ऐसे लोगों की
जो लोगों की मदद को हर समय तैयार होते हैं।

.....

एक अर्से बाद मौसम में रवानी आ गई
शब्द बूढ़े हो चले थे अब जवानी आ गई

फिर अमन के कुछ कबूतर आ गये मुंडेर पर
ऐसा लगता है मोहब्बत कहानी आ गई

कुछ दिनों से जाफरानी रंग में तब्दील थे।
फिर उन्हीं बागों में खिलकर रातरानी आ गई।

फिर जुटाया हैं यहाँ कुछ शायरों ने हौंसला।
मुझकों लगता है कि अब हिम्मत पुरानी आ गई।

आज तक हैरान थे मासूम फूलों के शजर।
अब कलम की खाद लेकर बागवानी आ गई।

.....

सरिता कूल पे शामिल हो कर गीत पखेरू गाएं।
जल तरंग की धुन बिखरा कर झरने बहते जाएं।

यौवन के भरपूर शिखर पर चढ़कर इस मौसम में।
लिपट रही तरुवर संग बेलें बार बार बल खाएं।

बांध बिजुरिया की पायलिया, सिर सतरंग चुनरिया।
इंद्र धनुष आकाश मे नाचे लोच कमरिया खाएं।

फेंक रही धरती गुलाल जों नभ पर चढ़ें घटाएं।
और जवाब में काले बादल रिमझिम जल बरसाएं।

.....

सपनों के इस नील गगन मे कुछ खोया सा लगता है।
तरुवर बात करें आपस मे जग सोया सा लगता हैं।

चांद देखता है बेमन से धरती की मीनारों को।
हवा उड़ाकर ले गयी शायद नाते रिश्तेदारों को।

गुजर गयी हैं भोर सुहानी कहां किसी को पता चला।
शाम सोचती हैं पल-पल मैं तनहा कैसे हुई भला।

ऐसी तनहाई मे शायद मानव जी नहीं पाता है।
इन शजरों को देखो जिनको झूम के जीना आता है।

■

पुस्तक समीक्षा

कला आलोचना के आयाम

-डॉ. अंजलि पांडेय

पुस्तक विवरण-

कृति	:	कला आलोचना के आयाम
लेखक	:	प्रो. राजाराम
प्रकाशक	:	सप्तवर्णी सूर्या परिसर, सर्वधर्म सी-सेक्टर, कोलार मार्ग,भोपाल-462042
मूल्य	:	₹500/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम , 2023

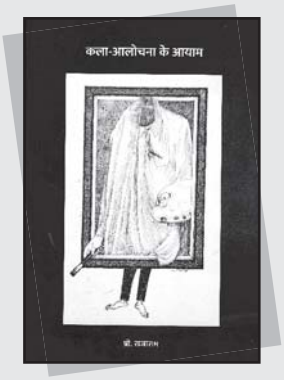

प्रोफेसर राजाराम मेरे गुरु भी रहे हैं और मार्गदर्शक भी मेरा सदैव ही यह प्रयास रहता था कि मैं अपने कला एवं लेखन संबंधी कार्यों का मूल्यांकन उनके द्वारा करवा सकूं। उनके द्वारा किए गए मूल्यांकन के बाद में अपने आप को बड़ा आश्वस्त पाती थी कि मैंने कुछ ठीक सा काम कर लिया है आज उन्हीं के कार्य को रेखांकित करना मेरे लिए अत्यंत दुष्कर कार्य है मैं स्वयं को इस योग्य नहीं समझ पा रही थी परंतु आदरणीय मैडम के साधिकार आग्रह ने आज मुझे आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया है साथ ही साथ लेखन सामग्री पर अपने विचार प्रस्तुत करने की चेष्टा भी में प्रथम बार ही कर रही हूं इसलिए अनेकों गलतियां होना संभव है मैं आप सभी से विनम्र निवेदन करती हूं आप मेरे इस प्रथम प्रयास की त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

कला आलोचना के आयाम पुस्तक के लेखक सुप्रसिद्ध कला आलोचक, वरिष्ठ चित्रकार कला गुरु, प्रोफेसर राजाराम हैं तथा इस पुस्तक का संपादन डॉ. श्रीमती बिनय राजाराम द्वारा किया गया है। यह पुस्तक सौंदर्य तथा कला समीक्षा पर आधारित आलेखों तथा निबंध रूप में प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का आवरण चित्र फ्रेम में जड़ा चित्रकार स्वयं प्रोफेसर राजाराम द्वारा बनाया गया है।
तीन खंड में विभक्त इस पुस्तक के 12 अध्याय हैं।

इस पुस्तक के **प्रथम खंड**- ''कला के सौंदर्यशास्त्र की नव व्याख्या में''

कला के सौंदर्य शास्त्र की विवेचना की गई है, जिसमें कला के मूलभूत तत्व, बौद्ध कला का वैश्विक विस्तार, प्राचीन भारतीय कला इतिहास, वैज्ञानिक आधुनिक कला, अंतर्राष्ट्रीय कला आंदोलन, वर्तमान में कला आलोचना की स्थिति, मध्य प्रदेश की बीसवीं शताब्दी का कलात्मक सर्वेक्षण, तथा प्रमुख चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन के व्यक्तित्व आदि महत्वपूर्ण विषयों पर सारगर्भित मतांकन किया है।

द्वितीय खंड- आलोचना की आश्वस्ति- दो भागों में वर्णित है। प्रथम भाग अंतरराष्ट्रीय कलाकार तथा प्रभाववादी स्ट्रोक्स के सिद्धहस्त चित्रकार दया कृष्ण जोशी को समर्पित है इस लेख में डीजे जोशी के संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वृतांत है जिसे लेखक ने पूरी निष्ठा एवं न्यायोचित रूप से परिभाषित किया है साथ ही उनकी कला शैली की भी उन्होंने खुले दिल से प्रशंसा की है ।

पुस्तक के द्वितीय भाग में ग्वालियर मध्य प्रदेश में 25 दिसंबर 1974 से 10 जनवरी 1975 तक संपन्न होने वाले पांचवी अखिल भारतीय मूर्तिकार शिविर में शिरकत करने वाले प्रमुख मूर्तिकार श्री एम उस्मान सिद्धकी, श्री अनंत पंडा, श्री एम टी सासवडकर, श्री मदन भटनागर, श्री बलबीर सिंह कट, श्री राम छाटपार, श्री वी आर खजूरिया, श्री हरि श्रीवास्तव, श्री अवतार सिंह पंवार, एवं श्री रमेश जैन नूतन की कार्यशैली एवं व्यक्तित्व का रेखाचित्र है।

तृतीय खंड- उनकी कला दृष्टि तथा स्वयं की प्रयोग धर्मिता पर आधारित के नवाचारों का लेखा-जोखा है।

डॉ बिनय राजाराम द्वारा कथित 'संपादकीय समर्पण' उनके हृदय के अंतरतम उद्गार है जिसे उन्होंने श्रद्धा सुमन के रूप में प्रस्तुत किया है। 'चाक्षुष कला को समर्पित एक निष्ठावान व्यक्तित्व: प्रोफेसर राजाराम' आलेख द्वारा डॉ. बिनय ने प्रोफेसर राजाराम के व्यक्तित्व के उन महत्वपूर्ण स्वरूप को प्रतिध्वनित किया है जिसने

वर्षों तक उनके स्वयं के जीवन को गुंजायमान किया है।

प्रस्तुत आलेख में डॉ. बिनय राजाराम द्वारा, प्रोफेसर राजाराम के चित्रकर्मी, कला समीक्षक, नवोन्वेषी, नवाचार, कलागुरु तथा उनके आवां-गार्द, रचनात्मक, सृजनात्मक एवं भावनात्मक 'रूप' को ना सिर्फ 'भेदा' गया है बल्कि उसके 'प्रमाण' स्वरूप साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं। इस आलेख में उनके 'भाव' संनिहित शब्द, उनके सरस पूर्ण जीवन के 'लावण्य' की प्रस्तुति हैं। जो उनके सहधर्मी, मार्गदर्शी, कलागुरु श्री राजाराम जी के व्यक्तित्व के 'सादृश्य' का 'योजना-बद्ध', 'वर्ण' अंकन है, एवं प्रारंभिक पृष्ठ में उल्लेखित चित्रसूत्र के कला -षडंग का उद्धरण बन पड़े है।

इस पुस्तक पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए मैंने प्रोफेसर राजाराम के अलग-अलग विषयों पर आधारित शोध आलेखों को लेने का प्रयास किया है।

रूपध्वनि:

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय रूपध्वनि में वे कहते हैं कि ''दुनिया की एक-एक कलाकृति में मुक्ताकारी रूपांकन कला तत्व अंतर्निहित है जैसे बिना स्वर का संगीत कैसा ?''

वे लिखते हैं कि कलाकृति के रूपबद्ध तथा स्वतंत्र आकार दोनों का ही अपना तात्विक महत्व है, इसप्रकार प्रत्येक कलाकृति अपनी निजी पहचान तथा कलेवर के साथ अति महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। उनके अनुसार ''प्रत्येक कलाकृति अपने संपूर्ण स्वरूप तथा निजता के साथ ही ग्राह्य होती है''।

इस आलेख में उन्होंने भारत की पारंपरिक नागर तथा आदिवासी लोक कला, एवं पश्चिम की निसर्गवादी पारंपरिक शैली के स्वरूप की भिन्नता को रेखांकित किया है। साथ ही उन्होंने प्राचीन एवं मध्य काल के शास्त्रोक्त चित्रों और मूर्तियों के धार्मिक संदेशवाहक स्वरूप तथा धार्मिक विषयों की ओट में लौकिक और अलौकिक की अभिव्यक्ति करते शिल्पकला पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

भारतीय शास्त्रीय कला तथा संस्कृति का पूर्वोत्तर, सुदूर पूर्व, मध्य एशिया, मिस्र तथा भूमध्यसागर तटीय राष्ट्रों से लेकर यूरोप के बाइजेंटाइन साम्राज्य एवं शेक्सपियर के समय तक के विस्तार एवं प्रभाव को पहचाना तथा उद्घाटित किया है। वे इसे विश्व स्तरीय कला इतिहास पर भारतीय कला एवं कलाकार की अद्वितीय उपलब्धि बताते हैं। अपने कथन के पुष्टि स्वरूप वे ब्रांकुसी, पाब्लो पिकासो की कला शैली तथा आनंद कुमार स्वामी के कला संबंधी विचारों का उद्धरण भी देते हैं।

प्राचीन, अर्वाचीन तथा मध्ययुगीन काल के चित्र तथा शिल्प की लाक्षणिक विशेषताओं, रीतिकालीन अलंकारिकता, भारतीय कला एवं साहित्य में उपमेय तथा उपमानों के प्रतीकात्मक स्वरूप को उन्होंने बखूबी पहचाना है।

प्रोफेसर राजाराम लिखते हैं कि भारतीय कलाकार के इस अद्भुत रूप अविष्कार का अनूठापन यह है कि उसने अपनी कृति में ना तो उपमेय की प्रतिकृति बनाई है और ना ही उपमान की। धनुषाकार भोंहे अंकित करने में भारतीय शिल्पी या चित्रकार ना पाश्चात्य दृष्टिकोण से हू-बहू भौहें रचता है ना भौहों के स्थान पर हुबहू धनुष की आकृति अंकित करता है। बल्कि धनुष रूपी उपमान का चुनाव करके वह भौहें रूपी उपमेय के सौंदर्य को द्विगुणित श्रेष्ठता के चरम बिंदु पर ले जाता है । इस प्रकार भारतीय कवि अथवा कलाकार उपमेय और उपमान के बीच होने वाले सूक्ष्म व्यापार को, तीसरा ही प्रतीकात्मक रूप दे देता है।

वे शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों के शारीरिक उपमानों की व्याख्या नृत्य, नाटक, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला के संदर्भ में तो करते ही हैं। साथ ही कालिदास के काव्य तथा नाटक, अजंता के विशाल भित्ति चित्र, सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा, एलिफेंटा के शिव पार्वती विवाह पैनल, रीवा की जेठ-भौजाई प्रतिमा, खजुराहो की प्रेमी युगल के दैहिक सौंदर्य का वे शाब्दिक रूपांकन भी करते हैं।

सुप्रसिद्ध मूर्तिकार राम सुथार द्वारा चंबल बांध पर, अर्वाचीन समय में बनाई गई सीमेंट की 30 फुट ऊंची 'चंबल माता की प्रतिमा' तथा इसके आसपास के वातावरण व सौंदर्य प्रतिमानों की उन्होंने जो काव्यात्मक व्याख्या की है वह कला तथा साहित्य का अद्भुत संगम है तथा यह उनके कथन- यह रूपाकार ''पाठक के मानस पटल पर रूपध्वनि शक्ति के माध्यम से ध्वनित करके आंतरिक सादृश्य को आस्वाद्य बना देता है।'' को सिद्ध करती है। यह उनके शास्त्र सम्मत, ऐतिहासिक काल क्रम की सूक्ष्म परख तथा विस्तृत दृष्टिकोण का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो पारंपरिकता से आधुनिक बोध के टकराहट में भी ''आवां-गार्द सृजनात्मकता'' को तलाश लेती है। अतैव समृद्ध भारतीय कला परंपरा में ऐसा बहुत कुछ है जिसमें इस प्रकार के प्रयोग की संभावना है छुपी हुई है।

इस खंड का **चतुर्थ अध्याय**

बौद्ध कला का वैश्विक विस्तार-

भारतीय कला के विस्तृत स्वरूप एवं उसके विश्वस्तरीय प्रभाव पर आधारित है। इस लेख में बौद्ध कालीन धार्मिक आस्थाएं तथा उनके प्रचार - प्रसार हेतु कला का चाक्षुष माध्यम के रूप में किये गये उपयोग का गहन अध्ययन है, जिसके साक्ष्य साहित्य तथा कला के रूपाकार है।

लेख के प्रारंभ में ही प्रो राजाराम स्वीकारते हैं कि मध्ययुगीन बाइजेंटाइन, ऑर्थोडॉक्स ईसाई संसार के धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में 80% प्रभाव बौद्ध विचारधाराओं पर आधारित है। जिसके शोध आधारित प्रमाण स्वरूप वे ईसाई धर्म ग्रंथ 'बारलम और योआसफ' को प्रथम शताब्दी के भारतीय संस्कृत कवि

अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरितम निर्विवाद ईसाई करण मानते हैं।

उनके द्वारा किए गए शोध अनुसार 'दियोनीसियाका पोयम' 'द किंग प्रीस्ट प्रिस्टर जॉन' 'ए रिप्रेजेंटेशन ऑफ़, लाइफ फुल लाइफ', 'सर्बियन प्लास्टर' आदि पाश्चात्य साहित्य के कथानक, भारतीय मूल के प्रचलित कथानकों से साम्य रखते हैं।

कृष्ण द्रौपदी चीरहरण प्रसंग के समान ही प्रभु यीशु द्वारा सेंट इनेस (आग्नेस) को निर्वस्त्र होने से बचाना, तथा यूनान के थेसालोनिकी के एक गिरजाघर में मोजैक तकनीक से बना सेंट दिमित्रियस को उनकी मां द्वारा भेंट करते हुए भित्तिचित्र, अजंता की गुफा नंबर 17 के राहुल समर्पण वाले चित्र के समान प्रतीत होता है।

इसी के साथ-साथ बाइजेंटाइन कला में प्रभामंडल, कलहंस, कमल दलों की सघन बेलें, अथोस पर्वत के मठों में वॉल्ट, चंदवा, स्तंभ शीर्ष, कंगूरे आदि कई वास्तु एवं कला अभिप्रायों पर भारतीय कला अभिप्रायों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

अपने इस शोध आलेख के माध्यम से जहां प्रो राजाराम, बौद्ध धर्म, दर्शन तथा कला को, बाइजेंटाइन कला का प्रतिद्वंदी ना मानकर भारतीय कला को पोषक के रूप में स्थापित करते हुए भारतीय विश्व बंधुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का परिपालन करते हैं, वहीं भारतीय कला एवं साहित्य के वैश्विक विस्तार पर, शोध आधारित एक व्यापक, सघन, अनुसंधान की आवश्यकता की संस्तुति भी करते हैं।

निश्चित ही यह शोध आलेख मध्ययुगीन बाइजेंटाइन कला पर किए गए गहन शोध अध्ययन का सार है। इस प्रकार के शोध आधारित आलेख के माध्यम से भारतीय कला के वैश्विक स्वरूप को न केवल पुष्टि मिलती है बल्कि प्राचीन भारतीय एवं यूरोपीय धार्मिक आस्थाओं, मानवीय मूल्यों, तथा वैचारिक संबंधों इत्यादि के आदान-प्रदान के प्रमाण मिलते हैं तथा साथ ही शोधकर्ताओं को नवीन दिशा एवं शोध सामग्री भी मिलेगी।

मध्य प्रदेश की कला: बीसवीं शताब्दी का सर्वेक्षण

इस आलेख में बीसवीं शताब्दी के मध्य प्रदेश के लब्ध प्रतिष्ठित कलाकारों का परिचयात्मक विवरण, उनकी कलात्मक शैली, क्षेत्र, मध्य प्रदेश के प्रमुख शिक्षण संस्थानों से उनके जुड़ाव की चर्चा, कला संस्थानों तथा महाविद्यालय कला शिक्षण पद्धति की जानकारी को यथेष्ट स्थान दिया गया है। इस आलेख में मध्य प्रदेश के अलग-अलग कला क्षेत्रों के गुरु शिष्य परंपरा की लगभग तीन पीढ़ियों की शैलीगत सर्वेक्षणात्मक प्रस्तुति की गई है। जो मध्य प्रदेश की कला के क्षेत्र के कल आज और कल को चलचित्र की भांति प्रस्तुत करती हुई प्रतीत होती है।

बेजोड़ कला शिक्षक देवलालीकर और श्री रेगे, विश्व विख्यात कलाकार एमएफ हुसैन, एन एस बेंद्रे, बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा रीवा रियासत के प्राचीन भारतीय मानदंडों के प्रति समर्पित बघेलखंडी कलम के सिद्धहस्त कलाकार अवध शरण सिंह बावनी, के साथ साथ चीनी स्याही -चित्रांकन में महारत हासिल करने वाले राम मनोहर सिन्हा, मूर्तिकार मदन भटनागर, मध्यप्रदेश में जन्मे श्री एच. एस. रजा तथा अन्य क्षेत्रों से आकर, मध्य प्रदेश को अपना निवास स्थान बनाने वाले परितोष सेन, रुद्रहांजी, सुब्बकृष्णकी कला क्षेत्र एवं कलात्मक अभिरुचि पर प्रकाश डाला गया है।

अगली पीढ़ी के सिद्धहस्त कलाकारों में हरफनमौला, प्रभाववादी सैरा चित्रांकन के महारथी श्री डी. जे. जोशी, पद्मश्री दादा फड़के, मूर्तिकार नागेश यावलकर, श्री एल. पी. सीहारे, चंद्रेश सक्सेना, श्री श्रेणिक जैन, श्री सासवडकर, रमेश पटेरिया, सुरेश चौधरी, वसंत आगाशे, रमेश नूतन, गणपतये, सचिदा नागदेव,आदि चित्र कर्मी एवं मूर्तिकारो की कला शैली को उन्होंने बखूबी पहचान कर पूरी पकड़ एवं निष्पक्षता के साथ अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

श्री धवल कांत, श्री अफजल, सुभाष निंबालकर, रॉबिन डेविड, शोभा घारे, कला निर्देशक मंजूर हसन, शिल्पी ओम प्रकाश खरे, चित्रकार प्रभु जोशी, देवीलाल पाटीदार, सीमा धुरैया, हरचंदन सिंह भट्टी, मंजूषा, रचना यादव, अनिल गायकवाड, आदि कलाकारों में जहां वे भविष्य की संभावनाएं तलाशते हैं वही काष्ठ शिल्पी मनोहर गोधने, व गणतंत्र दिवस पर उनके द्वारा बनाई गई मध्य प्रदेश की झांकियां की चर्चा के साथ उनके प्रतिभावान शिष्यों विश्वामित्र वासवानी, हरि भटनागर, डीपी शर्मा, मीरा गुप्ता की भी चर्चा करते हैं। ग्वालियर के श्री लक्ष्मण भांड, एसके शिंदे, दादा कान्हारे एवं कोलकाता से आकर भोपाल बसने वाले श्री सुशील पाल के पुख्ता अकादमी कार्यों की वे पुरजोर सराहना करते हैं ।

आगे वे अपने स्वयं के द्वारा किए गए नवोन्मेषी कार्यों एवं कला सिद्धांतों, नई शिक्षा संबंधी पाठ्यक्रम में नवाचारों तथा सैद्धांतिक विषयों से संबद्ध नवीन पाठ्यक्रम के लागू करने की भी अनुशंसा करते हैं एवं उपरोक्त दिशा में स्वयं के द्वारा किए गए प्रयासों की चर्चा तथा अपेक्षात्मक अपेक्षित सहयोग ना मिल पाने के कारण नवीन शिक्षण संबंधी पाठ्यक्रम की निरंतरता में आए अवरोधों से व्यथित होते नजर आते हैं। मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के विभाजन के उपरांत क्षतिपूर्ति हेतु स्थापित किए गए कला विश्वविद्यालयों की शिक्षण के क्षेत्र में दयनीय स्थिति की भी वे निर्भीक चर्चा करते हैं।

50 के दशक में प्रदेश के कुछ कला संगठनों जैसे फ्राइडे ग्रुप, स्पेक्ट्रम ग्रुप, यंगआर्टिस्ट ग्रुप, उज्जैन का कलावर्त एवं आर्ते जोवेन ग्रुप, रिदम आर्ट सोसाइटी, कालिदास समारोह आदि का उन्होंने उल्लेख किया है। इसी के साथ-साथ मध्यप्रदेश के कला अकादमी जैसे कल्चरल सोसायटी एवं कला वीथिका ग्वालियर, राज्य कला अकादमी, महाकौशल कला परिषद, इंदौर में नेहरू

कला केंद्र, भोपाल में जनजाति संग्रहालय तथा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भारत भवन के वर्णन के साथ-साथ यहां की कला पत्रिकाओं-रिदम आर्ट सोसाइटी, आकार, कला परिषद से पूर्वाग्रह, भारत भवन बुलेटिन बहुवचन, तथा उनके स्वयं के द्वारा संपादित पत्रिका 'आर्ट फोकस' पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

मध्य प्रदेश कला परिषद द्वारा संपादित डी. जे. जोशी, रूद्रहाजी, रजा पर छपे मोनोग्राफ तथा एलएस राजपूत राम मनोहर सिन्हा विष्णु चिंचालकर एवं डीजे जोशी की कलाकृति की रंगीन प्रतिकृति को भी रेखांकित किया है ।13 फरवरी 1982 को उद्घाटित भारत भवन, जिसमें वे स्वयं रूपंकर प्रभाग के निदेशक रहे को भी उन्होंने वांछित स्थान दिया है, शोध आलेख के अंत में उन्होंने मध्यप्रदेश के राज्य स्तरीय शिखर सम्मान पुरस्कारों एवं चक्रधर अमृता शेरगिल फैलोशिप की चर्चा करते हुए कला आलोचना के क्षेत्र में दी जाने हेतु घोषित की गई दो फैलोशिप के आरंभ किए जाने हेतु प्रतीक्षारत दिखाई देते हैं।

नव यथार्थवादी चिंतन आदमी की यथार्थवादी चीर फाड़ ही नहीं उसका मनुष्य निर्माण भी जरूरी।

इस आलेख के शीर्षक से ही आलेख में सन्निहित मूल भाव स्वयमेव प्रगट हो रहे है। कला, साहित्य, सिनेमा तथा टीवी के माध्यम से यथार्थवाद के नाम पर वर्तमान समाज में जो आदर्श, मूल्य एवं निरर्थक सच्चाई परोसी जा रही है उसके दुष्प्रभाव दिखाई देने लगे है। इस आलेख में टीवी तथा फिल्मों के माध्यम से दिखाई जा रही स्तर विहीन सामाजिक यथार्थता का वह पुरजोर विरोध करते हैं तथा उनके स्थान पर अच्छे सामाजिक सीरियल जैसे रामायण, जस्सू बेन जयंती लाल जोशी की ज्वाइंट फैमिली, तथा मैं तेरी परछाई हूं जैसे रचनात्मक संदेश पूर्ण तत्कालीन धारावाहिकों को दिखाए जाने का वे समर्थन करते हैं।

प्रोफेसर राजाराम के द्वारा किए गए कला में प्रयोगधर्मिता में चैतन्य संस्थापन, भारतीय शहीद स्मृति टावर तथा और भरमा गए असल तोते की मैं साक्षी भी रही हूं महाविद्यालय में ही कक्षा कार्य के पश्चात उन्होंने समय निकालकर इस विशाल चित्र को पुराने अखबारी कागज पर बनाया था।

पुस्तक के समापन पृष्ठों में उनके स्वयं के द्वारा बनाए गए रेखाचित्र, व्यंगचित्र, तथा व्यक्तिचित्र प्रकाशित है। कुछ ही गिनी चुनी रेखाओं से व्यक्ति के व्यक्तित्व का आकलन वे अत्यंत सहजता तथा सरलता से कर लेते थे। पेंसिल से बने एलोरा के शिव पार्वती, मोढेरा के मंदिर की नर्तकी तथा नानिया और दादी रेंडम स्केच एवं इंक पेन से बने राहुल यशोधरा एवं बुद्ध, बेंच पर बैठा आदमी, फ्रेंच शिक्षक विश्वास जी तथा गांव का दृश्य जिसमें गांव के एक घर के बाहर का रेखांकन तथा हुक्का पीते हुए व्यक्ति का फुल स्केच बना है अच्छे उदाहरण है।

पेन ड्राइंग द्वारा बनाए गए उपासना की दादी के आवक्ष चित्र में जहां सौम्य, सरल, मातृत्व की झलक दिखाई देती है वहीं कवि श्रीकृष्ण सरल का रंगीन पेस्टल से बना व्यक्ति चित्र उनके चिंतक, गंभीर व्यक्तित्व का प्रभावपूर्ण अंकन है। खेल कर आने के पश्चात थक कर बैठे, सुस्ताते हुए से अपने पुत्र कौस्तुभ के बाल रूप को भी उन्होंने कम से कम में बखूबी व्यक्त किया है।

व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का आकलन कर के उसे कुछ ही स्ट्रोक्स के द्वारा हुबहू चित्रित कर देने में उन्हें महारत हासिल थी। उनके व्यंग चित्र आधुनिक रामनामी, नवआदिवासी, फुलाई हुई प्रतिभा, तथा सर्व ग्रासी आधुनिक मानव समाज में व्याप्त दोहरे चरित्र एवं छद्म रूप पर वे कठोर प्रहार करते नजर आते हैं, तो वही इस पुस्तक का आवरण चित्र फ्रेम में जड़े चित्रकार में उन्होंने स्वयं की सोच से मुक्त तथा नियमों में जकड़े हुए, शीर्ष विहीन, कला संसाधनों से युक्त चित्रकार के व्यक्तित्व को उकेरा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूपध्वनि में जहां प्रो राजाराम, ने कला के सौंदर्य पक्ष पर अपनी कलम चलाई है वहीं बौद्ध कला का वैश्विक विस्तार में कला इतिहास के शोध परक गहन अध्ययन का बखूबी सरल शब्दों में लेखन किया है। वे अच्छे इतिहासकार भी थे जो तत्कालीन यूरोपीय कला के ऐतिहासिक पक्ष को बेबाक तरीके से सामने लाएं। मध्य प्रदेश की कला 20 वीं सदी का सर्वेक्षण में उन्होंने मध्यप्रदेश के कला इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात किया है। मध्य प्रदेश की कला की विकास यात्रा के साथ न्याय करने का यह ईमानदार प्रयास है। नव यथार्थवादी चिंतन में तत्कालीन टीवी सीरियलों में परोसे जा रहे विद्रूप मानवीय मूल्यों के प्रति उन की छटपटाहट स्पष्ट हो जाती है । क्या यह वही मानव मूल्य है जिन्हें भारतीय संस्कृति ने सदियों से संजोया है।

कला गुरु राजाराम के लेखन कार्य एवं चित्रण शैली को रेखांकित करना मेरे लिए सरल नहीं है। उनकी विस्तृत व्यक्तित्व को कुछ ही शब्दों में समेटना अत्यंत कठिन है। आज उन्हीं के आशीर्वाद से मैं अपनी वाणी को स्वरूप दे सकी। मैं आदरणीय मैडम की एवं आप सभी की आभारी हूं कि आपने मुझे बोलने का अवसर प्रदान किया जिससे मैं प्रोफेसर राजाराम के विचारों को अपने शब्दों के माध्यम से आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर सकी। ना चाहते हुए भी अपनी वाणी को विराम देते हुए मैं आप सभी को बारंबार नमन करती हूं एवं आपका अभिवादन करती हूं धन्यवाद।

समीक्षक, विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल हैं।

■

पुस्तक समीक्षा

राम अविराम: शब्दों की नर्मदात्मक यात्रा

-डॉ. राजीव सक्सेना

पुस्तक विवरण-

कृति	:	राम अविराम
लेखक	:	नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
प्रकाशक	:	कला समय भोपाल (म.प्र.)
मूल्य	:	₹400/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम , 2022

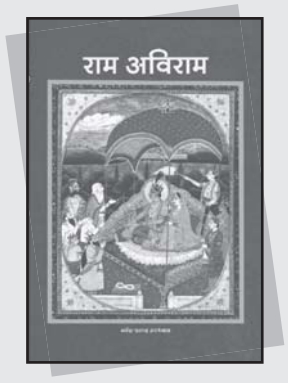

कला एवं संस्कृति विद्या के मूर्धन्य विद्वान एवं स्वनाम धन्य श्रीयुत नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की अद्‌भुत कृति ''राम अविराम'' राम तत्व की लौकिक और पार लौकिक यात्रा का सारस्वत शब्द मंत्र हैं। लोक में ऐतिहासिक राम, मिथकीय राम एवं परस्पर पूर्ण ब्रह्म राम यदि शब्द सरिता में प्रवाहित हो तो वे राम अविराम से ही प्रतीत होंगे।

श्री उपाध्याय जी जो मेरे अग्रज भी हैं, ने अपनी कृति में उनके राम को जन-जन की आस्था में ऐसा पिरोया है कि ग्राम जन, नगर जन, गिरि जन, अरण्य जन या लोक जन कोई भी हों कभी राम तत्त्व को शास्त्रीय अनेष्टुपों में उचारते है तो कभी लोक गीतों में कहीं' तत्सम में तो कहीं' तद्‌भव भाषा में। इन्हीं सन्दर्भों में शब्दों की क्या समाधि की स्थिति है जब वे लिखते हैं कि ''लगता है सारे अस्तित्व अयोध्या हो गये हैं और उनके मन सरयू के तट''। राम आस्था हैं, मर्यादा हैं,

जीवन तत्त्व हैं, और आदि तत्त्व भी, श्री उपाध्याय जी ने अपने ग्रंथ में विभिन्न संदर्भों के माध्यम से ''राम'' के इस तत्त्व को परीक्षित किया हैं। सबसे अधिक उल्लेखनीय यह भी है कि इस ग्रंथ में यह स्थापना कैसे हृदय से कला के रूप में विभिन्न लोक रंग, भित्ति चित्रों, पाषाण शिल्प, मूर्ति कला, चित्र शैलियों, चित्रांकन के प्रकल्पों में अवतरित हुयी, इसका सुस्पष्ट आस्तिक वर्णन प्राप्त होता हैं। यह आनंद तत्त्व की नर्मदा यात्रा सा यह ग्रंथ इतना अद्‌भुत है कि ''कभी-कभी ऐसा ही होता है कि देह तो अपने ठौर पर लोट आती है लेकिन मन नहीं लौटता''। प्रारंभ से विराम तक वाचन, मनन और चिंतन करते जाइये, राम की सुगंध अविराम से भी परे न जाने किस लोक मे ले जाती है जहाँ मात्र मन और आत्मा के सौन्दर्य का ही प्रवेश हो सकता है साधुवाद।।

यह ग्रंथ एक भावपुरुष सा अपनी सम्पूर्ण आस्तिकता बिखेरता हुआ पाठक के समक्ष अवतरित होता है। श्री उपाध्याय जी ने अपनी भाव यात्रा भी नर्मदा को ऊर्जीकृत करने के लिये विभिन्न स्थलों पर पं. विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, मोहन गुप्त, वसंत निरगुणे, श्री कृष्ण ''जुगनू'' जैसे समकालीन शीर्षस्थ विद्वानों की सम्मतियाँ उस धरातल पर प्रस्तुत की हैं, जिसका आधार वाल्मीकि, भवभूति कालिदास, तुलसी और परवर्ती शलाका से पुरुष रहे हैं।

इतिहास के अर्थ बोध और उसकी इयत्ता के परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाये तो प्रागैतिक भारतीय इतिहास से प्राचीन मध्य कालीन इनितलाहमकता से होते हुये वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राम और उनका कला पर प्रभाव था यूँ कहें कि रामायण के मूल प्रन्तव राम और सर्वत्र वृह्य कला पर उसका प्रभाव का अद्वितीय शब्द शिलालेख है, यह ग्रंथ।

पाठकगण इस ग्रंथ में चित्रांकन से संबधी महत्त्वपूर्ण संदर्भ भी पायेंगे। रंगीन चित्रों का समुच्चय, दृश्य और दृष्टि का सुक्ष्मता से पारायण कर ऐसे काल लोक में ले चलता है, जिसमें लगता है कि राम आनंद मस्तक रंगायित, चित्रित और शब्द रूप में विस्तरित हो जाते हैं। लगता ऐसा है कि यह मनस तत्त्व पर एक तिलक सा खंचित

हो गया हो; श्री उपाध्याय जी लिखते है कि ''स्वयं को तिलक करना आस्था को अर्ध्य चढ़ाना है और अपने पुरुषार्थ की दीप्ति को पूरी विनम्रता के साथ अकिचंन भाव के साथ अपने मस्तक पर धारण करना''।

समग्रता में यह ग्रंथ साहित्यिक कृति के साथ ही चित्रांकन विधा पर भी संदर्भ ग्रंथ हैं। भाषा अति सरल बोधगम्य के साथ लालित्य तत्त्व से पूरी तरह स्नेहित है, साधुवाद।

बस लोभ केवल यह है कि यदि ''श्रीराम'' तत्त्व की विवेचना आधुनिक मानव की समस्याओं के प्रकाश में और हो जाता तो अतिरिक्त मार्गदर्शन प्राप्त होता निश्चय ही श्री उपाध्याय जी अपने आगामी ग्रंथों में इस कामना की पूर्ति करेंगे।

शोधार्थी, विद्वतजन, साहित्य और कला से जुड़े परीक्षक गण और सामान्य पाठक ग्रंथ का सम्मान करेंगे, यह आश्वस्ति हैं।

इतने अच्छे प्रणयन हेतु सहस्त्र कोटि बधाइयाँ।

वास्तव में राम अविराम हैं।

शुभं भूयात्।

सम्पर्क : डी–102/10
शिवाजी नगर, भोपाल

पुस्तक समीक्षा

रास्ता इधर से भी है :जीवन मूल्यों की कथा

-अरविंद तिवारी

पुस्तक विवरण-

कृति	:	रास्ता इधर से भी है (उपन्यास)
लेखक	:	अश्विनीकुमार दुबे
प्रकाशक	:	इंक पब्लिकेशन, प्रयागराज
मूल्य	:	₹250/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम, 2022

अश्विनी कुमार दुबे व्यंग्यकार तो हैं ही एक कथाकार भी हैं। उनके कई उपन्यास और कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनका नया उपन्यास ''रास्ता इधर से भी है'' पाठकों को यह सोचने पर मजबूर ज़रूर करता है कि जीवन की अछोर भौतिक लिप्सा हमें मानव रहने देगी या नहीं ? उन्नति उर्फ पैसा कमाने की होड़ आत्मीय रिश्तों की ऊष्मा को सोख चुकी है। मानवीय व्यवहार का यह ठंडापन किस नई सभ्यता को जन्म दे रहा है। खासकर भारत जैसे घोर आध्यात्मिक देश में संवेदनहीन लोग क्यों बढ़ते जा रहे हैं। सोशल मीडिया पर एक वाक्य खूब वायरल होता है- पहले लोगों के पास घड़ी नहीं होती थी, पर समय खूब होता था। आज सबके पास घड़ी है, पर समय किसी के पास नहीं है।

उपन्यास का उद्देश्य यह बताना भी है कि शिक्षा सिर्फ़ नौकरी प्राप्त करने का साधन नहीं है। शिक्षा संपूर्ण जीवन को सुखमय बनाने का साधन भी है। सुख का स्रोत अच्छी नौकरी या सिर्फ पैसा ही नहीं है। ज्ञान सिर्फ मशीनी नहीं हो सकता। पुराने लोगों ने जो अनुभव से अर्जित किया है, वह ज्ञान भी महत्वपूर्ण होता है। वर्तमान दौर से पहले लोग अपने जीवन जीने के ढंग से नई पीढ़ी को प्रेरित करते थे। अब ऐसा कुछ नहीं है। इस उपन्यास में अश्विनी कुमार दुबे यथार्थ को आदर्श की ओर ले जाने का प्रयास करते नजर आते हैं।

हरिशंकर और उनके पुत्र प्रेम शंकर की कथा है यह उपन्यास। साथ ही हरिशंकर के बापू की कथा भी है। असली प्रेरणा तो लेखक ने उन्हीं से दिलवाई है। भाषा और शैली साधारण है पर उपन्यास का संदेश बड़ा है। रोचकता बनी रहती है।

संपर्क- रोडवेज डिपो के पीछे, मेहरा कॉलोनी,
शिकोहाबाद, 283135 (उ.प्र.)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक 'कलागुरु पद्मश्री डॉ. वि. श्री. वाकणकर और गुरुकुल'

-राजेन्द्र नागदेव

पुस्तक विवरण-

कृति	:	'कलागुरु पद्मश्री डॉ. वि. श्री. वाकणकर और गुरुकुल'
लेखक	:	डॉ. प्रीति निगोसकर
प्रकाशक	:	दी राइट ऑर्डर पब्लिकेशंन बैंगलोर कर्नाटक
मूल्य	:	₹599/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम , 2023

अक्सर देखा गया है कि महान विभूतियों को उनके जीवन काल में वह महत्व नहीं मिल पाता जिसके वे हकदार होते हैं। उनके महत्व की प्रतीति संसार से चले जाने के बाद होती है। अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त पुरातत्ववेत्ता और चित्रकार डॉ. वि. श्री. वाकणकर का महत्व भी उनके प्रयाण के बाद अब देश भर में महसूस किया जा रहा है। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यद्यपि शैलचित्रों की खोज के द्वारा भीमबेटका जैसे अपरिचित स्थान को विश्व-पटल पर अंकित करना रही है किंतु, इसके अतिरिक्त भी पुरातत्व, इतिहास, संस्कृति, कला आदि क्षेत्रों में उपलब्धियों की लंबी सूची है। उनका व्यक्तित्व भी अद्भुत था। डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन ने उनके विषय में एक अवसर पर कहा था 'वाकणकर विवेकानंद की परंपरा के हैं। ऐसे लोग सदियों में जन्म लेते हैं'। प्रथम वे चित्रकार ही थे। कालांतर में उनका पुरातत्व पक्ष इतना प्रबल हो गया कि चित्रकार पक्ष लगभग गौण हो गया। कम ही लोग इस सत्य से परिचित हैं। जीवन के अंतिम क्षणों में भी उनके हाथ में स्केच पेन था। सिंगापुर के एक होटल में रेखांकन करते हुए ही उन्होंने अंतिम साँस ली थी। समीक्ष्य पुस्तक उनके चित्रकार रूप और उज्जैन स्थित उनकी कला संस्था अर्थात उनके गुरुकुल 'भारती कलाभवन' पर मूल रूप से केन्द्रित है।

उज्जैन के फ्रीगंज मोहल्ले में घंटाघर के निकट एक सामान्य सी लाल रंग की इमारत थी। यह था सर (वाकणकरजी) का गुरुकुल। सर ने 1953 में इसकी स्थापना प्रथम विद्यार्थी सच्चिदा नागदेव को लेकर की थी जो बाद में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के चित्रकार हुए। इस संस्था का रूप सामान्य शिक्षण संस्थाओं से नितांत भिन्न था। पुस्तक में प्रकाशित कलाभवन के विद्यार्थियों के संस्मरण-आलेखों से जानकारी मिलती है कि वहाँ का वातावरण अत्यंत सहज था। सामान्य संस्थाओं की तरह कठोर नियम-कानून नहीं थे। आने वाले विद्यार्थी उस वातावरण में अपनापन महसूस करते थे। संक्षेप में, वहाँ ऐसा स्वतंत्र वातावरण था जो सृजन हेतु कलाकारों के लिए अनिवार्य सा होता है। कलाभवन में कला की विभिन्न शैलियों के प्रति भी किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं था। पारंपरिक एवं आधुनिक, दोनों शैलियों के लिए समान सम्मान था। सर के निधनोपरांत कलाभवन कलाबोध विहीन ट्रस्ट के हाथों में चला गया। उसका मूल रूप नष्ट हो गया। यह स्थिति कलाभवन के भूतपूर्व विद्यार्थियों के लिए अत्यंत पीड़ादायी रही। इस पीड़ा की अभिव्यक्ति पुस्तक में एक भूतपूर्व विद्यार्थी मनोज कुलकर्णी के आलेख में इस तरह हुई है-''सर के न रहने के बाद जो ट्रस्ट बना वह संगठन और परिवार का हो गया, जिसके पास बड़ा भवन तो रहा पर कल्पनाशीलता और कलाबोध का अभाव रहा। दुख होता है कि एक कलाकेन्द्र अब वाकणकर मार्केट के नाम से जाना जाता है''। प्रस्तुत पुस्तक सर के शिष्यों द्वारा अपने उसी पुराने प्रिय भारती कलाभवन को स्मृतियों में पुन: जीवित करने का एक सामूहिक प्रयास है।

दो सौ साठ पृष्ठों की पुस्तक में सर के व्यक्तित्व से जुड़े

कुछ पहलू, सर और कलाभवन के विद्यार्थी, कलाभवन के कुछ साथी और उनकी यादें, स्मृतिशेष, सर के कुछ साथी ये पाँच अध्याय हैं। अध्याय स्पष्ट रूप से अलग-अलग खण्डों में विभाजित नहीं होने के कारण परस्पर घुल मिल गए हैं। कौनसा अध्याय कहाँ आरंभ और कहाँ समाप्त होता है, पता नहीं चलता। पुस्तक में यह कमी खलती है।

पुस्तक में कलाभवन के विद्यार्थियों द्वारा सर के संबंध में लिखे गए अनेक संस्मरण हैं। सर के संसर्ग में रह कर हुए उनके स्वभाव, आचार विचार, व्यवहार संबंधी अनुभवों की अनेक यादें हैं जिनसे उनके कलाकार और पुरातत्ववेत्ता रूप के अलावा सामान्य व्यक्तियों से भिन्न व्यक्ति होने की छबि स्पष्ट होती है। सर अभिमान रहित थे। बच्चों में बच्चों की तरह घुलमिल जाया करते थे। प्रथम बार ही उनके संपर्क में आए हुए व्यक्ति को भी ऐसा प्रतीत होता था जैसे उनका परिचय युगों से है। वे 'सादा जीवन उच्च विचार' के मूर्तिमंत उदाहरण थे। उनके व्यवहार में एक सहज अपनापन था जो आसानी से किसी भी व्यक्ति को अपना बना सकता था। सर के पास साधन हीनता की परिस्थिति में भी येन केन प्रकारेण अपना ध्येय प्राप्त कर लेने की उत्कट इच्छाशक्ति और युक्तियाँ थीं। विद्यार्थियों के संस्मरणों में यह भी प्रतिबिंबित है कि उन्होंने अपनी विशिष्ट विचारधारा को कलाभवन पर कभी आरोपित नहीं किया वरन् विपरीत विचारधाराओं वाले महानुभावों को भी कलाभवन में विभिन्न अवसरों पर सादर आमंत्रित किया। पुस्तक में विद्यार्थियों ने कलाभवन से संबंधित अपनी स्मृतियाँ, अपने अनुभव साझा किये हैं। इन आलेखों से उस लाल रंग की इमारत के साथ-साथ वहाँ के समस्त क्रिया कलाप चलचित्र की तरह पाठक की आँखों के सामने आ जाते हैं। सुबह- सुबह पहले आ जाने वाले विद्यार्थियों द्वारा झाड़ू लगा कर सफ़ाई करना,दरी बिछाना, बरसात का मौसम आने से पहले छत को डामर से पोतना आदि यादें हैं। अनेक विद्यार्थियों ने वार्षिकोत्सव पर होने वाली गीत-संगीत संध्या का विशेष रूप से सविस्तार वर्णन किया है। यह रेखांकित किये जाने वाला तथ्य है कि कलाभवन में वेतनभोगी शिक्षक नहीं थे। वे नि:शुल्क पढाते थे और वरिष्ठ विद्यार्थी भी स्वेच्छा से शिक्षण कार्य में सेवाएँ देते थे।

पुस्तक में आए कालखण्ड का विस्तार सत्तर वर्षों का है। इस अंतराल में अधिकांश विद्यार्थी दिवंगत हो चुके हैं। उन पर विद्यार्थियों द्वारा लिखे गए आलेखों का एक अलग अध्याय है। इस तरह बिछड़े हुए वरिष्ठों को अंतरंगता के साथ याद किया गया है।

कलाभवन और सर से संबंधित महत्वपूर्ण तथा सामान्य सी प्रतीत होती सामग्री भी प्रचुर मात्रा में पुस्तक में संकलित है यथा, सर के रेखांकन,कलाभवन में आरंभ से बाद तक आए विद्यार्थियों के नाम और छायाचित्र, विदेश यात्राओं के दौरान सर द्वारा लिखे गए पत्र, कलाभवन का प्रतीक चिन्ह, लेटरहेड, सर की हस्तलिपि में विद्यार्थियों को दिये गए पत्र, प्रमाणपत्र, कलाभवन की गतिविधियों से संबंधित छायाचित्र, कुछ विद्यार्थियों के पेन्टिंग, लेखकों के संक्षिप्त परिचय, मोबाइल नम्बर आदि। यह सब इतने वर्षों बाद एकत्र करना और क्रमबद्ध तरीके से संयोजित करना वास्तव में बहुत श्रमसाध्य कार्य रहा होगा। पुस्तक में सर की धर्मपत्नी स्वर्गीया लक्ष्मी वाकणकरजी को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। सर के निधन के बाद वे कलाभवन को उसी रूप में चलते देखना चाहती थीं जो दुर्भाग्य से संभव नहीं हो सका। सर के अग्रज बापू वाकणकरजी का सर के शैशवकाल से युवावस्था तक का एक महत्वपूर्ण आलेख है जिससे उनके व्यक्तित्व के क्रमिक विकास की जानकारी मिलती है।

यह पुस्तक भारती कला भवन के विद्यार्थियों द्वारा अपने गुरु को अर्पित सामूहिक प्रयत्न से सम्भव हुई स्मरणांजलि है। इसकी संकल्पना सर की एक शिष्या डॉ. प्रीति निगोसकर ने की है। उन्हीं के लगभग तीन वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम इस पुस्तक के रूप में आया है। इस श्रमसाध्य कार्य के लिए वे निश्चय ही साधुवाद की पात्र हैं। इस पुस्तक के माध्यम से अतीत में जा चुका विद्यार्थियों का प्रिय लाल रंग वाला भारती कला भवन अपने उसी मूल रूप में उनके सामने पुन: जीवित हो उठेगा। सर के सभी शिष्यों, परिचितों एवं कलाप्रेमियों के लिए यह पुस्तक एक संग्रहणीय दस्तावेज है। अंत में पुस्तक में अंकित सर के निधन पर डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन लिखित ये पंक्तियाँ-

ये लहरें तो बहने को हैं बह जाएंगीं
अनबोली एक कहानी कहती जाएंगीं
जो चित्र बनाए तुमने जन जन के मन में
रंग धुल जाएँ पर रेखाएँ रह जाएँगीं।

संपर्क-
डी के 2-166/18, दानिशकुंज
कोलार रोड, भोपाल- 462042
मो- 8989569036

■

अकादमी पहुंची लेखक के द्वार, डॉ. भानावत को किया सम्मान समर्पण

उदयपुर। कलम और कागज़ को जीवन का ध्येय मानकर कर्मशील रहे लोककलाविद डॉ. महेन्द्र भानावत को राजस्थान साहित्य अकादमी अध्यक्ष दुलाराम सहारण एवं सचिव बसन्त सोलंकी ने उनके निवास पर पहुंच कर इक्यावन हजार रुपये की राशि का चैक, शॉल एवं सम्मानपत्र भेंट किया। डॉ. भानावत को अकादमी द्वारा विशिष्ट साहित्यकार सम्मान से समादृत किया गया है। उनकी अब तक एक सौ छह किताबें साहित्य, लोककला एवं अणुव्रत दर्शन पर प्रकाशित हो चुकी हैं। डॉ. भानावत जीवन के छिय्यासी वसन्त देख चुके हैं तथा घर पर ही सृजनरत रहते हैं।

इस अवसर पर साहित्य अकादमी अध्यक्ष दुलाराम सहारण ने कहा कि वरिष्ठ वयोवृद्ध लेखकों का सृजन सम्मान करना अकादमी की सारस्वत परम्परा है। जहां लेखक समादृत होता है वह पुण्यधरा कहलाती है। साहित्य अकादमी के सचिव बसन्त सोलंकी ने डॉ. भानावत को शॉल पहनाकर सम्मानित किया तथा उनके स्वस्थ एवं दीर्घायु होने की कामना की। अभी कुछ दिनों पूर्व भी सहारण ने साहित्यकार गोवर्धनसिंह शेखावत के सीकर स्थित निवास पर जाकर इसी प्रकार विशिष्ठ साहित्यकार सम्मान समपर्ण किया था।

वरिष्ठ साहित्यकार किशन दाधीच ने सहारण की इस कार्यशैली की प्रशंसा की है। उन्होंने कहा कि लेखक के निवास पर पहुंच कर सम्मान समपर्ण करने से अकादमी स्वयं सम्मानित होती है। दाधीच ने कहा यह डॉ. भानावत का नहीं समूचे मेवाड़ का सम्मान है। इससे पूर्व भी डॉ. भानावत को उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा दो लाख इक्यावन हजार रुपये के शिखर सम्मान से समादृत किया जा चुका है।

–डॉ. तुक्तक भानावत

वरिष्ठ छायाकार जगदीश कौशल के शतायु कामना पर्व में 'समय की धरोहर' पुस्तक का लोकार्पण

19 सितम्बर 2023 सप्रे संग्रहालय द्वारा आयोजित श्री जगदीश कौशल के शतायु कामना पर्व जो श्री कौशल के जीवन के 90 वर्ष पूर्ण होने पर मनाया गया। इस अवसर पर कला समय प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक 'समय की धरोहर' का लोकार्पण पूर्व चुनाव आयुक्त श्री ओ.पी.रावत पद्मश्री से सम्मानित श्री विजय दत्त श्रीधर वरिष्ठ परस्पर श्री राजेश बादल वरिष्ठ पत्रकार श्री घनश्याम सक्सेना वरिष्ठ पत्रकार श्री जगदीश कौशल वरिष्ठ छायाकार, श्री भँवरलाल श्रीवास निदेशक कला समय प्रकाशन एवं संपादक 'कला समय' पत्रिका द्वारा पुस्तक का लोकार्पण सम्पन्न हुआ। 'समय की धरोहर' पुस्तक के लगभग सभी आलेख, संस्मरण, छायाचित्रों को कला समय पत्रिका के स्तम्भ समय की धरोहर में प्रकाशित हो चुके है। इन्हें जगदीश कौशल लेखक के आग्रह पर कला समय प्रकाशन द्वारा यह पुस्तक सप्रे संग्रहालय में गरिमापूर्ण आयोजन में यह दोनों कार्यक्रम वरिष्ठ मित्रों गणमान्य अतिथियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ।

समवेत

वरिष्ठ उद्घोषक संतोष तिवारी की पुस्तक 'छोटे मुँह छोटी सी बात' का भोपाल और गुना शहर में लोकार्पण सम्पन्न

भोपाल में लोकार्पण

गुना शहर में लोकार्पण

देश के वरिष्ठ सूत्रधार संतोष तिवारी की उद्घोषणा की महत्वपूर्ण पुस्तक कथेतर गद्य की अप्रतिम कृति ''छोटे मुँह छोटी सी बात'' जो कला समय प्रकाशन भोपाल का प्रतिष्ठा प्रकाशन है। इसका पिछले दिनों डी.बी. मॉल स्थित 4 जुलाई 2023 मंगलवार को कोर्टयार्ड मेरियट भोपाल में गरिमापूर्ण समारोह में सम्पन्न हुआ। सुत्रधार (लेखक) संतोष तिवारी ने अपनी इस कृति को उन ग्रामीणों को समर्पित की है जिन्होंने लैंटर्न को लालटेन बनाकर हिन्दी को रोशन और समृद्ध किया। पुस्तक की सहयोग राशि 450/रखी गई है। इसका सुन्दर लेआउट गणेश ग्रफिक्स, भोपाल द्वारा तथा आवरण संयोजन गौतम चक्रवर्ती द्वारा किया गया। इसका सुन्दर स्वच्छ मुद्रण गोयनका ऑफसेट प्रिन्टर्स प्राइवेट लिमिटेड इंदौर से किया गया। आवरण सहित कुल 410 पृष्ठों की पुस्तक कला समय प्रकाशन और पत्रिका कला समय जो 27 वर्षो से प्रकाशित होकर देश में पढ़ी जानेवाली का सहयोगी प्रकाशन कला समय हैं। तिवारी जी ने कहा पारिवारिक पृष्ठ भूमि ने शब्द (ब्रह्म) के प्रति जिज्ञासा का प्रतिफल ''छोटे मुँह छोटी सी बात हैं। इसमें पिछले पचास वर्षो में लगभग तीन सौ कार्यक्रमों का संचालन में इस पुस्तक में 121 महत्वपूर्ण संकलनों का समावेश किया गया हैं। जिसमें पत्रकारिता, फिल्म, संगीत, खेल, राष्ट्रीय त्योहार, आध्यात्मिक, राजनीति, धार्मिक, सामाजिक आयोजन सहित भोपाल गैस त्रासदी का 35 वर्षो का सूत्रधार में चुनिंदा कार्यक्रम शामिल किए गये हैं। तिवारी कहते हैं उनके संचालन में भारत के राष्ट्रपति, पूर्व प्रधानमंत्री, प्रदेशों के राज्यपाल, तथा मुख्य मंत्री गण, उच्च और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश और मुख्य न्यायाधीश केन्द्र और प्रदेश के मंत्रीगण उच्च अधिकारियों सहित पत्रकारिता और फिल्म जगत की हस्तियों ने इन कार्यक्रमों को अपनी उपस्थिति से गरिमा प्रदान की है। उनका कहना है कि इन पचास सालों में सभी लगभग तीन सौ आयोजनों में मेरे द्वारा लिखे हुए नहीं बोले गए शब्द ही हैं। इस तरह ''छोटे मुँह छोटी सी बात'' का भोपाल सहित गुना शहर में भी इसका लोकार्पण सम्पन्न हुआ। भोपाल के लोकार्पण में जो गणमान्य अतिथि विद्वान सम्मीलित हुए उनमें सर्व श्री पं. विजय शंकर मेहता आध्यात्मिक गुरु, मध्यप्रदेश गान के प्रमुख हस्ताक्षर महेश श्री वास्तव, 'अक्षर' पत्रिका के प्रधान सम्पादक मनोज श्रीवास्तव, वरिष्ठ राजनेता द्वय दिग्विजय सिंह, सुरेश पचौरी तथा सफल संचालन विनय उपाध्याय और आभार गौतम तिवारी ने किया। इसी तरह गुना शहर की एक निजि होटल में न्याय मूर्ति अशोक तिवारी, वरिष्ठ पत्रकार नुरुल हसन नूर, राधाकृष्ण तिवारी, विनोद शर्मा, महेश मुद्गल, डॉ. सतीश चतुर्वेदी शांकुतल डॉ. शोभा सहित शहर के गणमान्यजनों की उपथिति में दोनों जगहों पर बहुत ही गरिमापूर्ण लोकार्पण समारोह सम्पन्न हुआ।

समवेत

डॉ. मंजुलता आर्य की पुस्तक 'साहित्य के पुरोधा' का हुआ विमोचन

ग्वालियर में 'डॉ.मंजुलता आर्य' की पुस्तक 'साहित्य के पुरोधा' का विमोचन शिक्षाविद एवं वरिष्ठ साहित्यकार जगदीश तोमर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ ।

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.संजय 'पंकज', मुजफ्फरपुर रहे। सारस्वत अतिथि के रूप में वरिष्ठ गीतकार मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश', विशिष्ट अतिथि के रूप में श्रीधर पराड़कर, डॉ.राजेन्द्र सिंह एवं हरिओम गौतम मंचासीन रहे। सरस्वती वंदना सुमधुर स्वर में व्याप्ति उमड़ेकर द्वारा प्रस्तुत की गई। तत्पश्चात् मंचासीन अतिथियों का परिचय रामचरण चिराड़ 'रुचिर' ने प्रस्तुत किया। लेखिका डॉ.मंजुलता आर्य के संबंध में डॉ.लोकेश तिवारी ने परिचय प्रस्तुत किया। अतिथियों का स्वागत डॉ.रामगोपाल आर्य एवं शम्भुदयाल वर्मा ने किया। 'साहित्य के पुरोधा' पुस्तक के विमोचन के पश्चात् डॉ.मंजुलता आर्य ने पुस्तक के लेखन व विषयवस्तु पर अपनी अभिव्यक्ति दी। समीक्षक के रूप में डॉ.मंदाकिनी शर्मा, सुबोध चतुर्वेदी एवं लालता प्रसाद दोहरे ने पुस्तक पर अपने समीक्षात्मक विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में श्रीधर पराड़कर द्वारा डॉ.मंजुलता आर्य के लेखन की सराहना करते हुए उन्हें बहुत ही सरल, सहज, लगनशील एवं साहित्य के प्रति समर्पित बताया। विशिष्ट अतिथि हरिओम गौतम व डॉ.राजेन्द्र सिंह ने भी डॉ.मंजुलता आर्य के निरन्तर साहित्य के प्रति समर्पण की सराहना करते हुए उन्हें बहुत ही सक्रिय एवं सरल व्यक्तित्व का धनी बताया। इसी क्रम में सारस्वत अतिथि मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश' ने कहा कि– 'पुस्तक में महाकवि कालिदास से लेकर अन्तिम छोर तक के साहित्यकारों के बारे में लिखा है। डॉ.मंजुलता आर्य का व्यक्तित्व, उनका लेखन व शैली समाज के लिए अनुकरणीय है।' मुख्य वक्ता के रूप में डॉ.संजय पंकज ने कहा– कि 'डॉ.मंजुलता आर्य ने अपनी कृति में साहित्य के पुरोधा' में छोटे–छोटे, बल्कि महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग अपने लेखन में किया है। डॉ.आर्य लेखनी बहुत ही स्पष्ट सरल एवं शोधपरक है। सभी मंचासीन अतिथियों का स्वागत डॉ.मंजुलता आर्य के परिजनों एवं संबंधियों द्वारा शॉल, श्रीफल एवं स्मृति चिन्ह से किया गया। कार्यक्रम का सफल संचालन डॉ. करुणा सक्सेना ने किया। इस अवसर पर काफी संख्या में प्रान्त के गणमान्य साहित्यकार, साहित्य प्रेमी व परिजन उपस्थित रहे।

गायनाचार्य पं. गंगा प्रसाद पाठक की जयंती मनाई गई

दिनांक 18 अगस्त 2023 को गायनाचार्य पं. गंगा प्रसाद पाठक की जयंती मनाई गई। इस जयंती की विशेषता यह थी कि उनके पुत्र श्री प्रकाश पाठक, दामाद पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' एवं उनकी परंपरा की चौथी पीढ़ी का गायन हुआ। सभी ने गायनाचार्य पं. गंगा प्रसाद पाठक को अपने गायन को स्परांजली अर्पित की। सर्वप्रथम स्व. पाठक जी की चौथी पीढ़ी की नवोदित कलाकार कु. प्रदक्षणा भट्ट ने राग यमन कल्याण में द्रुतरुयाल एवं परम्परागत तराना प्रस्तुत किया। दूसरी प्रस्तुति श्री अनील पुराणिक के गायन की थी। श्री पुराणिक ने शास्त्रीय एवं सुगम गायन की प्रस्तुति दी। इसके बाद गायनाचार्य पं. गंगा प्रसाद पाठक के चि. पं. प्रकाश पाठक ने शास्त्रीय गायन प्रस्तुत किया। एवं अपने कार्यक्रम का समापन अपने पिता के द्वारा गाये गए भजन के द्वारा किया। अंतिम प्रस्तुति में पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' ने ग्वालियर घराने की परंपरागत बंदिशो (तराना, त्रिवट, चतुरंग, रास) की प्रस्तुति की एवं राग भैरवी की त्रिवट से स्वरांजली प्रस्तुत कर संगीत मैहफिल का समापन किया। इस संगीत मैहफिल का भरपुर आनंद संगीत के रसिक सुधी व गुणिजनों ने किया।

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ●
● नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तो के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि की व्यवस्था है।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा भी उपलब्ध है।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन की व्यवस्था है।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com
कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

कला समय के गौरवपूर्ण प्रकाशन

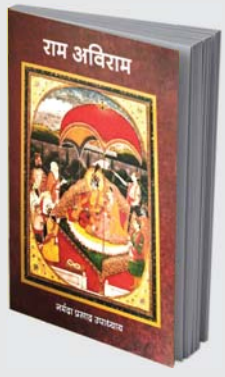

राम अविराम
मूल्य: ₹400

थमे नहीं चरण
मूल्य: ₹400

छोटे मुँह छोटी सी बात
मूल्य: ₹450

मुख्यमंत्री लाड़ली बहना योजना

जीवन को मिला है नया हौसला नयी उमंग

1.31 करोड़
लाड़ली बहनों को

अब हर महीने
₹ 1250

बढ़कर मिलेंगे
₹ 3000

D-16348/23

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2023

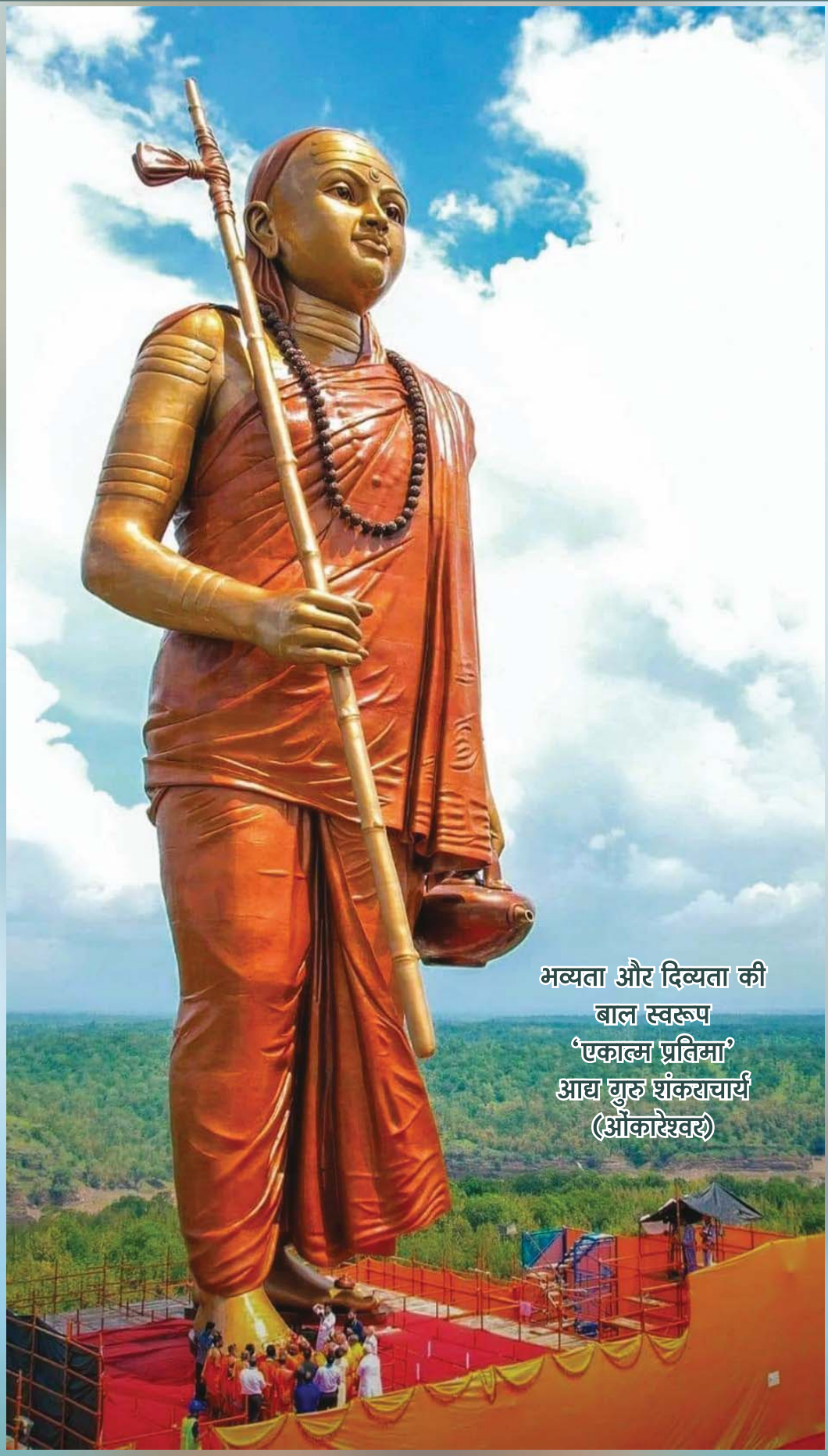

भव्यता और दिव्यता की
बाल स्वरूप
'एकात्म प्रतिमा'
आद्य गुरु शंकराचार्य
(ओंकारेश्वर)

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास